कहानी कुंज

डॉ० उमाकान्त 'शास्त्री'

कहानी कुंज

सम्पादक
डॉ० उमाकान्त 'शास्त्री'

जय भारती प्रकाशन
इलाहाबाद

Kahani Kunj

Edited by

Dr. Umakant 'Shastri'

Published by

Jaibharti Prakashan, Allahabad

जयभारती प्रकाशन
माया प्रेस रोड
258/365, मुट्ठीगंज
इलाहाबाद-3 द्वारा प्रकाशित

●

प्रथम संस्करण 2004

●

लेज़र कम्पोजिंग
शिवा कम्प्यूटर
23/47/163 बी० शिव नगर,
अल्लापुर, इलाहाबाद

●

श्री मारुती प्रिंटर्स
इलाहाबाद-2 द्वारा मुद्रित

मूल्य : 30 · 00

अनुक्रमणिका

भूमिका
हिन्दी कहानी का उद्‌भव और विकास

हिन्दी कथा साहित्य के उदय के लिए बीसवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध विशेष महत्वपूर्ण है। इस काल में साहित्य के क्षेत्र में काफी परिवर्तन हुआ। उसी दौर में पाश्चात्य साहित्य का आगमन भी हमारे देश में हुआ जिससे हिन्दी कथा साहित्य में अभूतपूर्व आंदोलन उठा। अतः तत्कालीन हिंदी गद्य कथा साहित्य पर अंग्रेजी का प्रभाव अवश्य पड़ा है।

जब हिन्दी कहानी विधा की बात निकलती है तो सबसे बड़ा प्रश्न हमारे सामने आ जाता है—हिन्दी की प्रथम मौलिक कहानी कौन-सी है। हिन्दी की प्रथम मौलिक कहानी का पद पाने के लिए हमारे सामने कुछ कहानियाँ आती हैं। जैसे मन की चंचलता (1900 माधव प्रसाद मिश्र), एक टोकरीभर मिट्टी (1901 माधव सप्रे), प्लेग की चुडैल (मास्टर भगवानदास 1902), ग्यारह वर्ष का समय (1903 आचार्य रामचंद्र शुक्ल), पंडित और पंडितानी (1903 गिरिजादत्त वाजपेयी), इंदुमति (1900 किशोरीलाल गोस्वामी), दुलाईवाली (1907 बंग महिला)। उपर्युक्त मौलिक कहानियों में से मार्मिकता की दृष्टि से इंदुमति को हिन्दी की पहली और मौलिक कहानी माना जा सकता है।

जहाँ तक कहानी विधा के विकास का प्रश्न है, वहाँ इस विकास की गति को निश्चित करने के लिए उसका काल विभाजन किया जाना आवश्यक है। चूँकि प्रेमचंद कहानी विधा के सम्राट हैं। अतः उन्हें केन्द्र में रखकर यह विकास दर्शाया जा सकता है।

प्रेमचन्द पूर्व कहानी

प्रेमचंद पूर्व युग यह कहानी विधा का प्रथम उत्थान काल था। लेकिन इन कहानियों की कथावस्तु और शिल्प का विवेचन करने से स्पष्ट होता है कि कथा साहित्य के आगामी विकास की सारी संभावनाएँ उनमें उपस्थित थीं। इस काल के कहानीकारों में जयशंकर प्रसाद सर्वप्रमुख थे। प्रसाद की आरंभिक कहानियों में 'ग्राम, तानसेन, रसिया बालम' आदि पर बंगला कहानी शैली का प्रभाव था। परंतु बाद में उन्होंने ऐसी मौलिक कहानियाँ

लिखना प्रारंभ किया जो आज भी अपनी भावनिष्ठ अलंकृत शैली, वस्तुगठन, उद्देश्य और कला की दृष्टि से हिन्दी की श्रेष्ठ कहानियाँ मानी जाती हैं। छाया, प्रतिध्वनि, आकाशदीप, आंधी, बिसाती, इंद्रजाल, मधुआ, पुरस्कार, स्वर्ग के खंडहर आदि ऐसी ही उनकी प्रसिद्ध कहानियाँ हैं।

इसी समय हास्यरस पूर्ण कहानी लेखक जी० पी० श्रीवास्तव की पहली कहानी 'इंदु' में प्रकाशित हुई। राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह की कहानी 'कानों में कँगना' और 'बिजली' भी काफी लोकप्रिय रही हैं। कौशिक की पहली कहानी 'रक्षा बन्धन' 1913 मे प्रकाशित हुई। इसकी कहानियों में समाजसुधार, पारिवारिक जीवन के विभिन्न पक्ष आदि का मार्मिक चित्रण हुआ है। वृंदावनलाल वर्मा की 'राखी बन्द भाई' और मैथिलीशरण गुप्त की 'नकली किला' आदि कहानियाँ भी इसी समय प्रकाशित हुईं। **आ० चतुरसेन शास्त्री** और **विश्वंभरनाथ जिज्जा** ने भी इसी समय कहानियाँ लिखना आरंभ कर दिया था। शास्त्रीजी की कहानियाँ यथार्थवादी थीं। उनकी 'दुखवा मैं कासे कहूँ मोरी सजनी', 'ककड़ी की कीमत' आदि प्रसिद्ध कहानियाँ हैं।

इसी समय हिन्दी में एक ऐसी कहानी लिखी गई जो हिंदी कहानी साहित्य की प्रथम महान उपलब्धि मानी गयी। यह कहानी थी चंद्रधर शर्मा गुलेरी की 'उसने कहा था' जो 1915 में प्रकाशित हुई। यह इसके नायक लहनासिंह के पवित्र प्रेम, आत्मार्पण और प्रेम के लिए किए गये नि:स्वार्थ बलिदान की कहानी है। अपने सहज पुलकित रसोद्रेक के कारण यह कहानी हिंदी कहानी साहित्य का मील का पत्थर मानी गयी है। गुलेरी जी ने कुल तीन ही कहानियाँ लिखी हैं—'सुखमय जीवन', 'बुद्धू का काँटा' और 'उसने कहा था'। परंतु 'उसने कहा था' ने उन्हें हिन्दी का अमर कलाकार बना दिया है।

प्रेमचन्द पूर्व युग में उपर्युक्त कहानीकारों द्वारा लिखी गई कहानियाँ हिन्दी कहानी के आरंभिक विकास की परिचायक है। यद्यपि इनमें से कई कहानीकारों ने आगे चलकर अनेक कहानियाँ लिखी थीं परंतु इस प्रयास के रूप में हिन्दी कहानी के भावी विकास की संभावनाएँ स्पष्ट होने लगी थीं। जो विकास प्रेमचंद युग में हुआ है।

प्रेमचंद कालीन कहानी

प्रेमचंद का आविर्भाव हिंदी कहानी साहित्य की एक अभूतपूर्व घटना थी। उन्होंने सामाजिक मानव की सामान्य और विशिष्ट परिस्थितियों, मनोवृत्तियों और समस्याओं का अंकन कर हिन्दी कहानी को एक निश्चित यथार्थवादी दिशा और गति प्रदान की। वस्तुतः प्रेमचंद ने ही हिन्दी कहानी को स्वावलम्बी बनाया है। उन्होंने हिन्दी कहानी को सच्चे अर्थों में यथार्थवादी बना दिया। उसके माध्यम से समाज के दलित शोषित वर्ग का मार्मिक चित्रण कर समाज के नेताओं का ध्यान उसकी ओर आकर्षित करने का प्रयास किया। उनकी कहानियों में हमारे समाज की सभी प्रमुख और गौण समस्याएँ मुखरित हो उठी हैं। उनकी सभी कहानियों में किसी न किसी समस्या को सोद्देश्य अभिव्यक्ति मिली है। 'कफन', 'पूस की रात' जैसी कहानियों में कृषक वर्ग की दीनहीन दशा चित्रित है तो 'सद्गति' जैसी कहानियों में दलित वर्ग का शोषण चित्रित है। एक ओर 'बूढ़ी काकी' जैसी कहानियों में वृद्धावस्था के प्रश्न को उठाया है तो कुछ कहानियों में बेमेल विवाह समस्या, बाल विवाह समस्या, विधवा विवाह समस्या, अशिक्षा जैसी समस्याओं को अभिव्यक्ति मिली है। कला और विचार, भाषा और कथ्य का संतुलन अपूर्व है। उन्होंने हिंदी और उर्दू में करीब तीन-सौ पचास कहानियाँ लिखी हैं, जिनमें कफन, बड़े घर की बेटी, पूस की रात, पंच परमेश्वर, सद्गति, गुल्ली डंडा, बूढ़ी काकी, शतरंज के खिलाड़ी, ईदगाह जैसी अत्यंत सुन्दर कहानियाँ हैं। प्रेमचंद की कहानी कला में समस्त शिल्पगत प्रवृत्तियाँ विद्यमान हैं जो कहानी कला की आधारशिलाएँ मानी गई हैं। शिल्प विधान, कथा संगठन, चरित्र और शैली की दृष्टि से कहानियाँ पूर्ण सफल रही हैं।

प्रेमचन्द क़ालीन अन्य कहानीकारों में कौशिक का नाम प्रसिद्ध है। उन्होंने करीब तीन-सौ कहानियाँ लिखी हैं। उनकी कहानियों में समाज सुधार का आदर्शवादी रूप अधिक उभरा है। उनकी 'ताई' शीर्षक कहानी बहुत प्रसिद्ध है। उन्होंने 'दुबे जी की चिट्ठी' शीर्ष से हास्यव्यंग्य पूर्ण अनेक कहानियाँ लिखीं जो अपने मार्मिक व्यंग्य के कारण काफी प्रसिद्ध रही हैं। सुदर्शन भी प्रेमचंद परम्परा के कहानीकार हैं। इनकी कहानियों में प्रेमचंद की कहानियों के सभी गुण एवं विशेषताएँ मिल जाती हैं। उनकी पहली कहानी 'हार की

जीत' सन् 1920 में 'सरस्वती' में प्रकाशित हुई। इसके उपरान्त उन्होंने अनेक कहानियाँ लिखीं जिनमें 'नगीना', 'पनघट', 'तीर्थयात्रा' आदि विशेष प्रसिद्ध रहीं।

सन् 1922 के आसपास पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' अपने उपनाम को सार्थक करते हुए कहानी क्षेत्र में अवतीर्ण हुए। उन्होंने अपनी कहानियों में सामाजिक एवं राजनीतिक विकृतियों का यथा तथ्यमरक निरूपण करते हुए उन पर तीखे और चुभते हुए आक्रमण किए हैं। उन्होंने इन विकृतियों का ऐसा नग्न चित्रण किया जो कहीं-कहीं अश्लीलता तक पहुंच गया। 'चॉकलेट' नामक कहानी संग्रह उनकी प्रभावोत्पादकता का प्रमाण है जिसकी महात्मा गांधी ने प्रशंसा की थी। कुछ आलोचकों ने उनके साहित्य को घासलेटी साहित्य भी कहा है। उनकी 'दोजख की आग' ''बलात्कार'' ''चिनगारियाँ'' ''सनकी अमीर'' 'जब सारा आलम सोता है', 'विकास' आदि कहानी संग्रहों में संकलित कहानियाँ विवाद का विषय बन चुकी हैं। इस काल के अन्य कहानीकारों में चण्डीप्रसाद 'हृदयेश', रायकृष्ण दास, विनोद शंकर व्यास, सियाराम शरण गुप्त, गोविंद बल्लभ पन्त, पदुमलाल पुन्नालाल बक्षी आदि विशेष उल्लेखनीय रह चुके हैं।

जिस कहानी परम्परा का आरंभ प्रेमचंद पूर्व युग में हुआ। वह कहानी प्रेमचंद काल में अपनी यौवनावस्था में आ चुकी थी। अनेक विषयों, समस्याओं एवं आदर्शों का चित्रण इस काल की कहानियों में हुआ है।

प्रेमचंदोत्तर कहानी

प्रेमचंद ने यथार्थ चित्रण को कहानियों का मूलाधार बनाया था। परंतु वे उस यथार्थ को आदर्श में परिवर्तित करने के लिए कोई एक सुनिश्चित, सुनियोजित सन्देश न दे सके। उनका यह अधूरा कार्य उनके बाद आए कहानीकारों ने किया। ये कहानीकार मार्क्सवादी विचारधारा के कहलाए। इन कहानीकारों में यशपाल, रांगेय राघव, राहुल सांकृत्यायन, भैंरवप्रसाद गुप्त, भगवतशरण उपाध्याय, मन्मथनाथ गुप्त, अमृतराय, अमृतलाल नागर, भीष्म साहनी आदि कहानीकारों ने किया। इन कहानीकारों ने राजनीतिक तथा सामाजिक स्थितियों और संघर्षों का तथ्यपरक चित्रण करते हुए नवीन साम्यवादी विचारधारा का सम्बल ग्रहण

कर वर्ग संघर्ष को मुखरित किया। आर्थिक विषमता और उसके कारण उत्पन्न हुई विकृतियों, विषमताओं का विश्लेषण-विवेचन करते हुए हर प्रकार के शोषण, रूढ़ियों और अगतिशील मान्यताओं पर तीखे प्रहार किए। इस दृष्टि से यशपाल की कहानियाँ प्रसिद्ध हैं। उनकी कहानियाँ 'पिंजरे की उड़ान', 'तर्क का तूफान', 'फूलो का कुर्ता', 'तुमने क्यों कहा कि मैं सुंदर हूँ' आदि संग्रहों में संकलित हैं।

इस धारा के दूसरे कहानीकार हैं रांगेय राघव। इन्होंने स्त्री-पुरुष, प्रेम-वासना, जातिगत धर्मगत रूढ़ि एवं मान्यताओं को नई कसौटी पर क़सने पर विश्वास किया है। निराला ने 'देवी', 'चतुरी चमार' आदि कहानियाँ लिखी हैं जो इसी धारा की हैं। राहुल सांकृत्यायन के 'वोल्गा से गंगा' इस कहानी संग्रह में भी मार्क्सवादी विचारधारा की कहानियाँ हैं।

प्रेमचंदोत्तर काल में एक ओर कहानी के शिल्प कथ्य में विकास हुआ तो दूसरी ओर इस क्षेत्र में कहानी लेखकों की जबरदस्त बाढ़ सी आयी है। इस बाढ़ में भी कुछ ऐसे कहानीकार एवं उनकी कहानियाँ थीं जो आकाशदीप की तरह चमकती हैं।

मनोविश्लेषणात्मक कहानी

प्रेमचंदोत्तर काल के कहानीकारों ने जहाँ एक ओर मार्क्सवादी विचारधारा की कहानियों का निर्माण किया, वहाँ इन कहानीकारों में एक वर्ग ऐसा भी था जिन्होंने कहानी के माध्यम से मनुष्य के मन को समझने और समझाने का प्रयास किया। ऐसी कहानियाँ व्यक्तिवादी कहलायी गयीं। इन कहानीकारों ने विषम सामाजिक और मानसिक परिस्थिति में ग्रस्त व्यक्ति के द्वंद्व को आधार बनाकर उसके अन्तर्द्वंद्व और उससे प्रेरित क्रियाओं का अधिक संवेदनशील मनोवैज्ञानिक चित्रण करना आरंभ किया। इस परम्परा में जैनेंद्र का सबसे महत्वपूर्ण स्थान है। उनके वातायन, स्पर्द्धा, फाँसी, पाजेब एक रात, जय संधि, दो चिड़िया आदि संग्रहों में ऐसी ही कहानियाँ संकलित हैं। जिनमें दार्शनिक स्पर्श द्वारा मानव मन की विभिन्न स्थितियों और द्वंद्वों का चित्रण करते हुए व्यक्ति की विषम मनःस्थिति का अंकन किया है।

मनोविश्लेषणात्मक कहानीकारों में एक वर्ग ऐसे कहानीकारों का भी रहा है जिन्होंने केवल मानव मन की कुण्ठा, विकृति, मानसिक रुग्णता, सामाजिक सम्बन्धों के प्रति

अस्वस्थता, पतनकारी विद्रोह तथा चरित्रहीनता का चित्रण किया है। इन कहानीकारों पर फ्रायड का प्रभाव है। अज्ञेय ऐसे ही कहानीकार हैं। इनकी कहानियों में व्यक्ति के उत्तरदायित्वहीन वैयक्तिक उच्छृंखल विद्रोह को ही एक नवीन क्रान्तिकारी चेतना के रूप में चित्रित किया गया है। इस दृष्टि से अज्ञेय के 'विपथगा', 'परम्परा' 'कोठरी की बात', 'जयदोल आदि कहानी संग्रह प्रसिद्ध हैं । इसी परम्परा में इलाचंद्र जोशी का नाम आता है। उनके 'रोमंटिक छाया', आहुति, 'दिवाली और होली' आदि कहानी संग्रहों की कहानियाँ मनोविश्लेषण के आधार पर लिखी गयी हैं। इसी परम्परा में भगवतीचरण वर्मा, भगवतीप्रसाद वाजपेयी की कुछ कहानियाँ आती हैं। जिनमें वर्मा जी की 'खिलते फूल', 'इन्स्टॉलमेंट', 'दो बाँके' इन संग्रहों की कहानियाँ हैं तो वाजपेयी जी के हिलोर, पुष्करणी, खाली बोतल इन संग्रहों की कहानियाँ हैं।

इसी परम्परा में उपेंद्रनाथ अश्क (निशानियाँ, दो धारा), चंद्रगुप्त विद्यालंकार (चंद्रकला, भय का राज्य, अमावस), सत्यप्रकाश संगर (अवगुण्ठन, नया मार्ग, कितना ऊँचा कितना नीचा, मुझे टिकट दो, अफ्रीका का आदमी), रमाप्रसाद पहाड़ी (सफर, अधूरा चित्र, सड़क पर, बया का घोंसला, नया रास्ता) आदि कहानीकार तथा उनके कहानी संग्रह आते हैं। जिनमें उच्च वर्ग की विलासिता, नेताओं और अधिकारियों के भ्रष्टाचार, सामाजिक अनैतिकता का नग्न चित्रण हुआ है।

नई कहानी (1950)—के आसपास हिंदी कहानी क्षेत्र में एक नई पीढ़ी का उदय हुआ। नई पीढ़ी के कहानीकारों का आरंभिक दृष्टिकोण समाजवादी था। क्योंकि 1947 में भारत को स्वतंत्रता मिली थी। अत: देश की जनता अपने देश की अपनी सरकार की ओर कुछ आशा भरी नजरों से देख रही थी। परंतु ऐसा कुछ नहीं हुआ जिसका स्वप्न हमने आजादी से पहले देखा था। अत: देश की जनता में भी असंतोष, क्षोभ, आक्रोश और निराशा का वातावरण छा गया। इस नई पीढ़ी का कहानीकार समाज का ही एक अंग था। अत: उसकी कहानियों में इन बातों की अभिव्यक्ति होने लगी। इस नई पीढ़ी के नये लोगों ने अपनी नई चेतना भरी कहानियों को **नई कहानी** कहना आरंभ किया। इन कहानीकारों ने आर्थिक साम्राज्यवाद, पूंजीवाद, बुर्जुआ नेताशाही, जड़ नौकरशाही आदि के विरुद्ध असंतोष की भावना समाज में देखी। ये कहानीकार इन सबका विरोध कर एक स्वस्थ

उन्नत और सुखी समाज का अभिलाषी था। इस नई कहानी के कहानीकारों में राजेन्द्र यादव (जहाँ लक्ष्मी कैद है, छोटे छोटे ताजमहल, एक पुरुष एक नारी), मोहन राकेश (नए बादल, जानवर और जानवर, एक और जिंदगी), कमलेश्वर (राजा निरबंसिया, माँस का दरिया) आदि कहानीकार विशेष प्रसिद्ध हैं। इनकी इस नई कहानी ने किस्सागोई की पुरानी परम्परा को तोड़ कथा के महत्व को कम किया है।

सचेतन कहानी—'नई कहानी' की संकीर्ण विचारधारा का विरोध करने के हेतु कहानी क्षेत्र में एक ऐसा वर्ग उत्पन्न हुआ जिन्होंने एक ओर सुन्दर कलात्मक कहानियाँ लिखी हैं तो दूसरी ओर 'नई कहानी' परम्परा का डटकर विरोध किया है। इन लोगों का कहना है कि इनकी कहानियाँ पुरानी प्रेमचंद की परम्परा को आगे बढ़ा रहे हैं। परंतु ध्यान से देखें तो नई कहानी के कहानीकारों और इनमें कोई विशेष अंतर नहीं है। क्योंकि दोनों भी उसी प्रेमचंद की परम्परा का अनुसरण कर रहे हैं। और नई कहानी, सचेतन कहानी, अकहानी आदि नाम केवल प्रचार के साधन बनकर रह गये हैं।

हिंदी कहानी क्षेत्र में कहानीकारों का एक वर्ग ऐसा भी रहा है जिन्होंने अपने आप को किसी भी परम्परा का न मानते हुए या गुटबंदी से दूर रहकर स्वतंत्र रूप से सुंदर कहानियाँ लिखी हैं। ऐसे कहानीकारों में धर्मवीर भारती, लक्ष्मीनारायण लाल, निर्मल वर्मा, शैलेश मटियानी, विष्णु प्रभाकर, अमरकान्त, भीष्म साहनी, श्रीकान्त वर्मा, हरिशंकर परसाई, रवींद्र कालिया, फणीश्वरनाथ रेणु, राजेन्द्र अवस्थी, मार्कंडेय, गिरिराज किशोर, रघुवीर सहाय, ज्ञानरंजन, दीप्ति खंडेलवाल, कृष्णा-सोबती, सूर्यबाला, मेहरुन्निसा परवेज़, मन्नू भंडारी, निरुपमा सोबती आदि प्रमुख रह चुके हैं।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि कहानी की जो धारा इंदुमति से शुरू हुई थी आज एक महासागर का रूप धारण कर चुकी है। इस धारा ने अनेक प्रकार के थपेड़ों से अपना प्रवाह निश्चित किया है। कभी सामाजिक, कभी राजकीय, कभी आर्थिक स्थितियों का चित्रण करते-करते वह यथार्थवादी, अतिनग्न यथार्थवादिता तक पहुँच गयी। और आज वह अपना प्रवाह निश्चित किए हुए चल रही है।



चंद्रधर शर्मा गुलेरी

(जन्म 1883 ई० : मृत्यु 1922 ई०)

कहानी के क्षेत्र में मील का पत्थर माने जाने वाले कहानीकार चंद्रधर शर्मा गुलेरी जी का जन्म जयपुर में हुआ। आपको हिंदी, संस्कृत, पालि, प्राकृत, अपभ्रंश, बंगला, मराठी, अंग्रेजी, जर्मन, लैटिन आदि भाषाओं की अच्छी जानकारी थी। आपने संपादन के अतिरिक्त कुछ निबंध भी लिखे हैं। कहानियों के क्षेत्र में आपकी मात्र तीन कहानियाँ मिलती हैं। सुखमय जीवन, बुद्धू का काँटा और उसने कहा था। आपकी कहानी 'उसने कहा था' ने आपको अमर बना दिया।

उसने कहा था

प्रस्तुत कहानी में कहानीकार ने लहना सिंह के माध्यम से प्रेम, कर्तव्य तथा आत्म बलिदान का पारस्परिक संघर्ष का मर्मस्पर्शी चित्रण किया है। जिसमें लहना सिंह अपने बचपन की प्रेमिका के कहने पर उसके पति की रक्षा करते-करते युद्ध भूमि पर अपने प्राणों का बलिदान कर देता है।

1. उसने कहा था

(1)

बड़े-बड़े शहरों के इक्के-गाड़ी वालों की ज़बान के कोड़ों से जिनकी पीठ छिल गयी है और कान पक गये हैं, उनसे हमारी प्रार्थना है कि अमृतसर के बम्बूकार्ट वालों की बोली का मरहम लगावें। जब बड़े-बड़े शहरों की चौड़ी सड़कों पर घोड़े की पीठ को चाबुक से धुनते हुए, इक्केवाले कभी घोड़े की नानी से अपना निकट सम्बन्ध स्थिर करते हैं, कभी राह चलते पैदलों की आँखों के न होने पर तरस खाते हैं, कभी उनके पैरों की उँगलियों के पोरों को चीथकर अपने ही को सताया हुआ बताते हैं और संसारभर की ग्लानि, निराशा और क्षोभ के अवतार बने, नाक की सीध चले जाते हैं, तब अमृतसर में उनकी बिरादरीवाले तंग, चक्करदार गलियों में, हर एक लड्ढीवाले के लिए ठहरकर, सब्र का समुद्र उमड़ाकर 'बचो खालसाजी', 'हटो माईजी', 'ठहरना भाई', 'आने दो लालाजी', 'हटो बाछा', कहते हुए सफेद फेटों, खच्चरों और बत्तकों, गन्ने और खोमचे और भारे वालों के जंगल में से राह खेते हैं। क्या मजाल है कि 'जी' और 'साहब' बिना सुने किसी को हटना पड़े। यह बात नहीं कि उनकी जीभ चलती ही नहीं, पर मीठी छुरी की तरह महीन मार करती हुई। यदि कोई बुढ़िया बार-बार चितौनी देने पर भी लीक से नहीं हटती, तो उनकी वचनावली के ये नमूने हैं—'हट जा जीणे जोगिए, हट जा करमाँ वालिए, हट जा पुत्ताँ प्यारिये, बच जा लम्बी उमराँ वालिए।' समष्टि में इनके अर्थ हैं कि तू जीने योग्य है, तू भाग्यों वाली है, पुत्रों को प्यारी है, लम्बी उमर तेरे सामने है, तू क्यों मेरे पहिये के नीचे आना चाहती है?— बच जा।

ऐसे बम्बूकार्टवालों के बीच में होकर एक लड़का और एक लड़की चौक की एक दुकान पर आ मिले। उसके बालों और इसके ढीले सुथने से जान पड़ता था कि दोनों सिक्ख हैं। वह अपने मामा के केश धोने के लिए दही लेने आया था और यह रसोई के लिए बड़ियाँ। दुकानदार एक परदेशी से गुँथ रहा था, जो सेर-भर गीले पापड़ों की गड्डी को गिने बिना हटता न था।

"तेरे घर कहाँ हैं?"

"मगरे में—और तेरे?"

"माझे में—यहाँ कहा रहती है?"

"अतरसिंह की बैठक में, वे मेरे मामा होते हैं।"

"मैं भी मामा के यहाँ आया हूँ, उनका घर गुरू बाज़ार में है।"

इतने में दुकानदार निबटा और इनको सौदा देने लगा। सौदा लेकर दोनों साथ-साथ चले। कुछ दूर जाकर लड़के ने मुस्कराकर पूछा, "तेरी कुड़माई हो गयी?"

इस पर लड़की कुछ आँखें चढ़ाकर 'धत्' कहकर दौड़ गयी और लड़का मुँह देखता रह गया।

दूसरे-तीसरे दिन सब्जीवाले के यहाँ, दूधवाले के यहाँ, अकस्मात् दोनों मिल जाते हैं। महीना-भर यही हाल रहा। दो-तीन बार लड़के ने फिर पूछा, "तेरी कुड़माई हो गयी?" और उत्तर में वही 'धत्' मिला। एक दिन जब लड़के ने वैसे ही हँसी में चिढ़ाने के लिए पूछा तो लड़की, लड़के की सम्भावना के विरुद्ध, बोली, "हाँ, हो गयी।"

"कब?"

"कल, देखते नहीं यह रेशम से कढ़ा हुआ सालू?"

लड़की भाग गयी। लड़के ने घर की राह ली। रास्ते में एक लड़के को मोरी में धकेल दिया, एक छाबड़ीवाले की दिन भर की कमाई खोयी, एक कुत्ते पर पत्थर मारा और एक गोभीवाले के ठेले में दूध उँड़ेल दिया। सामने नहाकर आती हुई किसी वैष्णवी से टकराकर अन्धे की उपाधि पायी। तब कहीं घर पहुँचा।

(2)

"राम-राम, यह भी कोई लड़ाई है। दिन-रात खन्दकों में बैठे-बैठे हड्डियाँ अकड़ गयीं। लुधियाना से दस गुना जाड़ा और मेंह और बरफ ऊपर से। पिंडलियों तक कीचड़ में धँसे हुए हैं। गनीम कहीं दीखता नहीं—घण्टे-दो घण्टे में कान के परदे फाड़नेवाले धमाके के साथ सारी खन्दक हिल जाती है और सौ-सौ गज़ धरती उछल पड़ती है। इस गैबी गोले

से बचे तो कोई लड़े। नगरकोट का ज़लज़ला सुना था, यहाँ पच्चीस ज़लज़ले होते हैं। जो कहीं खन्दक से बाहर साफ़ा या कुहनी निकल गयी, तो चटाक से गोली लगती है। न मालूम बेईमान मिट्‌टी में लेटे हुए हैं या घास की पत्तियों में छिपे रहते हैं।''

''लहनासिंह, और तीन दिन हैं। चार तो खन्दक में बिता ही दिये। परसों 'रिलीफ' आ जायेगी और फिर सात दिन की छुट्‌टी। अपने हाथों झटका करेंगे और पेट-भर खाकर सो रहेंगे। उसी फिरंगी मेम के बाग में। मखमल की-सी हरी घास है। फल और दूध की वर्षा कर देती है। लाख कहते हैं, पर दाम नहीं लेती। कहती है, तुम राजा हो, मेरे मुल्क को बचाने आये हो।''

''चार दिन तक पलक नहीं झँपी। बिना फेरे घोड़ा बिगड़ता है और बिना लड़े सिपाही। मुझे तो संगीन चढ़ाकर मार्च का हुक्म मिल जाये। फिर सात जर्मनों को अकेला मारकर न लौटूँ तो मुझे दरबार साहब की देहली पर मत्था टेकना नसीब न हो। पाजी कहीं के, कलों के घोड़े—संगीन देखते ही मुँह फाड़ देते हैं, और पैर पकड़ने लगते हैं। यों अँधेरे में तीस-तीस मन के गोले फेंकते हैं। उस दिन धावा किया था—चार मील तक एक जर्मन नहीं छोड़ा था। पीछे जनरल साहब ने हट आने का कमान दिया, नहीं तो . . . . .''

''नहीं तो सीधे बर्लिन पहुँच जाते। क्यों?'' सूबेदार हजारासिंह ने मुस्कराकर कहा, ''लड़ाई के मामले जमादार या नायक के चलाये नहीं चलते। बड़े अफसर दूर की सोचते हैं। तीन सौ मील का सामना है। एक तरफ बढ़ गये तो क्या होगा?''

''सूबेदारजी, सच है,'' लहनासिंह बोला, ''पर करें क्या? हड्डियों-हड्डियों में तो जाड़ा धँस गया है। सूर्य निकलता नहीं, और खाई में दोनों तरफ से चम्बे की बावलियों के-से सोते झर रहे हैं। एक धावा हो जाये तो गर्मी आ जाये।''

''उदमी, उठ, सिगड़ी में कोयले डाल। वजीरा, तुम चार जने बाल्टियाँ लेकर खाई का पानी बाहर फेंको। लहनासिंह शाम हो गयी है, खाई के दरवाज़े का पहरा बदला दे।'' यह कहते हुए सूबेदार सारी खन्दक में चक्कर लगाने लगा।

वजीरासिंह पलटन का विदूषक था। बाल्टी में गँदला पानी भर खाई के बाहर फेंकता हुआ बोला, ''मैं पाधा बन गया हूँ। करो जर्मनी के बादशाह का तर्पण।'' इस पर सब खिलखिला पड़े और उदासी के बादल फट गये।

लहनासिंह ने दूसरी बाल्टी भरकर उसके हाथ में देकर कहा, ''अपनी बाड़ी के खरबूजों में पानी दो। ऐसा खाद का पानी पंजाब-भर में नहीं मिलेगा।''

''हाँ, देश क्या है, मैं तो लड़ाई के बाद सरकार से दस घुमाव ज़मीन यहाँ माँग लूँगा और फलों के बूटे लगाऊँगा।''

''लाड़ी होराँ को भी यहाँ बुला लोगे? या वही दूध पिलानेवाली फिरंगी मेम. . . ''

''चुप कर। यहाँ वालों को शरम नहीं।''

''देश-देश की चाल है। आज तक मैं उसे समझा न सका कि सिक्ख तम्बाकू नहीं पीते। वह सिगरेट देने में हठ करती है, होंठों में लगाना चाहती है। और मैं पीछे हटता हूँ, तो समझती है कि राजा बुरा मान गया, अब मेरे मुल्क के लिए लड़ेगा नहीं।''

''अच्छा, अब बोधासिंह कैसा है?''

''अच्छा है।''

''जैसे मैं जानता ही न होऊँ। रात-भर तुम अपने दोनों कम्बल उसे उढ़ाते हो और आप सिगड़ी के सहारे गुज़र करते हो। उसके पहरे पर आप पहरा दे आते हो। अपने सूखे लकड़ी के तख्तों पर उसे सुलाते हो, आप कीचड़ में पड़े रहते हो। कहीं तुम न माँदे पड़ जाना। जाड़ा क्या है, मौत है और निमोनिया से मरनेवालों को मुरब्बे नहीं मिला करते।''

''मेरा डर मत करो। मैं तो बुलेल की खड्ड के किनारे मरूँगा। भाई कीरतसिंह की गोदी पर मेरा सिर होगा और मेरे हाथ के लगाये हुए आँगन के आम के पेड़ की छाया होगी।''

वजीरासिंह ने त्यौरी चढ़ाकर कहा, ''क्या मरने-मारने की बात लगायी है? मरें जर्मन और तुरक। हाँ भाइयो, कुछ गाओ!''

कौन जानता था कि दाढ़ियोंवाले, घरबारी सिक्ख अश्लील गीत गायेंगे, पर सारी खन्दक गीत से गूँज उठी और सिपाही फिर ताज़े हो गये, मानों चार दिन से सोते और मौज ही करते रहे हों।

[3]

दो पहर रात गयी। अँधेरा है। सन्नाटा छाया हुआ है। बोधासिंह खाली बिस्कुटों के तीन टीनों पर अपने दोनों कम्बल बिछाकर और लहनासिंह के दो कम्बल और एक बरानकोट ओढ़कर सो रहा है। लहनासिंह पहरे पर खड़ा हुआ है। एक आँख खाई के मुँह पर है और एक बोधासिंह के दुबले शरीर पर। बोधासिंह कराहा।

"क्यों बोधा भाई , क्या है?"

"पानी पिला दो।"

लहनासिंह ने कटोरा उसके मुँह से लगाकर पूछा, "कहो कैसे हो?"

पानी पीकर बोधा बोला,"कँपनी छूट रही है। रोम-रोम में तार दौड़ रहे हैं। दाँत बज रहे हैं।"

"अच्छा, मेरी जरसी पहन लो।"

"और तुम?"

"मेरे पास सिगड़ी है और मुझे गर्मी लगती है, पसीना आ रहा है।"

"ना, मैं नहीं पहनता, चार दिन से तुम मेरे लिए . . ."

"हाँ, याद आयी। मेरे पास दूसरी जरसी है। आज सवेरे ही आयी है। विलायत से मेमें बुन-बुनकर भेज रही हैं। गुरु उनका भला करें।" यों कहकर लहना अपना कोट उतारकर जरसी उतारने लगा।

"सच कहते हो?"

"और नहीं झूठ?" यों कहकर नाहीं करते बोधा को उसने ज़बरदस्ती जरसी पहना दी और आप खाकी कोट और जीन का कुरता पहनकर पहरे पर आ खड़ा हुआ। मेम की जरसी की कथा केवल कथा थी।

आधा घण्टा बीता। इतने में खाई के मुँह से आवाज़ आयी, "सूबेदार हजारासिंह!"

"कौन, लपटन साहब? हुकुम हुज़ूर!" कहकर सूबेदार तनकर फौजी सलाम करके सामने हुआ।

''देखो, इसी समय धावा करना होगा। मील-भर की दूरी पर पूरब के कोने में एक जर्मन खाई है। उसमें पचास में ज़ियादह जर्मन नहीं हैं। इन पेड़ों के नीचे-नीचे दो खेत काटकर रास्ता है। तीन-चार घुमाव हैं। जहाँ मोड़ है, वहाँ पन्द्रह जवान खड़े कर आया हूँ। तुम यहाँ दस आदमी छोड़कर सबको साथ ले उनसे जा मिलो। खन्दक छीनकर वहीं, जब तक दूसरा हुक्म न मिले, डटे रहो। हम यहाँ रहेगा।''

''जो हुक्म।''

चुपचाप सब तैयार हो गये। बोधा भी कम्बल उतारकर चलने लगा, तब लहनासिंह ने उसे रोका। लहनासिंह आगे हुआ तो बोधा के बाप सूबेदार ने उँगली से बोधा की ओर इशारा किया। लहनासिंह समझकर चुप हो गया। पीछे दस आदमी कौन रहें, इस पर बड़ी हुज्जत हुई। कोई रहना न चाहता था। समझा-बुझाकर सूबेदार ने मार्च किया। लपटन साहब लहना की सिगड़ी के पास मुँह फेरकर खड़े हो गये और जेब से सिगरेट निकालकर सुलगाने लगे। दस मिनट बाद उन्होंने लहना की ओर हाथ बढ़ाकर कहा, ''लो तुम भी पियो।''

आँख मारते-मारते लहनासिंह सब समझ गया। मुँह का भाव छिपाकर बोला, ''लाओ साहब।'' हाथ आगे करते ही उसने सिगड़ी के उजाले में साहब का मुँह देखा। बाल देखे। तब उसका माथा ठनका। लपटन साहब के पट्टियों वाले बाल एक दिन में कहाँ उड़ गये और उनकी जगह कैदियों से कटे हुए बाल कहाँ से आ गये।

शायद शराब पिये हुए हैं और उन्हें बाल कटवाने का मौका मिल गया है। लहनासिंह ने जाँचना चाहा। लपटन साहब पाँच वर्ष से उसकी रेजिमेण्ट में थे।

''क्यों साहब, हम लोग हिन्दुस्तान कब जायेंगे?''

''लड़ाई खत्म होने पर। क्यों, क्या यह देश पसन्द नहीं?''

''नहीं साहब, शिकार के वे मजे यहाँ कहाँ? याद है, पारसाल नकली लड़ाई के पीछे हम-आप जगाधरी ज़िले में शिकार करने गये थे,''—हाँ-हाँ''—''वहीं जब आप खोते पर सवार थे और आपका खानसामा अब्दुल्ला रास्ते के एक मन्दिर में जल चढ़ाने को रह गया था।''—''बेशक पाजी कहीं का''—''सामने से वह नीलगाय निकली कि ऐसी बड़ी मैंने कभी न देखी थी। और आपकी एक गोली कन्धे में लगी और पुट्ठे में निकली। ऐसे अफसर के साथ शिकार खेलने में मज़ा आता है। क्यों साहब! शिमले से तैयार होकर उस

नीलगाय का सिर आ गया था न? आपने कहा था कि रेजिमेण्ट की मेस में लगायेंगे"—"हाँ, पर मैंने वह विलायत भेज दिया।"—"ऐसे बड़े-बड़े सींग! दो-दो फुट के तो होंगे?"

"हाँ, लहनासिंह, दो फुट चार इंच के थे, तुमने सिगरेट नहीं पिया?"

" पीता हूँ साहब, दियासलाई ले आता हूँ— " कहकर लहनासिंह खन्दक में घुसा। अब उसे सन्देह नहीं रहा था। उसने झटपट निश्चय कर लिया कि क्या करना चाहिए।

अँधेरे में किसी सोनेवाले से वह टकराया।

"कौन? वजीरासिंह?"

"हाँ, क्यों लहना? क्या कयामत आ गयी? जरा तो आँख लगने दी होती।"

[4]

"होश में आओ। कयामत आयी है और लपटन साहब की वर्दी पहनकर आयी है"

"क्या?"

"लपटन साहब या तो मारे गये हैं या कैद हो गये हैं। उनकी वर्दी पहनकर कोई जर्मन आया है। सूबेदार ने इसका मुँह नहीं देखा। मैंने देखा। और बातें की हैं। सौहरा साफ उर्दू बोलता है, पर किताबी उर्दू, और मुझे पीने को सिगरेट दिया है।"

"तो अब?"

"अब मारे गये। धोखा है। सूबेदार कीचड़ में चक्कर काटते फिरेंगे और यहाँ खाई पर धावा होगा। उधर उन पर खुले में धावा होगा। उठो, एक काम करो। पलटन के पैरों के निशान देखते-देखते दौड़ जाओ। अभी बहुत दूर न गये होंगे। सूबेदार से कहो कि एकदम लौट आवें। खन्दक की बात झूठ है। चले जाओ। खन्दक के पीछे से निकल जाओ। पत्ता तक न खड़के। देर मत करो।"

"हुकुम तो यह है कि यहीं . . . . "

"ऐसी-तैसी हुकुम की। मेरा हुकुम—जमादार लहनासिंह, जो इस वक्त यहाँ सबसे बड़ा अफसर है—उसका हुकुम है। मैं लपटन साहब की खबर लेता हूँ।"

"पर यहाँ तो तुम आठ ही हो।"

"आठ नहीं, दस लाख। एक-एक अकालिया सिक्ख सवा लाख के बराबर होता है। चले जाओ।"

लौटकर खाई के मुहाने पर लहनासिंह दीवार से चिपक गया। उसके देखा कि लपटन साहब ने जेब से बेल के बराबर तीन गोले निकाले। तीनों को जगह-जगह खन्दक की दीवारों में घुसेड़ दिया और तीनों में एक तार-सा बाँध दिया। तार के आगे सूत की एक गुत्थी थी, जिसे सिगड़ी के पास रखा। बाहर की तरफ जाकर एक दियासलाई जलाकर गुत्थी पर रखने . . . .

बिजली की तरह हाथों से उल्टी बन्दूक को उठाकर लहनासिंह ने साहब की कोहनी पर तानकर दे मारा। धमाके के साथ साहब के हाथ से दियासलाई गिर पड़ी। लहनासिंह ने एक कुन्दा साहब की गर्दन पर मारा और 'साहब' आँख! मीन गौट्ट'[1] कहते हुए चित हो गये। लहनासिंह ने तीनों गोले बीनकर खन्दक के बाहर फेंके और साहब को घसीटकर सिगड़ी के पास लिटाया। जेबों की तलाशी ली। तीन-चार लिफाफे और एक डायरी निकालकर उन्हें अपनी जेब के हवाले किया।

साहब की मूर्छा हटी। लहनासिंह हँसकर बोला, "क्यों लपटन साहब, मिज़ाज कैसा है? आज मैंने बहुत बातें सीखीं—यह सीखा कि सिक्ख सिगरेट पीते हैं। यह सीखा कि जगाधरी के जिले में नीलगायें होती हैं और उनके दो फुट चार इंच के सींग होते हैं। यह सीखा कि मुसलमान खानसामा मूर्तियों पर जल चढ़ाते हैं और साहब खोते पर चढ़ते हैं। पर यह तो कहो, ऐसी साफ उर्दू कहाँ से सीख आये? हमारे लपटन साहब को बिना डैम के पाँच लफ़्ज़ भी नहीं बोल सकते थे।"

लहना ने पतलून की जेबों की तलाशी नहीं ली थी। साहब ने मानों जाड़े से बचाने के लिए दोनों हाथ जेबों में डाले।

लहनासिंह कहता गया, "चालाक तो बड़े हो, पर माझे का लहना इतने बरस लपटन साहब के साथ रहा है; उसे चकमा देने के लिए चार आँखें चाहिए। तीन महीने हुए एक तुरकी मौलवी मेरे गाँव में आया था। औरतों के बच्चे होने के ताबीज़ बाँटता था और बच्चों को दवाई देता था। चौधरी के बड़ के नीचे मंजा बिछाकर हुक्का पीता रहता था और कहता

1. हाय मेरे राम ! (जर्मन)

था कि जर्मनी वाले बड़े पण्डित हैं। वेद पढ़-पढ़कर उसमें से विमान चलाने की विद्या जान गये हैं। गौ को नहीं मारते। हिन्दुस्तान में आ जायेंगे तो गौ-हत्या बन्द कर देंगे। मण्डी के बनियों को बहकाता था कि डाकखाने से रुपया निकाल लो, सरकार का राज्य जानेवाला है। डाकबाबू पोल्हूराम भी डर गया था। मैंने मुल्लाजी की दाढ़ी मूड़ दी थी और गाँव से बाहर निकालकर कहा था कि जो गाँव में अब पैर रखा तो . . . . ''

साहब की जेब से पिस्तौल चला और लहना की जाँघ में गोली लगी। इधर लहना की हैनरी मार्टिनी के दो फायरों ने साहब की कपाल-क्रिया कर दी। धड़ाका सुनकर सब दौड़ आये।

बोधा चिल्लाया, ''क्या है?''

लहनासिंह ने उसे यह कहकर सुला दिया कि ''एक हड़का हुआ कुत्ता आया था। मार दिया।'' और, औरों से सब हाल कह दिया। सब बन्दूकें लेकर तैयार हो गये। लहना ने साफा फाड़कर घाव के दोनों तरफ पट्टियाँ कसकर बाँधीं। घाव मांस में ही था। पट्टियों के कसने से लहू निकलना बन्द हो गया।

इतने में सत्तर जर्मन चिल्लाकर खाई में घुस पड़े। सिक्खों की बन्दूकों की बाढ़ ने पहले धावे को रोका। दूसरे को रोका। पर यहाँ थे आठ (लहनासिंह तक-तककर मार रहा था—वह खड़ा था, और-और लेटे हुए थे।) और वे थे सत्तर। अपने मुर्दा भाइयों के शरीर पर चढ़कर जर्मन आगे घुसे आते थे। थोड़े-से मिनटों में वे . . . .

अचानक आवाज़ आयी,''वाह गुरूजी की फतह! वाह गुरूजी का खालसा!'' और धड़ाधड़ बन्दूकों के फायर जर्मनों की पीठ पर पड़ने लगे। ऐन मौके पर जर्मन दो चक्की के पाटों के बीच में आ गये। पीछे से सूबेदार हजारासिंह के जवान आग बरसाते थे और सामने लहनासिंह के साथियों के संगीन चल रहे थे। पास आने पर पीछेवालों ने भी संगीन पिरोना शुरू कर दिया।

एक किलकारी और, ''अकाली सिक्खाँ दी फौज आयी! वाह गुरूजी की फतह! वाह गुरूजी का खालसा!! सतश्री अकाल पुरूख!!! और लड़ाई खत्म हो गयी। तिरेसठ जर्मन या तो खेत रहे थे या कराह रहे थे। सिक्खों में पन्द्रह के प्राण गये। सूबेदार के दाहिने कन्धे में से गोली आर-पार निकल गयी। लहनासिंह की पसली में गोली लगी। उसने घाव

को खन्दक की गीली मिट्टी से पूर लिया और बाकी को साफा कसकर कमरबन्द की तरह लपेट लिया। किसी को खबर न हुई कि लहना को दूसरा घाव-भारी घाव—लगा है।

लड़ाई के समय चाँद निकल आया था। ऐसा चाँद जिसके प्रकाश से संस्कृत कवियों का दिया हुआ 'क्षयी' नाम सार्थक होता है और हवा ऐसी चल रही थी जैसे कि बाणभट्ट की भाषा में 'दन्तवीणोपदेशाचार्य' कहलाती है। वजीरासिंह कह रहा था कि कैसे मन-मन-भर फ्रांस की भूमि मेरे बूटों से चिपक रही थी, जब मैं दौड़ा-दौड़ा सूबेदार के पीछे गया था। सूबेदार लहनासिंह से सारा हाल सुन, और कागज़ात पाकर, उसकी तुरन्त बुद्धि को सराह रहे थे और कह रहे थे कि तू न होता तो आज सब मारे जाते।

इस लड़ाई की आवाज़ तीन मील दाहिनी ओर की खाईवालों ने सुन ली थी। उन्होंने टेलीफोन कर दिया था। वहाँ से झटपट दो डाक्टर और बीमार ढोने की गाड़ियाँ चलीं, जो कोई डेढ़ घण्टे के अन्दर-अन्दर आ पहुँचीं। फील्ड अस्पताल नज़दीक था। सुबह होते-होते वहाँ पहुँच जायेंगे, इसलिए मामूली पट्टी बाँधकर एक गाड़ी में घायल लिटाये और दूसरी में लाशें रखी गयीं। सूबेदार ने लहनासिंह की जाँघ में पट्टी बँधवानी चाही, पर उसने यह कहकर टाल दिया कि थोड़ा घाव है, सबेरे देखा जायेगा। बोधासिंह ज्वर में बर्रा रहा था। वह गाड़ी में लिटाया गया। लहना को छोड़कर सूबेदार जाते नहीं थे। यह देखकर लहना ने कहा, "तुम्हें बोधा की कसम है, और सूबेदारनी की सौगन्ध है जो इस गाड़ी में न चले जाओ।"

"और तुम?"

"मेरे लिए वहाँ पहुँचकर गाड़ी भेज देना, और जर्मन मुर्दों के लिए भी तो गाड़ियाँ आती होंगी। मेरा हाल बुरा नहीं है। देखते नहीं मैं खड़ा हूँ?

वजीरासिंह मेरे पास ही है।"

"अच्छा, पर . . . ."

"बोधा गाड़ी पर लेट गया? भला। आप भी चढ़ जाओ। सुनिए तो, सूबेदारनी होराँ को चिट्ठी लिखो तो मेरा मत्था टेकना लिख देना और जब घर जाओ तो कह देना कि मुझसे जो उसने कहा था वह मैंने कर दिया।"

गाड़ियाँ चल पड़ी थीं। सूबेदार ने चढ़ते-चढ़ते लहना का हाथ पकड़कर कहा, "तूने मेरे और बोधा के प्राण बचाये हैं। लिखना कैसा? साथ ही घर चलेंगे। अपनी सूबेदारनी को तू ही कह देना, उसने क्या कहा था?"

"अब आप गाड़ी पर चढ़ जाओ। मैंने जो कहा, वह लिख देना और कह भी देना"

गाड़ी के जाते ही लहना लेट गया,"वजीरा, पानी पिला दे और मेरा कमरबन्द खोल दे। तर हो रहा है।"

[5]

मृत्यु के कुछ समय पहले स्मृति बहुत साफ हो जाती है। जन्म-भर की घटनाएँ एक-एक करके सामने आती हैं। सारे दृश्यों के रंग साफ होते हैं, समय की धुन्ध बिल्कुल उन पर से हट जाती है।

लहनासिंह बारह वर्ष का है। अमृतसर में मामा के यहाँ आया हुआ है। दहीवाले के यहाँ, सब्जी वाले के यहाँ, हर कहीं, उसे एक आठ वर्ष की लड़की मिल जाती है। जब वह पूछता है, तेरी कुड़माई हो गयी? तब 'धत्' कहकर वह भाग जाती है। एक दिन उसने वैसे ही पूछा, तो उसने कहा, 'हाँ, कल हो गयी। देखते नहीं यह रेशमी बूटोंवाला सालू।' सुनते ही लहनासिंह को दुःख हुआ। क्रोध हुआ। क्यों हुआ?

"वजीरासिंह, पानी पिला दे।"

पच्चीस वर्ष बीत गये। अब लहनासिंह नं० 77 राइफल्स में जमादार हो गया। उस आठ वर्ष की कन्या का ध्यान ही न रहा। न मालूम वह कभी मिली थी, या नहीं। सात दिन की छुट्टी लेकर जमीन के मुकदमे की पैरवी करने वह अपने घर गया। वहाँ रेजिमेण्ट के अफसर की चिट्ठी मिली कि फौज लाम पर जाती है, फौरन चले आओ। साथ ही सूबेदार हजारासिंह की चिट्ठी मिली कि मैं और बोधासिंह साथ लाम पर जाते हैं। लौटते हुए हमारे घर होते जाना। साथ ही चलेंगे। सूबेदार का गाँव रास्ते में पड़ता था, और सूबेदार उसे बहुत चाहता था। लहनासिंह सूबेदार के यहाँ पहुँचा।

जब चलने लगे तब सूबेदार बेड़े में से निकलकर आया। बोला, "लहना! सूबेदारनी तुमको जानती है, बुलाती है। जा, मिल आ।" लहनासिंह भीतर पहुँचा। सूबेदारनी मुझे

जानती हैं? कब से? रेजिमेण्ट के क्वार्टरों में कभी सूबेदारनी के घर के लोग रहे रहीं। दरवाज़े पर जाकर 'मत्था टेकना' कहा। असीस सुनी। लहनासिंह चुप।

"मुझे पहचाना?"

"नहीं।"

"तेरी कुड़माई हो गयी—धत्—कल हो गयी—देखते नहीं, रेशमी बूटोंवाला सालू—अमृतसर में . . . ."

भावों की टकराहट से मूर्छा खुली। करवट बदली, पसली का घाव बह निकला।

"वजीरा, पानी पिला . . . . " उसने कहा था। . . . .

स्वप्न चल रहा है। सूबेदारनी कह रही है—'मैंने तेरे को आते ही पहचान लिया। एक काम कहती हूँ। मेरे तो भाग फूट गये। सरकार ने बहादुरी का खिताब दिया है, लायलपुर में ज़मीन दी है, आज नमकहलाली का मौका आया है। पर सरकार ने हम तीमियों[2] की एक घघरिया पलटन क्यों न बना दी, जो मैं भी सूबेदारजी के साथ चली जाती? एक बेटा है। फौज में भरती हुए उसे एक ही बरस हुआ। उसके पीछे चार और हुए, पर एक भी नहीं जिया।' सूबेदारनी रोने लगी। अब दोनों जाते हैं। मेरे भाग। तुम्हें याद है, एक दिन टाँगेवाले का घोड़ा दहीवाले की दुकान के पास बिगड़ गया था। तुमने उस दिन मेरे प्राण बचाये थे। आप घोड़े की लातों में चले गये थे और मुझे उठाकर दुकान के तख्ते पर खड़ा कर दिया था। ऐसे ही इन दोनों को बचाना। यह मेरी भिक्षा है। तुम्हारे आगे मैं आँचल पसारती हूँ।'

रोती-रोती सूबेदारनी ओबरी में चली गयी। लहना भी आँसू पोंछता बाहर आया।

"वजीरासिंह पानी पिला—" उसने कहा था . . . .

लहना का सिर गोद में रखे वजीरासिंह बैठा था। जब माँगता है, तब पानी पिला देता है। आध घण्टे तक लहना चुप रहा, फिर बोला, "कौन? कीरतसिंह?"

वजीरा ने कुछ समझकर कहा, "हाँ।"

---

2. स्त्रियों

"भइया, मुझे और ऊँचा कर ले। अपने पट्ट[3] पर मेरा सिर रख ले।"

वजीरा ने वैसा ही किया।

"हाँ, अब ठीक है। पानी पिला दे। बस, अबके हाड़[4] में यह आम खूब फलेगा। चाचा-भतीजा दोनों यहीं बैठकर आम खाना। जितना बड़ा तेरा भतीजा है, उतना तो यह आम है। जिस महीने उसका जन्म हुआ था, उसी महीने में मैंने इसे लगाया था।"

वजीरासिंह के आँसू टप-टप टपक रहे थे।

कुछ दिनों पीछे लोगों ने अखबारों में पढ़ा—फ्रांस और बेल्जियम, 68वीं सूची—मैदान में घावों से मरा—नं० 77 सिख राइफल्स, जमादार लहनासिंह।



---

3. जाँघ
4. आषाढ़

जयशंकर प्रसाद

(जन्म 1889 ई० : मृत्यु 1937 ई०)

छायावादी काव्यधारा के प्रमुख कवि तथा प्रसिद्ध कथाकार जयशंकर प्रसाद का जन्म काशी में हुआ। आपकी कहानियाँ भारतीय संस्कृति और इतिहास के प्रति अनुरक्त हैं। कहानियों के क्षेत्र में, भी आपका झुकाव प्राय: छायावादी काव्य बोध का ही है इसीलिए आपकी कहानियाँ कविताओं जैसी लगती हैं। आपके पास घटनाओं के नाटकीय संयोजन और चुनाव की विलक्षण दृष्टि है।

जयशंकर प्रसाद की साहित्य सेवा में काव्य के अतिरिक्त नाटक, उपन्यास एवं कहानियाँ मिलती हैं। आपके नाटक मुख्यत: इतिहास और भारतीय संस्कृति पर आधारित हैं। उपन्यास विधा की दृष्टि से आपके तीन उपन्यास मिलते हैं—कंकाल, तितली और इरावती। कहानी की दृष्टि से आपके आकाशदीप, आँधी, इंद्रजाल, प्रतिध्वनि, छाया आदि संग्रह प्रसिद्ध हैं।

व्रत-भंग

प्रस्तुत कहानी में प्रसाद ने कहा हैं कि त्याग की भावना से बड़े से बड़े शत्रुत्व को मिटाया जा सकता है। चाहे कोई अपकार ही क्यों न करे। उसका बदला उपकार से ही चुकाना चाहिए।

2. व्रत-भंग

तो तुम न मानोगे?

नहीं, अब हम लोगों के बीच इतनी बड़ी खाई है, जो कदापि नहीं पट सकती।

इतने दिनों का स्नेह!

ऊँह! कुछ भी नहीं। उस दिन की बात आजीवन भुलाई नहीं जा सकती नन्दन! अब मेरे लिये तुम्हारा और तुम्हारे लिये मेरा कोई अस्तित्व नहीं। यह अतीत के स्मरण स्वप्न हैं, समझे?

यदि न्याय नहीं कर सकते, तो दया करो मित्र! हम लोग गुरुकुल में . . . . .

हाँ-हाँ, मैं जानता हूँ, तुम मुझे दरिद्र युवक समझ कर मेरे ऊपर कृपा रखते थे; किन्तु उसमें कितना तीक्ष्ण अपमान था; उसका मुझे अब अनुभव हुआ।

उस ब्राह्मवेला में जब उषा का अरुण आलोक भागीरथी की लहरों के साथ तरल होता रहता, हम लोग कितने अनुराग से स्नान करने जाते थे। सच कहना, क्या वैसी मधुरिमा हम लोगों के स्वच्छ हृदयों में न थी।

रही होगी, पर अब उस मर्मघाती अपमान के बाद मैं खड़ा रह गया, तुम स्वर्ण-स्थल पर चढ़कर चले गये, एक बार भी नहीं पूछा। तुम कदाचित् जानते होंगे नन्दन, कि कंगाल के मन में प्रलोभन के प्रति कितना विद्वेष है; क्योंकि, वह उससे सदैव छल करता है—ठुकराता है। मैं अपनी उसी बात को दुहराता हूँ, कि हम लोगों का अब उस रूप में कोई अस्तित्व नहीं है।

वही सही कपिंजल! हम लोगों का पूर्व अस्तित्व कुछ नहीं, तो क्या हम लोग वैसे ही निर्मल होकर एक नवीन मैत्री के लिए हाथ नहीं बढ़ा सकते? मैं आज प्रार्थी हूँ।

मैं उस प्रार्थना की उपेक्षा करता हूँ। तुम्हारे पास ऐश्वर्य का दर्प है, तो मेरी अकिंचनता उससे कहीं अधिक गर्व रखती है।

तुम बहुत कटु हो गये हो इस समय। अच्छा फिर कभी . . . .

न अभी, न फिर कभी। मैं दरिद्रता को भी दिखला दूँगा, कि मैं क्या हूँ। इस पाखण्ड-संसार में भूखा रहूँगा, परन्तु किसी के सामने सिर न झुकाऊँगा। हो सकेगा, तो संसार को बाध्य करूँगा झुकने के लिए।

कपिंजल चला गया। नन्दन हतबुद्धि होकर लौट आया। उस रात को उसे नींद नहीं आई।

उक्त घटना को बरसों बीत गये। पाटलिपुत्र के धनकुवेर कलश का कुमार नन्दन धीरे-धीरे उस घटना को भूल चला। ऐश्वर्य का मन्दिर-विलास किसे स्थिर रहने देता है? उसने यौवन के संसार में बड़ी-बड़ी आशाएँ लेकर पदार्पण किया था। नन्दन तब भी मित्र से वंचित होकर जीवन को अधिक मधुर न बना सका।

X X X

राधा तू भी कैसी पगली है? तूने कलश की पुत्र-वधू बनने का निश्चय किया है, आश्चर्य!

हाँ महादेवी, जब गुरुजनों की आज्ञा है, तब तो उसे मानना ही पड़ेगा।

मैं रोक सकती हूँ। वह मूर्ख नन्दन! कितना असंगत चुनाव है! राधा, मुझे दया आती है।

किसी अन्य प्रकार से गुरुजनों की इच्छा को टाल देना, यह मेरी धारणा के प्रतिकूल है महादेवी! नन्दन की मूर्खता सरलता का सत्यरूप है। मुझे वह अरुचिकर नहीं। मैं उस निर्मल-हृदय की देख-रेख कर सकूँ, तो यह मेरे मनोरंजन का ही विषय होगा।

मगध की महादेवी ने हँसी से कुमारी के इस साहस का अभिनन्दन करते हुए कहा, ''तब तेरी जैसी इच्छा,स्वयं भोगेगी।''

माधवी-कुंज से वह विरक्त होकर उठ गई। उन्हें राधा पर कन्या के समान ही स्नेह था।

दिन स्थिर हो चुका था। स्वयं मगध नरेश की उपस्थिति में महाश्रेष्ठि धनंजय की कन्या का ब्याह कलश के पुत्र से हो गया। अद्‌भुत था वह समारोह! रत्नों के आभूषण तथा स्वर्णपात्रों के अतिरिक्त मगध सम्राट ने राधा की प्रिय वस्तु अमूल्य मणि-निर्मित दीपाधार

भी दहेज में दे दिया। उस उत्सव की बड़ाई, पान, भोजन, आमोद-प्रमोद का विभवशाली चारु चयन कुसुमपुर के नागरिकों का बहुत दिन तक गल्प करने का एक प्रधान उपकरण था।

राधा कलश की पुत्र-वधू हुई।

X X X

राधा के नवीन उपवन के सौध-मन्दिर में अगुरु, कस्तूरी और केशर की चहल-पहल पुष्प-मालाओं का दोनों सन्ध्या में नवीन आयोजन और दीपावली में वीणा वंशी और मृदंग की स्निग्ध गम्भीर ध्वनि बिखरती रहती। नन्दन अपने सुकोमल आसन पर लेटा हुआ राधा का अनिन्द्य सौन्दर्य एकटक चुपचाप देखा करता। सुसज्जित प्रकोष्ठ में मणि-निर्मित दीपाधार की यंत्र-मयी नर्तकी अपने नूपुरों की झंकार से नन्दन और राधा के लिए एक क्रीड़ा और कुतूहल का सृजन करती रहती। नन्दन कभी राधा के खिसकते हुए उत्तरीय को सँभाल देता। बड़ा कष्ट हुआ। राधा हँस कर कहती—

बड़ा कष्ट हुआ।

नन्दन कहता— देखो, तुम अपने प्रसाधन ही में पसीने-पसीने हो जाती हो, तुम्हें विश्राम की आवश्यकता है।

राधा गर्व से मुस्करा देती। कितना अनुराग था उसका अपने सरल पति पर और कितना अभिमान था अपने विश्वास पर! एक सुखमय स्वप्न चल रहा था।

X X X

कलश, धन का उपासक सेठ अपनी विभूति के लिए सदैव सशंक रहता। उसे राजकीय संरक्षण तो था ही, दैवी रक्षा से भी अपने को सम्पन्न रखना चाहता था। इस कारण उसे एक नंगे साधु पर अत्यन्त भक्ति थी, जो कुछ ही दिनों से उस नगर के उपकण्ठ में आकर रहने लगा था।

उसने एक दिन कहा—सब लोग दर्शन करने चलेंगे।

उपहार के थाल प्रस्तुत होने लगे। दिव्य रथों पर बैठकर सब साधु-दर्शन के लिए चले। वह भागीरथी-तट का एक कानन था, जहाँ कलश का बनवाया हुआ कुटीर था।

सब लोग अनुचरों के साथ रथ छोड़कर भक्तिपूर्ण हृदय से साधु के समीप पहुँचे। परन्तु राधा ने जब दूर ही से देखा कि वह साधु नग्न है, तो वह रथ की ओर लौट पड़ी। कलश ने उसे बुलाया; पर राधा न आई। नन्दन कभी राधा को देखता और कभी अपने पिता को साधु खीलों के समान फूट पड़ा। दाँत किट-किटाकर उसने कहा— यह तुम्हारी पुत्र-वधू कुलक्षणा है कलश! तुम इसे हटा दो, नहीं तो तुम्हारा नाश निश्चित है। नन्दन-दाँतों तले जीभ दबाकर धीरे से बोला— अरे! यह कपिंजल . . . .।

अनागत भविष्य के लिए भयभीत कलश क्षुब्ध हो उठा। साधु की पूजा करके लौट आया। राधा अपने नवीन उपवन में उतरी।

कलश ने पूछा—तुमने महापुरुष से क्यों ऐसा दुर्विनीत व्यवहार किया?

नहीं पिताजी! वह स्वयं दुर्विनीत है। जो स्त्रियों को आते देखकर भी साधारण शिष्टाचार का पालन नहीं कर सकता, वह धार्मिक महात्मा कदापि नहीं।

क्या कह रही है मूर्ख! वे एक सिद्ध पुरुष हैं ।

सिद्धि यदि इतनी अधर्म है, धर्म यदि इतना निर्लज्ज है, तो वह स्त्रियों के योग्य नहीं पिताजी! धर्म के रूप में कहीं आप भय की उपासना तो नहीं कर रहे हैं?

तू सचमुच कुलक्षणा है।

इसे तो अंतर्यामी भगवान् ही जान सकते हैं। मनुष्य इसके लिए अत्यन्त क्षुद्र है। पिताजी! आप . . .

उसे रोककर अत्यन्त क्रोध से कलश ने कहा—तुझे इस घर में रखना अलक्ष्मी को बुलाना है। जा मेरे भवन से निकल जा।

नन्दन सुन रहा था काठ के पुतले के समान। वह इस विचार का अन्त हो जाना तो चाहता था; पर क्या करे यह उसकी समझ में न आया। राधा ने देखा, उसका पति कुछ नहीं बोलता, तो उसने गर्व से सिर उठाकर कहा— मैं धनकुबेर की क्रीत दासी नहीं हूँ। मेरे गृहिणीत्व का अधिकार केवल मेरा पदस्खलन ही छीन सकता है। मुझे विश्वास है, मैं अपने आचरण से अब तक इस पद की स्वामिनी हूँ। कोई भी मुझे इससे वंचित नहीं कर सकता।

आश्चर्य से देखा नन्दन ने और हत्बुद्धि होकर सुना कलश ने। दोनों उपवन के बाहर चले गये।

वह उपवन सबसे परित्यक्त और उपेक्षणीय बन गया। भीतर बैठी हुई राधा ने यह सब देखा।

X X X

नन्दन ने पिता का अनुसरण किया। वह धीरे-धीरे राधा को भूल चला, परन्तु नये ब्याह का नाम लेते ही चौंक पड़ता। उसके मन में धन की ओर से वितृष्णा जगी। ऐश्वर्य का यान्त्रिक शासन जीवन को नीरस बनाने लगा। उसके मन की अतृप्ति विद्रोह करने के लिए सुविधा खोजने लगी।

कलश ने उसके मनोविनोद के लिए नया उपवन बनवाया। नन्दन अपनी स्मृतियों का लीला-निकेतन छोड़कर वहीं रहने लगा।

X X X

राधा के आभूषण बिकते थे और उसके द्वार की अतिथि-सेवा वैसी ही रहती। मुक्ति द्वार का अपरिमित व्यय और आभूषणों के विक्रय की आय—कब तक युद्ध चले? अब राधा के पास बच गया था वही मणि-निर्मित दीपाधार जिसे महादेवी ने उसकी क्रीड़ा के लिए बनवाया था।

थोड़ा-सा अन्न अतिथियों के लिए बचा था। राधा दो दिन से उपवास कर रही थी। दासी ने यह कहा—स्वामिनी! यह कैसे हो सकता है कि आपके सेवक, बिना आपके भोजन किये अन्न ग्रहण करें?

राधा ने कहा—तो, आज यह मणि-दीप बिकेगा। दासी उसे ले आई। वह यन्त्र से बनी हुई रत्न-जटित नर्तकी नाच उठी। उसके नूपुर की झंकार उस दरिद्र भवन में गूँजने लगी। राधा हँसी। उसने कहा—मनुष्य जीवन में इतनी नियमानुकूलता यदि होती!

स्नेह से चूमकर उसे बेचने के लिए अनुचर को दे दिया। पण्य में पहुँचते ही दीपाधार बड़े-बड़े रत्न-वणिकों की दृष्टि का एक कुतूहल बन गया। उसके चूड़ामणि का दिव्य आलोक सभी की आँखों में चकाचौंध उत्पन्न कर देता था। मूल्य की बोली बढ़ने लगी।

कलश भी पहुँचा। उसने पूछा—यह किसका है? अनुचर ने उत्तर दिया—मेरी स्वामिनी सौभाग्यवती श्रीमती राधा देवी का।

लोभी कलश ने डाँटकर कहा मेरे घर की वस्तु इस तरह चुराकर तुम लोग बेचने फिर आओगे, तो बन्दी-गृह में पड़ोगे, भागो।

अमूल्य दीपाधार से वंचित सब लोग लौट गये। कलश उसे अपने घर उठवा ले गया।

राधा ने सब सुना—वह कुछ न बोली।

X X X

गंगा और शोण में एक साथ ही बाढ़ आई। गाँव के गाँव बहने लगे। भीषण हाहाकार मचा। कहाँ ग्रामीणों की असहाय दशा और कहाँ जल की उद्दण्ड बाढ़, कच्चे झोंपड़े उस महा जल-व्याल की फूँक से तितर-बितर होने लगे। वृक्षों पर जिसे आश्रय मिला, वही बच सका। नन्दन के हृदय ने तीसरा धक्का खाया। नन्दन का सत्साहस उत्साहित हुआ। वह अपनी पूरी शक्ति से नावों की सेना बनाकर जलप्लावन में डट गया और कलश अपने सात खण्ड के प्रासाद में बैठा यह दृश्य देखता रहा।

रात नावों पर बीतती है और बाँसों के छोटे-छोटे बेड़े पर दिन। नन्दन के लिए धूप, वर्षा, शीत कुछ नहीं। अपनी धुन में वह लगा हुआ है। बाढ़पीड़ितों का झुण्ड सेठ के प्रासाद में हर नाव से उतरने लगा। कलश क्रोध के मारे बिलबिला उठा। उसने आज्ञा दी कि बाढ़-पीड़ित यदि स्वयं नन्दन भी हो, तो वह प्रासाद में न आने पावे। घाट घिरी थी, जल बरसता था। कलश अपनी ऊँची अटारी पर बैठा मणि निर्मित दीपाधार का नृत्य देख रहा था।

X X X

नन्दन भी उसी नाव पर जिस पर चार दुर्बल स्त्रियाँ, तीन शीत से ठिठुरे हुए बच्चे और पाँच जीर्ण पंजर वाले वृद्ध थे। उस समय नाव द्वार पर जा लगी। सेठ का प्रासाद गंगा तट की एक ऊँची चट्टान पर था। वह एक छोटा सा दुर्ग था। जल अभी द्वार तक ही पहुँच सका था। प्रहरियों ने नाव को देखते ही रोका—पीड़ितों को इसमें स्थान नहीं।

नन्दन ने पूछा—क्यों?

महाश्रेष्ठि कलश की आज्ञा।

नन्दन ने एक बार क्रोध से उस प्रासाद की ओर देखा और मांझी को नाव लौटाने की आज्ञा दी। माँझी ने पूछा कहाँ ले चलें? नन्दन कुछ न बोला। नाव उस बाढ़ में चक्कर खाने लगी। सहसा दूर उसे जल-मग्न वृक्षों की चोटियों और पेड़ों के बीच में एक गृह का ऊपरी अंश दिखाई पड़ा। नन्दन ने संकेत किया। माँझी उसी ओर नाव खेने लगा।

X X X

गृह के नीचे के अंश में जल भर गया था। थोड़ा-सा अन्न और ईंधन ऊपर के भाग में बचा था। राधा उस जल में घिरी हुई अचल थी। छत के मुँडेर पर बैठी वह जलमयी प्रकृति में डूबती हुई सूर्य की अन्तिम किरणों को ध्यान से देख रही थी! दासी ने कहा—स्वामिनी! वह दीपाधार भी गया, अब तो हम लोगों के लिए बहुत थोड़ा अन्न घर में बच रहा है।

देखती नहीं यह प्रलय सी बाढ़! कितने मर मिटे होंगे। तुम तो पक्की छत पर बैठी अभी यह दृश्य देख रही हो। आज से मैंने अपना अंश छोड़ दिया। तुम लोग जब तक जी सको जीना।

सहसा नीचे झाँककर राधा ने देखा, एक नाव उसके वातायन से टकरा रही है और एक युवक उसे वातायन के साथ दृढ़ता से बाँध रहा है।

राधा ने पूछा—कौन है?

नीचे सिर किये नन्दन ने कहा—बाढ़-पीड़ित कुछ प्राणियों को क्या आश्रय मिलेगा? अब जल का क्रोध उतर चला है। केवल दो दिन के लिए इतने मरने वालों को आश्रय चाहिए।

ठहरिये, सीढ़ी लटकाई जाती है।

राधा और दासी तथा अनुचर ने मिलकर सीढ़ी लगाई। नन्दन विवर्ण मुख एक-एक को पीठ पर लाद कर ऊपर पहुँचाने लगा। जब सब ऊपर आ गये, तो राधा ने आकर कहा—और तो कुछ नहीं है, केवल द्विदलों का जूस इन लोगों के लिए है, ले आऊँ?

नन्दन ने सिर उठाकर देखा, राधा! वह बोल उठा—राधा! तुम यहीं हो?

हाँ स्वामी, मैं अपने घर हूँ। गृहिणी का कर्त्तव्य पालन कर रही हूँ।

पर मैं गृहस्थ का कर्त्तव्य पालन न कर सका। राधा पहले मुझे क्षमा करो।

स्वामी, यह अपराध मुझसे न हो सकेगा। उठिए आपकी कर्मण्यता से मेरा ललाट उज्वल हो रहा है। इतना साहस कहाँ छिपा था नाथ!

दोनों प्रसन्न होकर कर्त्तव्य में लगे। यथासम्भव उन दुखियों की सेवा होने लगी।

एक प्रहर के बाद नन्दन ने कहा—मुझे भ्रम हो रहा है कि कोई यहाँ पास ही विपन्न है। राधा! अभी रात नहीं हुई है मैं एक बार नाव लेकर जाऊँ?

राध ने कहा—मैं भी चलूँ?

नन्दन ने कहा—गृहिणी का काम करो राधा! कर्त्तव्य कठोर होता है, भाव-प्रधान नहीं।

नन्दन एक माँझी को लेकर चला गया और राधा दीपक जलाकर मुण्डेर पर बैठी थी, उसकी दासी और दास पीड़ितों की सेवा में लगे थे। बादल खुल गये थे। असंख्य नक्षत्र झलमलाकर निकल आये, मेघों के बन्दीगृह से जैसे छुट्टी मिली हो। चन्द्रमा भी धीरे-धीरे उस त्रस्त प्रदेश को भयभीत होकर देख रहा था।

एक घण्टे में नन्दन का शब्द सुनाई पड़ा—सीढ़ी!

राधा दीपक दिखला रही थी और सीढ़ी के सहारे नन्दन ऊपर एक भारी बोझ लेकर चढ़ रहा था।

छत पर आकर उसने कहा—एक वस्त्र दो राधा! राधा ने एक उत्तरीय दिया। वह मुमूर्ष व्यक्ति नग्न था। उसे ढककर नन्दन ने थोड़ा सेंक दिया, गर्मी भीतर पहुँचते ही वह हिलने-डोलने लगा। नीचे से माँझी ने कहा—जल बड़े वेग से हट रहा है, नाव ढीली न करूँगा तो लटक जायेगी।

नन्दन ने कहा तुम्हारे लिये भोजन लटकाता हूँ ले लो। कालरात्रि बीत गई। नन्दन ने प्रभात में आँखें खोलकर देखा कि सब सो रहे हैं और राधा उसके पास बैठी सिर सहला रही है।

इतने में पीछे से लाया हुआ मनुष्य उठा, अपने को अपरिचित स्थान में देखकर चिल्ला उठा— मुझे वस्त्र किसने पहनाया, मेरा व्रत किसने भंग किया?

नन्दन ने हँसकर कहा—कपिंजल! यह राधा का गृह है, तुम्हें उसके आज्ञानुसार यहाँ रहना होगा। छोड़ो पागलपन। चलो, बहुत-से प्राणी हम लोगों की सहायता के अधिकारी हैं। कपिंजल ने कहा—सो कैसे हो सकता है? तुम्हारा संग! असम्भव है।

मुझे दण्ड देने के लिए ही तो तुमने यह स्वांग रचा था। राधा तो उसी दिन से निर्वासित थी और कल से मुझे भी अपने घर में प्रवेश करने की आज्ञा नहीं। कपिंजल! आज तो हम और तुम दोनों बराबर हैं और इतने अधमरों के प्राणों का दायित्व भी हमीं लोगों पर है। यह व्रत-भंग नहीं, व्रत का आरम्भ है। चलो, उस दरिद्र कुटुम्ब के लिए अन्न जुटाना होगा।

कपिंजल आज्ञाकारी बालक की भाँति सिर झुकाए उठ खड़ा हुआ।



प्रेमचंद

(जन्म1880 ई० : मृत्यु 1936 ई०)

हिन्दी साहित्य के कथा-सम्राट् प्रेमचंद का जन्म बनारस के पास लमही नामक ग्राम में हुआ। आपको जीवन संघर्षों के कथाकार माना जाता हैं। लोगों का दु:ख-दर्द ही आपके साहित्य का प्राण है। प्रेमचंद का आरंभिक साहित्य आदर्शवादी था। परंतु बाद में प्रेमचंद ने यथार्थवाद को प्रमुखता दी क्योंकि आपने अनुभवों से जाना था कि आदर्श और यथार्थ में जमीन आसमान का अन्तर है।

प्रेमचन्द ने अपनी साहित्य सेवा में लगभग एक दर्जन उपन्यासों की रचना की है। जिसमें गोदान, गवन, रंगभूमि, कर्मभूमि, कायाकल्प, सेवासदन, निर्मला आदि विख्यात हैं। कहानी की दृष्टि से आपने करीब तीन-सौ कहानियाँ लिखी हैं। जिनमें कफन, पूस की रात, बूढ़ी काकी, पंचपरमेश्वर, सद्गति जैसी कहानियाँ हिंदी कहानी संसार के अनमोल रत्न हैं।

सद्गति

प्रस्तुत कहानी में लेखक ने ग्रामीण परिवेश में उच्च वर्ग द्वारा निम्न वर्ग के किए जाने वाले शोषण का चित्रण किया है। निम्न वर्ग का यह शोषण उनकी अशिक्षा और अंधविश्वास एवं रूढ़िप्रियता के कारण होता है।

3. सद्‌गति

दुखी चमार द्वार पर झाड़ू लगा रहा था और उसकी पत्नी झुरिया घर को गोबर से लीप रही थी। दोनों अपने-अपने काम से फुर्सत पा चुके तो चमारिन ने कहा,"तो जाके पंडित बाबा से कह आओ न? ऐसा न हो, कहीं चले जायें।"

दुखी,"हाँ, जाता हूँ, लेकिन यह तो सोच, बैठेंगे किस चीज पर?"

झुरिया,"कहीं से खटिया न मिल जायेगी? ठकुराने से माँग लाना।"

दुखी, "तू तो कभी-कभी ऐसी बात कह देती है कि देह जल जाती है। ठकुराने वाले मुझे खटिया देंगे? आग तक तो घर से निकलती नहीं। खटिया देंगे। कैथाने में जाकर एक लोटा पानी माँगू तो न मिले। भला, खटिया कौन देगा। हमारे उपले, सेंठे, भूसा, लकड़ी थोड़े ही हैं कि जो चाहें, उठा ले जायें। ला, अपनी खटोली धोकर रख दें। गरमी के तो दिन हैं। उनके आते-आते सूख जायेगी।"

झुरिया,"वह हमारी खटोली पर बैठेंगे नहीं। देखते नहीं, कितने नेम-धरम से रहते हैं।"

दुखी ने जरा चिंतित होकर कहा, "हाँ, यह बात तो है। महुए के पत्ते तोड़कर एक पत्तल बना लूँ तो ठीक हो जाये। पत्तल में बड़े-बड़े आदमी खाते हैं। वह पवित्तर हैं। ला तो डंडा,पत्ता तोड़ लूँ।"

झुरिया "पत्तल मैं बना लूँगी। तुम जाओ, लेकिन हाँ, उन्हें सीधा भी तो देना होगा। अपनी थाली में रख दूँ।"

दुखी, "कहीं ऐसा गजब न करना, नहीं तो सीधा भी जाये और थाली भी फूटे। बाबा थाली उठाकर पटक देंगे। उनको बड़ी जल्दी किरोध चढ़ जाता है। विरोध में पंडिताइन तक को छोड़ते नहीं, लड़के को ऐसा पीटा कि आज तक टूटा हाथ लिये फिरता है। पत्तल में सीधा भी देना, हाँ, मुदा तू छूना मत। झूरी गोंड की लड़की को लेकर साहू की दूकान से सब चीजें ले आना। सीधा भरपूर हो। सेर भर आटा, आधा सेर चावल, पाव भर दाल, आधा पाव घी, नोन, हल्दी और पत्तल में एक किनारे चार आने पैसे रख देना। गोंड की

लड़की न मिले तो भुर्जिन के हाथ-पैर जोड़कर ले जाना। तू कुछ मत छूना, नहीं गजब हो जायेगा।''

इन बातों की ताकीद करके दुखी ने लकड़ी उठायी और घास का एक बड़ा सा गट्ठा लेकर पंडितजी से अर्ज करने चला। खाली हाथ बाबाजी की सेवा में कैसे जाता? नजराने के लिए उसके पास घास के सिवाय और क्या था? उसे खाली हाथ देखकर तो बाबा दूर से ही दुतकारते।

पंडित घासीराम ईश्वर के परम भक्त थे। नींद खुलते ही ईशोपासन में लग जाते। मुँह-हाथ धोते आठ बजते, तब असली पूजा शुरू होती, जिसका पहला भाग भंग की तैयारी था। उसके बाद आध घंटे तक चंदन की गोल-गोल मुद्रिकाएँ बनाते। फिर ठाकुरजी की मूर्ति निकाल कर उसे नहलाते, चंदन लगाते, फूल चढ़ाते, आरती करते, घंटी बजाते। दस बजते-बजते वह पूजन से उठते और भंग छानकर बाहर आते। तब तक दो-चार जजमान द्वार पर आ जाते। ईशोपासन का तत्काल फल मिल जाता। यही उनकी खेती थी।

आज वह पूजनगृह से निकले तो देखा, दुखी चमार घास का एक गट्ठा लिये बैठा है। दुःखी उन्हें देखते ही उठ खड़ा हुआ और उन्हें साष्टांग दंडवत करके हाथ बाँधकर खड़ा हुआ। वह तेजस्वी मूर्ति देखकर उसका हृदय श्रद्धा से परिपूर्ण हो गया। कितनी दिव्य मूर्ति थी। छोटा-सा गोल-मटोल आदमी, चिकना सिर, फूले गाल, ब्रह्म तेज से प्रदीप्त आँखें। रोरी और चन्दन देवताओं की प्रतिभा प्रदान कर रही थी। दुखी को देखकर श्रीमुख से बोले, ''आज कैसे चला रे दुखिया?''

दुखी ने सिर झुका कर कहा, ''बिटिया की सगाई कर रहा हूँ महाराज! कुछ साइत-सगुन बिचारना है। कब मर्जी होगी?''

घासी, ''आज मुझे छुट्टी नहीं। हाँ, साँझ तक आ जाऊँगा।''

दुखी, ''नहीं महाराज जल्दी मर्जी हो जाये। सब सामान ठीक कर आया हूँ। यह घास कहाँ रख दूँ?

घासी, ''इसे गाय के सामने डाल दे और जरा झाड़ू लेकर द्वार तो साफ कर दे। यह बैठक भी कई दिन से लीपी नहीं गयी। उसे भी गोबर से लीप दे। तब तक मैं भोजन कर

लूँ। फिर जरा आराम करके चलूँगा। हाँ, यह लकड़ी भी चीर देना। खलिहान में चार खाची भूसा पड़ा है, उसे भी उठा लाना और भुसौल में रख देना।''

दुखी फौरन हुकम की तामील करने लगा। द्वार पर झाड़ू लगायी, बैठक को गोबर से लीपा। तब तक बारह बज गये। पंडितजी भोजन करने चले गये। दुखी ने सुबह से कुछ नहीं खाया था। उसे भी जोर की भूख लगी, पर वहाँ खाने को क्या धरा था? घर यहाँ से मील भर था। वहाँ खाने चला जाये तो पंडितजी बिगड़ जायें। बेचारे ने भूख दबायी और लकड़ी फाड़ने लगा। लकड़ी की मोटी-सी गाँठ थी, जिस मर पहले कितने ही भक्तों ने अपना जोर अजमा लिया था। वह उसी दम-खम के साथ लोहे से लोहा लेने के लिए तैयार था। दुखी घास छीलकर बाजार ले जाता था। लकड़ी चीरने का उसे अभ्यास न था। घास उसके खुरपे के सामने सिर झुका देती थी। यहाँ कस-कसकर कुल्हाड़ी का भरपूर हाथ लगाता, पर उस गाँठ पर निशान तक न पड़ता था। कुल्हाड़ी उलट जाती। पीसने से तर था, हाँफता था, थककर बैठ जाता, फिर उठता था, हाथ उठाते न उठते थे, पाँव काँप रहे थे, तितलियाँ उड़ रही थीं, फिर भी अपना काम किये जाता था। अगर एक चिलम तम्बाखू पीने को मिल जाती तो शायद कुछ-कुछ ताकत आती। उसने सोचा, यहाँ चिलम और तम्बाखू कहाँ मिलेगी? ब्राह्मनों का पूरा है। ब्राह्मन लोग हम नीच जातों की तरह तम्बाखू थोड़े ही पीते हैं। सहसा उसे याद आया कि गाँव में एक गोंड भी रहता है। उसके यहाँ जरूर चिलम-तम्बाखू होगी। तुरन्त उसके घर दौड़ा। खैर, मेहनत सुफल हुई। उसने तम्बाखू भी दी और चिलम दी, पर आग वहां न थी। दुखी ने कहा, ''आग की चिंता न करो भाई। मैं जाता हूँ, पंडितजी के घर से माँग लूँगा। वहाँ तो अभी रसोई बन रही थी।''

यह कहता हुआ वह दोनों चीजें लेकर चला आया और पंडितजी के घर में बरोठे के द्वार पर खड़ा होकर बोला, ''मालिक, रचिक आग मिल ज़ाये तो चिलम पी लें।''

पंडितजी भोजन कर रहे थे। पंडिताइन ने पूछा, ''यह कौन आदमी आग मांग रहा है?''

पंडित, ''अरे, वही ससुरा दुखिया चमार है। कहा है, थोड़ी-सी लकड़ी चीर दे। आग तो है, दे दो।''

पंडिताइन ने गरजकर कहा, ''वह घर में आया क्यों?''

पंडित ने हारकर कहा, ''सुसरे का अभाग था और क्या?''

पंडिताइन, ''अच्छा, इस बखत तो आग दिये देती हूँ, लेकिन फिर जो इस तरह कोई घर में आयेगा तो उसका मुँह ही जला दूँगी।''

दुखी के कानों में इन बातों की भनक पड़ रही थी। पछता रहा था, नाहक आया। सच तो कहती है। पंडित के घर में चमार कैसे चला आये? बड़े पवित्तर होते हैं यह लोग। तभी तो संसार पूजता है, तभी तो इतना मान है। भर-चमार थोड़े ही हैं। इसी गाँव में बूढ़ा हो गया, मगर मुझे इतनी अकल भी न आयी।

इसलिए जब पंडिताइन आग लेकर निकली तो वह मानों स्वर्ग का वरदान पा गया। दोनों हाथ जोड़कर जमीन पर माथा टेकता हुआ बोला, ''पंडताइन माता, मुझसे बड़ी भूल हुई कि घर में चला आया। चमार की अकल ही तो ठहरी। इतने मूरख न होते तो लात क्यों खाते?''

पंडिताइन चिमटे से पकड़कर आग लायी थीं। पाँच हाथ दूर से घूँघट की आड़ से दुखी की तरफ आग फेंकी। आग की बड़ी-सी चिनगारी दुखी के सिर पर पड़ गयी। जल्दी से पीछे हटकर सिर को झोंटे देने लगा। उसके मन ने कहा—यह एक पवित्तर बराहमन के घर को अपवित्तर करने का फल है। भगवान ने कितनी जल्दी फल दे दिया। इसी से तो संसार पंडितों से डरता है। और सबके रुपये मारे जाते हैं। बराहमन के रुपये भला कोई मार तो ले। घर भर का सत्यानाश हो जाये।

बाहर आकर उसने चिलम पी और फिर कुल्हाड़ी लेकर जुट गया। खटखट की आवाजें आने लगीं।

उस पर आग पड़ गयी तो पंडिताइन को उस पर कुछ दया आ गयी। पंडितजी भोजन करके उठे तो बोली, ''इस चमरवा को भी कुछ खाने को दे दो, बेचारा कब से काम कर रहा है। भूखा होगा।''

पंडितजी ने इस प्रस्ताव को व्यावहारिक क्षेत्र समझकर पूछा, ''रोटियाँ हैं?''

पंडिताइन, ''दो-चार बच जायेंगी।''

पंडित, ''दो- चार रोटियों में क्या होगा? चमार है, कम से कम सेर भर चढ़ा जायेगा।''

पंडिताइन कानों पर हाथ रखकर बोलीं, ''अरे, बाप रे! सेर भर! तो फिर रहने दो।''

दुखी ने चिलम पीकर फिर कुल्हाड़ी संभाली। दम लेने से जरा हाथों में ताकत आ गयी थी। कोई आधे घण्टे तक फिर कुल्हारी चलाता रहा। फिर बेदम होकर वहीं सिर पकड़ के बैठ गया।

इतने में गोंड आ गया। बोला, ''क्यों जान देते हो बूढ़े दादा, तुम्हारे फाड़े यह गाँठ न फटेगी। नाहक हलाकान होते हो।''

दुखी ने माथे का पसीना पोंछकर कहा, ''अभी गाड़ी भर भूसा ढोना है भाई।''

गोंड, ''कुछ खाने को मिला कि काम ही कराना जानते हैं, जाके माँगते क्यों नहीं?''

दुखी, ''कैसी बात करते हो चिखुरी, बाम्हन की रोटी हमको पचेगी?''

गोंड, ''पचने को पच जायेगी, पहले मिले तो। मूछों पर ताव देकर भोजन किया और आराम से सोये, तुम्हें लकड़ी फाड़ने का हुक्म लगा दिया। जमींदार भी कुछ खाने को देता है। हाकिम भी बेगार लेता है तो थोड़ी बहुत मजूरी दे देता है। यह उनसे भी बढ़ गये, उस पर धर्मात्मा बनते हैं।''

दुखी, ''धीरे-धीरे बोलो भाई, कहीं सुन लें तो आफत आ जाये।'' यह कहकर दुखी फिर संभल पड़ा और कुल्हाड़ी की चोट मारने लगा। चिखुरी को उस पर दया आयी। आकर कुल्हाड़ी उसके हाथ से छीन ली और कोई आध घण्टे खूब कसकर-कसकर कुल्हाड़ी चलायी, पर गाँठ में एक दरार भी न पड़ी। तब उसने कुल्हाड़ी फेंक दी और यह कहकर चला गया, ''तुम्हारे फाड़े यह न फटेगी। जान भले निकल जाये।''

दुखी सोचने लगा, बाबा ने यह गाँठ कहाँ रख छोड़ी थी कि फाड़े नहीं फटती। कहीं दरार तक तो पड़ती नहीं। मैं कब तक इसे चीरता रहूँगा? अभी घर पर सौ काम पड़े हैं। कारज-परोजन का घर है, एक न एक चीज घटी ही रहती है, पर इन्हें क्या चिंता? चलूँ, जब तक भूसा ही उठा लाऊँ। कह दूँगा बाबा। आज तो लकड़ी नहीं फटी, कल आकर फाड़ दूँगा।

उसने झौवा उठाया और भूसा ढोने लगा। खलिहान यहाँ से दो फरलांग से कम न था। अगर झौवा खूब भर-भरकर लाता तो काम जल्द खत्म हो जाता, लेकिन फिर झौवे को

उठाता कौन? अकेला भरा हुआ झौवा उससे न उठ सकता था। इसलिए थोड़ा-थोड़ा लाता था। चार बजे कहीं भूसा खत्म हुआ। पंडितजी की नींद भी खुली। मुँह-हाथ धोया। पान खाया और बाहर निकले। देखा, तो दुखी झौवे पर सिर रखे सो रहा है। जोर से बोले, "अरे दुखिया, तू सो रहा है? लकड़ी तो अभी ज्यों की त्यों पड़ी हुई है। इतनी देर तू क्या करता रहा? मुट्ठीभर भूसा ढोने में साँझ कर दी। उस पर सो रहा है। उठ, ले कुल्हाड़ी और लकड़ी फाड़ डाल। तुझसे जरा-सी लकड़ी नहीं फटती। फिर साइत भी वैसी निकलेगी, मुझे दोष मत देना। इसी से कहा है कि नीच के घर में खाने को हुआ और उसकी आँखें बदलीं।"

दुखी ने फिर कुल्हाड़ी उठायी। जो बातें पहले से सोच रखी थीं वह सब भूल गयीं। पेट पीठ में धँसा जाता था, आज सवेरे जलपान तक न किया था। अवकाश ही न मिला। उठना भी पहाड़ मालूम होता था। जी डूबा जाता था, पर दिल को समझा कर उठा। पंडितजी हैं, कहीं साइत ठीक न विचारें तो फिर सत्यानाश ही हो जाये। तभी तो संसार में इतना मान है। साइत ही का तो सब खेल है। जिसे चाहे बिगाड़ दें। पंडितजी गाँठ के पास आकर खड़े हो गये और बढ़ावा देने लगे, "हाँ! मार कसके, और मार . . . . कसके मार . . . . अब जोर से मार . . . . तेरे हाथ में तो जैसे दम ही नहीं है . . . . लगा कसके, खड़ा सोचने क्या लगता है . . . . हाँ . . . . बस फटा ही चाहती है, दे उसी दरार में।

दुखी अपने होश में न था। जाने कौन-सी गुप्त शक्ति उसके हाथों को चला रही थी। थकन, भूख, कमजोरी सब मानों भाग गयीं। उसे अपने बाहुबल पर स्वयं आश्चर्य हो रहा था। एक-एक चोट वज्र की तरह पड़ती थी। आध घण्टे तक वह इसी तरह उन्माद की दशा में हाथ चलाता रहा, यहाँ तक कि लकड़ी बीच से फट गयी—और दुखी के हाथ से कुल्हाड़ी छूटकर गिर पड़ी। इसके साथ ही वह भी चक्कर खाकर गिर पड़ा। भूखा, प्यासा, थका हुआ शरीर जवाब दे गया।

पंडितजी ने पुकारा, "उठके दो-चार हाथ और लगा दे। पतली-पतली चैलियाँ हो जायें।"

दुखी न उठा। उन्होंने भी अब उसे दिक करना उचित न समझा। पंडितजी ने भीतर जाकर बूटी छानी, शौच गये, स्नान किया और पंडिताई बाना पहनकर बाहर निकले। दुखी अभी तक वहीं पड़ा हुआ था। जोर से पुकारा, " अरे, क्या पड़े ही रहोगे दुखी? चलो, तुम्हारे घर चल रहा हूँ। सामान ठीक-ठाक है न?"

दुखी फिर भी न उठा।

अब पंडितजी को कुछ शंका हुई। पास जाकर देखा जो दुखी अकड़ा पड़ा हुआ था। बदहवास होकर भागे और पंडिताइन से बोले, "दुखिया तो जैसे मर गया।"

पंडिताइन हकबका कर बोलीं, "वह तो अभी लकड़ी चीर रहा था न।"

पंडित, """हाँ, लकड़ी चीरते-चीरते मर गया। अब क्या होगा?"

पंडिताइन ने शांत होकर कहा, "होगा क्या, चमरौने में कहला भेजो, मुर्दा उठा ले जायें।"

एक क्षण में गाँव भर में खबर हो गयी। पूरे ब्राह्मणों की ही बस्ती थी। केवल एक घर गोंड का था। लोगों ने उधर का रास्ता छोड़ दिया। कुएँ का रास्ता उधर से ही था। पानी कैसे भरा जाये। चमार की लाश के पास से होकर पानी भरने कौन जाये। एक बुढ़िया ने पंडितजी से कहा, "अब मुर्दा फेंकवाते क्यों नहीं! कोई गाँव में पानी पियेगा या नहीं?"

इधर गोंड ने चमरौने में जाकर सबसे कह दिया, "खबरदार, मुर्दा उठाने मत जाना। अभी पुलिस की तहकीकात होगी। दिल्लगी है कि एक गरीब की जान ले लो। पंडित होंगे तो अपने घर के होंगे। लाश उठाओगे तो तुम भी पकड़े जाओगे।"

इसके बाद ही पंडितजी पहुँचे पर चमरौने का कोई आदमी लाश उठा लाने को तैयार न हुआ। हाँ, दुखी की स्त्री और कन्या दोनों हाय-हाय करती वहाँ चलीं और पंडिजी के द्वार पर आकर सिर पीट-पीटकर रोने लगीं। उनके साथ दस-पाँच और चमारिनें थीं। कोई रोती थी, कोई समझाती थी, पर चमार एक भी न था। पंडितजी ने चमारों को बहुत धमकाया, समझाया, मिन्नत की, पर चमारों के दिल पर पुलिस का रोब छाया हुआ था, एक भी न भिनका। आखिर निराश होकर लौट आये।

आधी रात तक रोना-पीटना जारी रहा। देवताओं को सोना मुश्किल हो गया, पर लाश उठाने कोई चमार न आया, और ब्राह्मण चमार की लाश कैसे उठाते। भला, ऐसा किसी शास्त्र-पुराण में लिखा है? कहीं कोई दिखा दे।

पंडिताइन ने झुँझलाकर कहा, "इन डाइनों ने तो खोपड़ी चाट डाली सबों का गला भी नहीं थकता।"

पंडित ने कहा, "रोने दो चुड़ैलों को, कब तक रोयेंगी? जीता था, तो कोई बात न पूछता था। मर गया तो कोलाहल मचाने के लिए सब आ पहुँचीं।"

पंडिताइन, "चमार का रोना मनहूस है।"

पंडित, "हाँ, बहुत मनहूस।"

पंडिताइन, "अभी से दुर्गंध उठने लगी।"

पंडित, "चमार था सुसरा कि नहीं, खाध-अखाध किसी का विचार है इन सबों को?"

पंडिताइन, "इन सबों को घिन भी नहीं लगती।"

पंडित, "भ्रष्ट हैं सब।"

रात तो किसी तरह कटी, मगर सबेरे भी कोई चमार न आया। चमारिनें भी रो-पीटकर चली गयीं, दुर्गंध कुछ-कुछ फैलने लगी।

पंडितजी ने एक रस्सी निकाली। उसका फंदा बनाकर मुर्दे के पैर में डाला और फंदे को खींचकर कस दिया। अभी कुछ-कुछ धुँधला था। पंडितजी ने रस्सी पकड़कर लाश को घसीटना शुरू किया और गाँव के बाहर ले गये। वहाँ से आकर तुरन्त स्नान किया, दुर्गापाठ पढ़ा और घर में गंगाजल छिड़का।

उधर दुखी की लाश को खेत में गीदड़ और गिद्ध, कुत्ते और कौए नोच रहे थे। यही जीवन-पर्यन्त की भक्ति, सेवा और निष्ठा का पुरस्कार था।



चतुरसेन शास्त्री

(जन्म1891 ई० : मृत्यु 1960 ई०)

आचार्य चतुरसेन शास्त्री का जन्म पश्चिमी उत्तर प्रदेश के जिला अनूप में हुआ। आपने अधिकतर उपन्यास और कहानियों की रचना की है। आपके साहित्य की विषयभूमि बौद्धकालीन, राजपूत कालीन एवं मुगलकालीन समाज और संस्कृति है। कुछ कहानियाँ आधुनिक सामाजिकता से भी सम्बद्ध हैं। आपके कहानी साहित्य में 'दुखवा मैं कासे कहूँ मोरी सजनी' यह कहानी सर्वश्रेष्ठ है।

आपने अपनी साहित्य साधना में करीब चार सौ पचास कहानियाँ और करीब 32 उपन्यास लिखे हैं। आपकी कहानियाँ बाहर-भीतर, दुखवा मैं कासे कहूँ, धरती और आसमान, सोया हुआ शहर, कहानी खत्म हो गयी आदि भागों में विभाजित है। आपके उपन्यासों में हृदय की परख, व्यभिचार, हृदय की प्यास, अमर अभिलाषा, आत्मदाह, वैशाली की नगर वधू, सोना और खून, नरमेध, अपराजिता आदि प्रसिद्ध हैं।

दुखवा मैं कासे कहूँ मोरी सजनी—

प्रस्तुत कहानी में लेखक ने एक प्रेम कहानी का चित्रण किया है। जिसमें गुनाह कोई और करता है और सजा कोई और पाता है। न गुनाह करने वाले का कसूर है न सजा पाने वाले का कसूर है और न ही सजा देने वाले का कसूर है।

4. दुखवा मैं कासे कहूँ मोरी सजनी

गर्मी के दिन थे। बादशाह ने उसी फाल्गुन में सलीमा से नई शादी की थी। सल्तनत के सब झंझटों से दूर रहकर नई दुलहिन के साथ प्रेम और आनन्द की कलोलें करने, वह सलीमा को लेकर कश्मीर के दौलतखाने में चले आये थे।

रात दूध में नहा रही थी। दूर के पहाड़ों की चोटियाँ बर्फ से सफेद होकर चाँदनी में बहार दिखा रही थीं। आरामबाग के महलों के नीचे पहाड़ी नदी बल खाकर बह रही थी।

मोतीमहल के एक कमरे में शमादान जल रहा था, और उसकी खुली खिड़की के पास बैठी सलीमा रात का सौन्दर्य निहार रही थी। खुले हुए बाल उसकी फिरोजी रंग की ओढ़नी पर खेल रहे थे। चिकन के काम से सजी और मोतियों से गुँथी हुई उस फिरोजी रंग की ओढ़नी पर, कसी हुई कमखाब की कुरती और पन्नों की कमर-पेटी पर, अंगूर के बराबर बड़े मोतियों की माला झूम रही थी। सलीमा का रंग भी मोती के समान था। उसकी देह की गठन निराली थी। संगमर्मर के समान पैरों में जरी के काम के जूते पड़े थे, जिन पर दो हीरे धक्-धक् चमक रहे थे।

कमरे में एक कीमती ईरानी कालीन का फर्श बिछा था, जो पैर लगते ही हाथ भर धँस जाता था, सुगन्धित मसालों से बने हुए शमादान जल रहे थे। कमरे में चार पूरे कद के आईने लगे थे। संगमर्मर के आधारों पर सोने-चाँदी के फूलदानों में ताजे फूलों के गुलदस्ते रक्खे थे। दीवारों और दरवाजों पर चतुराई से गूँथी हुई नागकेसर और चम्पे की मालाएँ झूल रही थीं, जिनकी सुगन्ध से कमरा महक रहा था। कमरे में अनगिनत बहुमूल्य कारीगों की देश-विदेश की वस्तुएँ करीने से सजी हुई थीं।

बादशाह दो दिन से शिकार को गये थे। आज इतनी रात हो गई, अभी तक नहीं आये। समीला चाँदनी में दूर तक आँखें बिछाये सवारों की गर्द देखती रही। आखिर उससे न रहा गया, वह खिड़की से उठकर, अनमनी सी होकर मसनद पर आ बैठी। उम्र और चिन्ता की गर्मी जब उसे सहन न हुई, तब उसने अपनी चिकन की ओढ़नी भी उतार फेंकी और आप ही आप झुँझलाकर बोली—"कुछ भी अच्छा नहीं लगता। अब क्या करूँ?" इसके बाद

उसने पास रक्खी बीन उठा ली। दो-चार उँगली चलाई, मगर स्वर न मिला। उसने भुनभुनाकर कहा—"मर्दों की तरह यह मेरे वश में नहीं है।" सलीमा ने उकता कर उसे रख कर दस्तक दी। एक बाँदी दस्तबस्ता हाजिर हुई।

बांदी अत्यन्त सुन्दरी और कमसिन थी। उसके सौंदर्य में एक गहरे विषाद की रेखा और नेत्रों में नैराश्य-स्याही थी, उसे पास बैठने का हुक्म देकर सलीमा ने कहा—"साकी, तुझे बीन अच्छी लगती है या बाँसुरी?"

बाँदी ने नम्रता से कहा—"हुज़ूर" जिसमें खुश हों।"

सलीमा ने कहा—"पर तू किसमें खुश है?"

बांदी ने कम्पित स्वर में कहा—"सरकार बांदियों की खुशी ही क्या?"

क्षण भर सलीमा ने बाँदी के मुँह की तरफ देखा—वैसा ही विषाद, निराशा और व्याकुलता का मिश्रण हो रहा था।

सलीमा ने कहा—"मैं क्या तुझे बाँदी की नजर से देखती हूँ?"

"नहीं, हजरत की तो लौंडी पर खास मेहरबानी है।"

"तब तू इतनी उदास, झिझकी हुई और एकान्त में क्यों रहती है? जब से तू नौकर हुई है, ऐसा ही देखती हूँ? अपनी तकलीफ मुझसे तो कह प्यारी साकी?"

इतना कहकर सलीमा ने उसके पास खिसक कर उसका हाथ पकड़ लिया।

बाँदी काँप गई, पर बोली नहीं।

सलीमा ने कहा—"कसमिया! तू अपना दर्द मुझसे कह! तू इतनी उदास क्यों रहती है?"

बाँदी नें कम्पित स्वर में कहा—"हुजूर, क्यों इतनी उदास रहती है?"

सलीमा ने कहा—"इधर जहाँपनाह कुछ कम आने लगे हैं। इससे तबीयत ज़रा उदास रहती है।"

बाँदी—"सरकार, प्यारी चीज न मिलने से इन्सान को उदासी आ ही जाती है; अमीर और गरीब, सभी का दिल तो दिल ही है।"

सलीमा हँसी। उसने कहा—"समझी, अब तू किसी को चाहती है। मुझे उसका नाम बता, मैं उसके साथ तेरी शादी करा दूँगी।"

साकी का सिर घूम गया। एकाएक उसने बेगम की आँखों से आँख मिलाकर कहा—"मैं आपको चाहती हूँ।"

सलीमा हँसते-हँसते लोट गई। उस मदमाती हँसी के वेग में उसने बाँदी का कम्पन नहीं देखा। बाँदी ने वंशी लेकर कहा—"क्या सुनाऊँ?"

बेगम ने कहा—"ठहर, कमरा बहुत गर्म मालूम देता है। इसके तमाम दरवाजे और खिड़कियाँ खोल दे। चिरागों को बुझा दे, चटखती चाँदनी का लुत्फ़-उठाने दे और वे फूल-मालाएँ मेरे पास रख दे।"

बाँदी उठी। सलीमा बोली—सुन, पहले एक ग्लास शरबत दे, बहुत प्यासी हूँ।"

बाँदी ने सोने के ग्लास में खुशबूदार शरबत बेगम के सामने ला धरा। बेगम ने कहा—"उफ़! यह तो बहुत गर्म है। क्या इसमें गुलाब नहीं दिया?"

बांदी ने नम्रता से कहा—"दिया तो है सरकार ?"

"अच्छा इसमें थोड़ा-सा इस्तम्बोल और मिला।"

साकी ग्लास लेकर दूसरे कमरे में चल गई। इस्तम्बोल मिलाया और भी एक चीज मिलाई। फिर वह सुवासित मदिरा का पात्र बेगम के सामने ला धरा।

एक ही साँस में उसे पीकर बेगम ने कहा,—"अच्छा, अब सुना। तूने कहा था कि मुझे प्यार करती है। सुना, कोई प्यार का गाना सुना।"

इतना कह और ग्लास को गलीचे पर लुढ़का कर मदमाती सलीमा उस कोमल मखमली मसनद पर खुद भी लुढ़क गई, और रसभरे नेत्रों से साकी की ओर देखने लगी। साकी ने वंशी का सुर मिला कर गाना शुरू किया—

"दुखवा मैं कासे कहूँ मोरी सजनी . . . ।"

बहुत देर तक साकी की वंशी और कण्ठ-ध्वनि कमरे में घूम-घूमकर रोती रही। धीरे-धीरे साकी खुद रोने लगी। सलीमा मदिरा और यौवन के नशे में होकर घूमने लगी।

गीत खतम करके साकी ने देखा, सलीमा बेसुध पड़ी है। शराब की तेजी से उसके गाल एकदम सुर्ख हो गये हैं और ताम्बूल-राग-रंजित होंठ रह-रहकर फड़क रहे हैं। साँस की सुगन्ध से कमरा महक रहा है। जैसे मंद पवन से कोमल पत्ती काँपने लगती है, उसी प्रकार सलीमा का वक्षःस्थल धीरे-धीरे काँप रहा है। प्रस्वेद की बूँदें ललाट पर दीपक के उज्ज्वल प्रकाश में मोतियों की तरह चमक रही हैं।

वंशी रखकर साकी क्षण भर बेगम के पास आकर खड़ी हुई। उसका शरीर काँपा, आँखें जलने लगीं, कण्ठ सूख गया। वह घुटने के बल बैठकर बहुत धीरे-धीरे अपने आँचल से बेगम के मुख का पसीना पोंछने लगी। इसके बाद उसने झुककर बेगम का मुँह चूम लिया।

इसके बाद ज्योंही उसने अचानक आँख उठाकर देखा, खुद दीन-दुनियाँ के मालिक शाहजहाँ खड़े उसकी यह करतूत अचरज और क्रोध से देख रहे हैं।

साकी को साँप डस गया। वह हत-बुद्धि की तरह बादशाह का मुँह ताकने लगी। बादशाह ने कहा—"तू कौन है, और यह क्या कर रही थी?"

साकी चुप खड़ी रही। बादशाह ने कहा—"जवाब दे!"

साकी ने धीमे स्वर में कहा—"जहाँपनाह! कनीज अगर कुछ जवाब न दे तो!"

बादशाह सन्नाटे में आ गये। बाँदी की इतनी स्पर्धा!

उन्होंने कहा—"मेरी बात का जवाब नहीं? अच्छा, तुझे नंगी करके कोड़े लगाये जायेंगे!"

साकी ने कम्पित स्वर में कहा—"मैं मर्द हूँ!"

बादशाह की आँखों में सरसों फूल उठी, उन्होंने अग्निमय नेत्रों से सलीमा की ओर देखा। वह बेसुध पड़ी सो रही थी। उसी तरह उसका भरा यौवन खुला पड़ा था। उनके मुँह से निकला, "उफ़ फाहसा!" और तत्काल उनका हाथ तलवार की मूठ पर गया। फिर नीचे को उन्होंने घूमकर कहा—"दोज़ख के कुत्ते! तेरी यह मजाल!"

फिर कठोर स्वर में पुकारा—"मादूम!"

क्षण भर में एक भयंकर रूपवाली तातारी औरत बादशाह के सामने अदब से आ खड़ी हुई। बादशाह ने हुक्म दिया—"इस मर्दूद को तहखाने में डाल दे, ताकि बिना खाये-पिये मर जाये।"

मादूम ने अपने कर्कश हाथों में युवक का हाथ पकड़ा और ले चली। थोड़ी देर में दोनों लोहे के एक मजबूत दरवाजे के पास आ खड़े हुए। तातारी बाँदी ने चाबी निकालकर दरवाजा खोला और कैदी को भीतर ढकेल दिया। कोठरी की गच कैदी का बोझा ऊपर पड़ते ही काँपती हुई नीचे को धसकने लगी।

प्रभात हुआ। सलीमा की बेहोशी दूर हुई। चौंक कर उठ बैठी। बाल सँवारे, ओढ़नी ठीक की और चोली के बटन कसने को आईने के सामने जा खड़ी हुई। खिड़कियाँ बन्द थीं। सलीमा ने पुकारा—" साकी! प्यारी साकी! बड़ी गर्मी है, जरा खिड़की तो खोल दे। निगोड़ी नींद ने तो आज गजब ढा लिया। शराब कुछ तेज थी।"

किसी ने सलीमा की बात न सुनी। सलीमा ने जरा जोर से पुकारा—"साकी!"

जवाब न पाकर सलीमा हैरान हुई। वह खुद खिड़कियाँ खोलने लगी, मगर खिड़कियाँ बाहर से बन्द थीं। सलीमा ने विस्मय से मन-ही-मन कहा—"क्या बात? लौंडिया सब क्या हुईं?"

वह द्वार की तरफ चली। देखा, एक तातारी बाँदी नंगी तलवार लिये पहरे पर मुस्तैद खड़ी है। बेगम को देखते ही उसने सिर झुका लिया।

सलीमा ने क्रोध से कहा—"तुम लोग यहाँ क्यों हो?"

"बादशाह के हुक्म से।"

"क्या बदशाह आ गये?"

"जी हाँ।"

"मुझे इत्तला क्यों नहीं की?"

"हुक्म नहीं था।"

"बादशाह कहाँ हैं?"

"जीनतमहल के दौलतखाने पर।"

सलीमा के मन में अभिमान हुआ। उसने कहा—"ठीक है, खूबसूरती की हाट में जिनका कारोबार है, वे मुहब्बत को क्या समझेंगे? तो अब जीनतमहल की किस्मत खुली?"

तातारी स्त्री चुपचाप खड़ी रही। सलीमा बोली—

"मेरी साकी कहाँ है?"

"कैद में।"

"क्यों?"

"जहाँपनाह का हुक्म था।"

"उसका कसूर क्या था?"

"मैं अर्ज नहीं कर सकती।"

"कैंदखाने की चाबी मुझे दे, मैं उसे छुड़ाती हूँ।"

"आपको अपने कमरे से बाहर जाने का हुक्म नहीं है।"

"तब क्या मैं भी कैंद हूँ?"

"जी, हाँ।"

सलीमा की आँखों में आँसू भर आये। वह लौटकर मसनद पर पड़ गई और फूट-फूटकर रोने लगी। कुछ ठहर कर उसने एक खत लिखा—

"हुजूर! मेरा कुसूर माफ फर्मावें। दिन भर की थकी होने से ऐसी बेसुध सो गयी कि हुजूर के इस्तकबाल में हाजिर न रह सकी। और मेरी उस प्यारी लौंडी की भी जां बख्शी की जाय। उसने हुजूर के दौलतखाने में लौट आने की इत्तला मुझे वाजिबी तौर पर न देकर बेशक भारी कसूर किया है, मगर वह नई, कमसिन, गरीब और दुखिया है।

कनीज

सलीमा।"

चिट्ठी बादशाह के पास भेज दी गई। बादशाह की तबीयत बहुत नासाज थी। तमाम हिन्दुस्तान के बादशाह की औरत फाहसा निकले। बादशाह अपनी आँखों से परपुरुष को उसका मुँह चूमते देख चुके थे। वह गुस्से से तिलमिला रहे थे। और गम गलत करने को अन्धाधुन्ध शराब पी रहे थे। जीनतमहल मौका देखकर सौतियाडाह का बुखार निकाल रही थी। तातारी बाँदी को देखकर बादशाह ने आगबबूला होकर कहा—"क्या लाई हो?"

बाँदी ने दस्तबस्ता अर्ज की—"खुदाबन्द! सलीमा बीबी की अर्जी है।"

बादशाह ने गुस्से से होठ चबाकर कहा—"उससे कह दे कि मर जाय।"

इसके बाद खत में एक ठोकर मारकर उन्होंने उधर से मुँह फेर लिया।

बाँदी लौट आई। बादशाह का जवाब सुनकर सलीमा धरती पर बैठ गई। उसने बाँदी को बाहर जाने का हुक्म दिया और दरवाजा बन्द करके फूट-फूटकर रोई। घण्टों बीत गये, दिन छिपने लगा, सलीमा ने कहा—"हाय बादशाहों की बेगम होना भी बदनसीबी है! इन्तजारी करते-करते आँख फूट जाय, मिन्नतें करते-करते जबान घिस जाय, अदब करते-करते जिस्म के टुकड़े-टुकड़े हो जाँय, फिर भी इतनी-सी बात पर कि मैं जरा सो गई, उनके आने पर जाग न सकी, इतनी सजा? इनती बेइज्जती?"

तब मैं बेगम क्या हुई? जीनत और बांदियाँ सुनेंगी तो क्या कहेंगी? इस बेइज्जती के बाद मुँह दिखाने लायक कहाँ रही? अब तो मरना ही ठीक है अफसोस, मैं किसी गरीब की औरत क्यों न हुई?"

धीरे-धीरे स्त्रीत्व का तेज उसकी आत्मा में उदय हुआ। गर्व और दृढ़ प्रतिज्ञा के चिह्न उसके नेत्रों में छा गये। वह साँपिनी की तरह चपेट खाकर उठ खड़ी हुई। उसने एक और खत लिखा—

"दुनियाँ के मालिक? आपकी बीबी और कनीज होने की वजह से आपके हुक्म को मानकर मरती हूँ, इतनी बेइज्जती पाकर एक मलिका का मरना ही मुनासिब है, मगर इतने बड़े बादशाह को औरतों को इस कदर नाचीज तो न समझना चाहिए कि अदना-सो बेवकूफी की इतनी बड़ी सजा दी जाये। मेरा कुसूर तो इतना ही था कि मैं बेखबर सो गई।

खैर, फिर एक बार हुजूर को देखने की ख्वाहिश लेकर मरती हूँ। मैं उस पाक परवरदिगार के पास जाकर अर्ज करूंगी कि वह मेरे शौहर को सलामत रक्खे।

"सलीमा"

खत को इत्र से सुवासित करके ताजे फूलों के एक गुलदस्ते में इस तरह रख दिया, जिससे किसी की उस पर नजर पड़ जाय। इसके बाद उसने जवाहर की पेटी से एक बहुमूल्य अँगूठी निकाली और कुछ देर तक आँख गड़ा-गड़ाकर उसे देखती रही। फिर उसे चाट गई।

बादशाह शाम की हवाखोरी को नजर-बाग में टहल रहे थे। दो-तीन खोजे घबराये हुए आये और चिट्ठी पेश करके अर्ज की—"हुजूर गजब हो गया! सलीमा बीबी ने जहर खा लिया है और वह मर रही है।"

क्षण भर में बादशाह ने खत पढ़ लिया। झपटे हुए महल में पहुँचे। प्यारी दुलहिन सलीमा जमीन पर पड़ी है। आँखें ललाट पर चढ़ गई हैं। रंग कोयले के समान हो गया है। बादशाह से रहा न गया। उन्होंने घबराकर कहा—"हकीम, हकीम को बुलाओ!" कई आदमी दौड़े।

बादशाह का शब्द सुनकर सलीमा ने उसकी तरफ देखा, और धीमे स्वर में कहा—"जहे किस्मत।"

बादशाह ने नजदीक बैठकर कहा—"सलीमा, बादशाह की बेगम होकर तुम्हें यही लाजिम था?"

सलीमा ने कष्ट से कहा— "हुजूर मेरा कुसूर मामूली था।"

बादशाह ने कड़े स्वर में कहा—"बदनसीब! शाही जनानखाने में मर्द को भेष बदलकर रखना मामूली कुसूर समझती है? कानों पर यकीन कभी न करता, मगर आँखों देखी को झूठ मान लूँ।"

जैसे हजारों बिच्छुओं के एक साथ डंक मारने से आदमी तड़पता है, उसी तरह तड़पकर सलीमा ने कहा—"क्या?"

बादशाह डर कर पीछे हट गये। उन्होंने कहा—"सच कहो, इस वक्त तुम खुदा की राह पर हो, यह जवान कौन था?"

सलीमा ने अचकचा कर पूछा— "कौन जवान ?"

बादशाह ने गुस्से से कहा—"जिसे तुमने साकी बनाकर अपनें पास रक्खा था?"

बादशाह—"तो! क्या तुम सचमुच यह बात नहीं जानतीं?"

सलीमा के मुंह से निकला—"या खुदा?"

फिर उसके नेत्रों से आँसू बहने लगे। वह सब मा़मला समझ गई। कुछ देर बाद बोली—"खाविन्द! तब तो कुछ शिकायत ही नहीं, इस कुसूर की तो यही सज़ा मुनासिब थी। मेरी बदगुमानी माफ़ फ़र्माई जाय। मैं अल्लाह के नाम पर पड़ी कहती हूँ, मुझे इस बात का कुछ भी पता नहीं है।"

बादशाह का गला भर आया। उन्होंने कहा—"तो प्यारी सलीमा तुम बेकसूर ही चलीं?" बादशाह रोने लगे।

सलीमा ने उनका हाथ पकड़कर अपनी छाती पर रखकर कहा—"मालिक मेरे! जिसकी उम्मीद न थी, मरते वक्त वह मजा मिल गया। कहा-सुना माफ़ हो, एक अर्ज लौंडी की मंजूर हो।"

बादशाहने कहा—"जल्दी कहो सलीमा?"

सलीमा ने साहस से कहा—"उस जवान को माफ़ कर देना।"

इसके बाद सलीमा की आँखों से आँसू बह चले और थोड़ी ही देर में ठण्डी हो गई।

बादशाह ने घुटनों के बल बैठकर उसका ललाट चूमा और फिर बालक की तरह रोने लगे।

ग़जब के अँधेरे और सर्दी में युवक भूखा-प्यासा पड़ा था, एकाएक घोर चीत्कार करके किवाड़ खुले। प्रकाश के साथ ही एक गम्भीर शब्द तहख़ाने में भर गया—"बदनसीब नौजवान क्या होश-हवास में है?"

युवक ने तीव्र स्वर से पूछा—"कौन?"

जवाब मिला—बादशाह।''

युवक ने कुछ भी अदब किये बिना कहा, ''यह जगह बादशाहों के लायक नहीं है—क्यों तसरीफ लाये हैं?''

''तुम्हारी कैफियत नहीं सुनी थी, उसे सुनने आया हूँ।''

कुछ देर चुप रहकर युवक ने कहा—''सिर्फ सलीमा को झूठी बदनामी से बचाने के लिए कैफियत देता हूँ, सुनिए सलीमा जब बच्ची थी, मैं उसके बाप का नौकर था। तभी से मैं भी उसे प्यार करता था। सलीमा भी प्यार करती थी, पर वह बचपन का प्यार था। उम्र होने पर सलीमा परदे में रहने लगी और फिर वह शाहंशाह की बेगम हुई, मगर मैं उसे भूल न सका। पाँच साल तक पागल की तरह भटकता रहा। अन्त में भेष बदलकर बाँदी की नौकरी कर ली। सिर्फ उसे देखते रहने और ख़िदमत करके दिन गुजार देने का इरादा था। दस दिन उज्ज्वल चाँदनी, सुगंधित पुष्प-राशि, शराब की उत्तेजना और एकान्त ने मुझे बेबस कर दिया। उसके बाद मैंने आँचल से उसके मुख का पसीना पोंछा और मुँह चूम लिया। मैं इतना ही खतावार हूँ। सलीमा इसकी बाबत कुछ भी नहीं जानती।''

बादशाह कुछ देर चुपचाप खड़े रहे। उसके बाद वह दरवाजे बन्द किये बिना ही धीरे-धीरे चले गये।

सलीमा की मृत्यु को दस दिन बीत गये। बादशाह सलीमा के कमरे में ही दिन-रात रहते हैं। सामने नदी के उस पार, पेड़ों के झुरमुट में सलीमा की सफेद कब्र बनी है। जिस खिड़की के पास सलीमा बैठी उस दिन रात को बादशाह की प्रतीक्षा कर रही थी, उसी खिड़की में, उसी चौकी पर बैठे हुए बादशाह उसी तरह सलीमा की कब्र दिन-रात देखा करते हैं। किसी को पास आने का हुक्म नहीं। जब आधी रात हो जाती है, तो उस गम्भीर रात्रि के सन्नाटे में एक मर्म-भेदिनी गीत-ध्वनि उठ खड़ी होती है। बादशाह साफ़-साफ़ सुनते हैं, कोई करुण-कोमल-स्वर में गा रहा है—

''दुखवा मैं कासे कहूँ मोरी सजनी।''



भगवतीप्रसाद वाजपेयी

(जन्म 1899 ई०)

भगवती प्रसाद वाजपेयी का जन्म कानपुर जिले के मंगलपुर ग्राम में हुआ। आपने अपने साहित्य में सामाजिक चित्रों की अपेक्षा व्यक्ति मन के गहन चित्रण पर अधिक बल दिया है। आपने सामाजिक उद्देश्यों की अपेक्षा मध्यम वर्गीय मन के विविध ऊहापोह उपस्थित किए हैं। आप प्रारंभिक मनोविश्लेषणात्मक कथाकारों में से हैं। परंतु आपकी मनोविश्लेषणात्मकता व्यावहारिक है। उस कारण आपने निराश प्रेम की वेदना को अत्यधिक स्फीत करके उपस्थित किया है।

भगवतीप्रसाद वाजपेयी की साहित्य साधना में मधुपर्क, हिलोर, पुष्करिणी, दीपमालिका, मेरे सपने, उपहार, उतार-चढ़ाव, खाली बोतल, आदान-प्रदान, अंगारे, स्नेह, बानी औ लौ आदि कहानी संग्रह, प्रेमपथ, मीठी चुटकी, अनाथ पत्नी, त्यागमयी, लालिमा, पतिता की साधना, पिपासा, दो बहनें, पतवार, मनुष्य और देवता आदि करीब सत्ताईस उपन्यास प्रसिद्ध हैं।

निंदिया लागी

प्रस्तुत कहानी में लेखक ने मनुष्य के चरित्र के दो रूपों को उद्घाटित किया है। मनुष्य जो बाहर से है वही भीतर से नहीं होता। बस व्यावहारिकता के कारण वह अपने नौकरों पर हुकूमत करता है। परंतु अन्दर कहीं उसे भी इससे पीड़ा ही होती है। यही बात लेखक ने बेनीमाधव के चरित्र द्वारा स्पष्ट करने का प्रयास किया है।

5. निंदिया लागी

कालेज से लौटते समय मैं अक्सर अपने नये बँगले को देखता हुआ घर आया करता। उन दिनों वह तैयार हो रहा था। एक ओवरसियर साहब रोज़ाना, सुबह-शाम, देख-रेख के लिए आ जाते थे। वे मझले भैया के सहपाठी मित्रों में से थे। लम्बा कद, गौर वर्ण, लम्बी नाक—खूबसूरत—और मुख पर उल्लास का अभिनय आलोक। गम्भीर भी होते तो प्रायः मालूम यही होता कि मुस्करा रहे हैं।

नाम उनका बेनीमाधव था। अवस्था अब पैंतालीस वर्ष से ऊपर जान पड़ती थी। मिस्त्री और मजदूर, सब मिलाकर, कोई पचीस-तीस व्यक्ति काम कर रहे थे। मजदूरों में कुछ स्त्रियाँ भी थीं।

एक दिन मैंने देखा छत कूटी जा रही है। कूटने वालों में स्त्रियाँ ही हैं अधिकांश रूप से। दो पुरुष भी हैं, लेकिन वे जरा हटकर, एक कोने में हैं। स्त्रियाँ छत कूटती हुई एक गाना गा रही हैं। यों तो उनका गायन कुछ विशेष मधुर नहीं है, किन्तु अनेक साधारण सम्मिलित स्वरों के बीच में एक अत्यन्त कोमल स्वर भी है। तभी मैं उनके पास जाने को तत्पर हो गया। मुझे देखना था कि वह जो गाना गा रही है, जिसका कण्ठ इतना मधुर है, उसका रूप भी कुछ है या नहीं। मैं मानता हूँ कि यह मेरी दुर्बलता थी, किन्तु उन दिनों मेरी समझ में यह बात कैसे आती!

एकाएक पहले तो ओवरसियर साहब सामने आ गये, बोले—आ गये छोटे भैया!

मैंने उनकी ओर देखकर ज़रा-सा मुस्करा दिया और कहा—जान तो मुझे भी ऐसा ही पड़ता है।

तब हँसते हुए उन्होंने कहा—लेकिन दर-असल आप आये नहीं। आप समझते हैं कि दुनिया की नज़रों में जो आप यहाँ मौजूद हैं, इतने से ही मैं यह मान लूँ कि आप पूरे सोलह-आने-भर आ गये हैं। और जो कहीं आप अपना 'कुछ' छोड़ आये हों, तो?

वे तब इतना कहते-कहते मेरे निकट, बिल्कुल निकट आ गये, बोले—जब मैं अपने इंजीनियरिंग कालेज में पढ़ता था, तब मैं कैसा था सच जानिये, आपको देखकर जब मुझे उसकी याद आ जाती है तो जी मसोसने लगता है। तबीअत चाहती है कि अपने को क्या कर डालूँ, जिससे कुछ शान्ति मिले। लेकिन फिर यही सोचकर सन्तोष कर लेता हूँ कि मनुष्य की तृष्णा का अन्त नहीं है। न आकाश में, न महासागर के अतल में, न गिरि-गह्वर में— संसार में कहीं भी, कोई ऐसा स्थान नहीं मिल सकता, जहाँ पहुँचकर मनुष्य कामना से मुक्त हो सके।

बेनीबाबू के मुख पर अगमनीय गम्भीरता की छाप थी, यद्यपि अपने विमल हास से वे उसे छिपाना चाहते थे। मैंने कहा—आप मेरे अध्ययन की चीज हैं, यह मुझे आज मालूम हुआ।

एक ओर चलते हुए वे बोले—अभी आपको कुछ भी नहीं मालूम हुआ है।

किन्तु बेनीबाबू की इतनी-सी बात से मेरे मन का कुतूहल अभी शान्त नहीं हो पाया था, इसलिए मैं उनके पीछे-पीछे चल दिया।

घूमते, काम देखते हुए, एक मिस्त्री के पास जाकर वे खड़े हो गए। वह आर्च बनाने जा रहा था, बोले—देखो जी मिस्त्री, पत्तियाँ और फ़ूल बनाना ही काफी नहीं है। टहनी और उसमें उभड़े हुए काँटे भी दिखाने होते हैं। माना कि नकल-नकल ही है, असल चीज वह कभी हो नहीं सकती, किन्तु चीज की जो असलियत है, गुण के साथ दुर्गुण भी, नकल में यदि उसको स्पष्ट न किया जा सका, तो वह नकल भी नकल नहीं हो सकती। बनाने में तुमको अगर दिक्कत हो तो मैं नमूना दे जा सकता हूँ, लेकिन मेरी तबीयत की चीज अगर तुम न बना सके, तो मैं कह नहीं सकता कि आगे चलकर तुम्हें उसका क्या फल भोगना पड़ेगा।

मिस्त्री वृद्ध था। उसके बाल पक गये थे। उसकी आँखों पर पुरानी चाल का चश्मा चढ़ा हुआ था। बड़े गौर से वह बेनीबाबू की ओर देखने लगा, लेकिन कुछ कहा नहीं। तब बेनीबाबू वहाँ और अधिक ठहर न सके।

अव वे आँगन में एक टब के पास खड़े थे। नल का पानी टब में गिर रहा था। मैं थोड़ा पीछे था। जब उनके निकट पहुँचा तो वे बोले—आपने इस मिस्त्री की आँखों को देखा?

वह कुछ कह नहीं सका था, लेकिन उसकी आँखों ने जो बात कह दी, मैं उसे सहन नहीं कर सका। वह समझता है, मैंने फल भोगने की बात कह के उसको चोट पहुँचाने, उसका अपमान करने की चेष्टा की है, किन्तु वह नहीं जानता, जान भी नहीं सकता कि मेरी बात का कोई उत्तर न देकर उसने मुझ पर कैसा भयंकर आघात किया है। एक वह नहीं, मालूम नहीं, कितने आदमी आपको ऐसे मिल सकते हैं, जो मुझे गलत समझते हैं। आज पन्द्रह वर्षों से, बल्कि और भी अधिक काल से मुझसे जहाँ-कहीं भी मकान बनवाने का काम पड़ा है, मैंने इस मिस्त्री को अवश्य बुलाया है। मैंने काम के सम्बन्ध में कभी-कभी तो उसे इतना डाँटा है कि वह रो दिया है, तो भी कभी ऐसा अवसर नहीं आया कि उसने मुझे तीखा उत्तर दिया हो। उसका वही पुराना चश्मा है, वैसी ही भीतर तक प्रविष्ट हो जाने वाली दृष्टि। उसने कभी मजदूरी मुझसे तय नहीं की। और कभी ऐसा अवसर नहीं आया, जब काम समाप्त हो जाने पर, मजदूरी के अतिरिक्त, उसने दस-पन्द्रह रुपये पुरस्कार में न प्राप्त किये हों।. . .किन्तु इन सब बातों को अच्छी तरह समझते हुए भी डाँटना तो पड़ता ही है, क्योंकि उससे कलाकार की सुप्त कल्पना को जागरण मिलता है।

अब बेनीबाबू घूमते-फिरते वहीं जा पहुँचे, जहाँ स्त्रियाँ छत कूट रही थीं। एकाएक जो उन्होंने हैटधारी हम लोगों को देखा तो उनका गाना बन्द हो गया तब मेरे मन में आया कि इससे तो यही अच्छा था कि हम लोग यहाँ न आते। और कुछ नहीं तो संगीत का वह मृदुल स्वर तो कानों में पड़ता। और वह संगीत भी कैसा?—एकदम असाधारण। उसकी टेक तो क़भी भूल ही नहीं सकती। जैसी नन्हीं, वैसी ही भोली।

'निंदिया लागी—मै सोय गई गुइयाँ!'

बेनीबाबू ने खड़े-खड़े, इधर-उधर देखा और कहा—देखो इधर, इस तरह नहीं पीटना होता कि चोटों की आवाज का सिलसिला बिगड़ जाय। मुगरी की आवाजें, सारी की सारी एकबारगी, एक साथ, होनी चाहिए। और देखो, आज इस छत की पिटाई का काम खत्म हो जाना चाहिए।

रामलखन बोला—सरकार, आज कैसे पूरा होगा? दिन ही कितना रह गया है।

बको मत, रामलखन! काम नहीं पूरा होगा तो पैसा भी पूरा नहीं होगा। समझते हो न? काम का ही दूसरा नाम पैसा है।

रामलखन चुप रह गया।

बेनीबाबू भी चल दिए, लेकिन चलने के साथ ही पिटाई की आवाजें, उनकी धमक, उनकी गति और चूड़ियों की खनक और 'निंदिया लागी' का स्वर अतिशय गम्भीर हो गया। मैंने बेनीबाबू से कहा—आप काम लेना खूब जानते हैं।

वे हँसते-हँसते बोले—मैं जानता बहुत कुछ हूँ छोटे भैया, लेकिन जानना ही काफी नहीं होता। ज्ञान से भी बढ़कर जो वस्तु है, उसको भी तो जानना होता है, और उसे मैं अभी तक जान नहीं सका।

मैंने पूछ दिया—वह क्या?

वे बोले—सत्य का ग्रहण।

मैंने कहा—सिर्फ पहेली न कहिए, उसे समझाते भी चलिए।

वे तब एक पेड़ के नीचे, सड़क पर ही एक ओर कुर्सियाँ डालवाकर बैठ गये और बोले—ये स्त्रियाँ जो यहाँ मजदूरी करने आई हैं, कितने सबेरे घर से चली और कब पहुँचेंगी, कोई घर में अपने बच्चों को छोड़ आई है, किसी का पति खेत में काम करने गया होगा, किसी के कोई होगा ही नहीं और काम करते-करते उनको अगर उनकी सुधि आ ही जाती है और काम की गति में क्षणिक मन्दता हो ही उठती है तो वह भी आज की हमारी इस सभ्यता को सहन नहीं है। और तारीफ यह है कि हम समझ लेते हैं कि हम बड़े ज्ञानी हैं। हम यही देखकर सन्तोष कर लेते हैं कि जो स्त्री यहाँ पर मजदूरी कर रही है, हमको सिर्फ उसी से मतलब है, उसी की मजदूरी हम दे रहे हैं, किन्तु हम यह सोचने की जरूरत ही नहीं समझते कि वह स्त्री अपने जगत् को लेकर क्या है। जो बच्चा उसने उत्पन्न किया है वह भी तो अपने पालन-पोषण का भार अपनी माँ पर रखता है, पर हम लोग वहाँ तक सोचना ही नहीं चाहते। हमारे स्वार्थों ने सत्य को कितनी निरंकुशता के साथ दबा रखा है।

बेनीबाबू चुप हो गए। एक ओर खुले अम्बर में, विहंगावलियाँ, अपने पंखों को फैलाए, नितान्त निर्बन्ध हँसी-खुशी के साथ उड़ी चली जा रही थीं। एक साथ हम दोनों उधर देखने लगे, किन्तु बराबर उधर देखने के बदले मैंने एक बार फिर बेनीबाबू को ही देखा। उनके मस्तक के ऊपर चँदवा खुल आया था। उसमें नन्हें-नन्हें एक आध बाल ही

अवशिष्ट थे। वे अब सांध्य आलोक में चमक रहे थे। उनकी खुली आँखें यद्यपि चश्मे के भीतर थीं, तो भी मुझे प्रतीत हुआ, जैसे वे कुछ और भी फैल गई हैं। इसी क्षण वे बोले—अब यह काम और आगे न करूँगा, लेकिन. . . . . .।

उनका यह वाक्य अधूरा रह गया। जान पड़ा, वे कोई निश्चय कर रहे हैं और रुक-रुक जाते हैं। रुक इसलिए नहीं जाते कि रुकना चाहते हैं। रुक इसलिए जाते हैं कि रुकना नहीं चाहते।

तभी वे फिर बोले... तुम उस बात को अभी समझ नहीं सकोगे, लेकिन ऐसी बात नहीं है कि उस बात को समझने की तुम्हारी क्षमता कुन्द है। देखता हूँ, तुम विचारशील हो, और तभी मैं कहना भी चाहता हूँ कि आदमी तो अपने विश्वासों को लेकर खड़ा होता, वह भी क्या आदमी है? वह आदमी नहीं है। वह पशु है....पशु! लेकिन कैसे कहूँ कि पशु भी अपने विश्वासों के विरुद्ध खड़ा हो सकने वाला प्राणी है। वह तो. . . . .वह तो, बल्कि अपनी प्रवृत्तियों का ही स्वरूप होता है। और यह मनुष्य? छि: इससे भी अधर्म क्या कोई स्थिति है।

मैंने देखा, यह वातावरण तो अब अतिशय गम्भीर हो गया है। और उन दिनों इस तरह की निरी गम्भीरता मुझे ज़रा कम पसन्द आती थी, बल्कि साथी लोग जब ऐसे व्यक्तियों का मजाक उड़ाते, तो उस दल में मैं भी सम्मिलित हो जाया करता था। उस समय हम सब यही मानते थे कि जीवन एक हँसी खेल की चीज है। सर्वथा अनिश्चित और चरम अकल्पित जीवन के थोड़े-से दिनों को रोने या सोच-विचार में निपीड़ित-निर्जीव कर डालने में कौन-सी महत्ता है?

इसीलिए मैंने कह दिया—इन लोगों के गाने के बीच का यह, हाँ बस यह, स्वर मुझे बड़ा कोमल लगता है।

निमेषमात्र में, सम्यक बदल कर, वे बोले—

'जाओ, नज़दीक जा कर सुन आओ। हैट यहीं रख जाओ। फिर भी अगर वे गाना बन्द कर दें तो कहना—काम में हर्ज नहीं होना चाहिए, क्योंकि गाने के साथ छत कूटने का काम अधिक अच्छा होता है,' बेनीबाबू ने मुसकराते हुए कहा।

मैं चला गया—चुपचाप, बहुत धीरे-धीरे, पैर सँभाल-सँभाल कर। तो भी उनको मालूम हो ही गया। काम की गति में कुछ तीव्रता जरूर जान पड़ी, किन्तु गाना बन्द हो गया।

मैंने कहा—तुम लोगों ने गाना क्यों बन्द कर दिया?

खिलखिल के कुछ मदिर कलहास! कभी इधर—कभी उधर।

किसी ने अपनी सखी से कहा, जरा-सा धक्का देकर—गा री पत्ती चुप क्यों हो गई?

'तू ही क्यों नहीं गाती? छोटे भैया के सामने....'

'हूँ, बड़ी लाजवन्ती बनी है! जैसे दुलहे का मुँह ही न देखा हो!'

मैंने कहना चाहा—लड़ो मत : मैं चला जाता हूँ। लेकिन कुछ कह न सका। चुपचाप चला आया। चला तो आया, किन्तु उस खिलखिल और अपने सामने गाने से लजाने वाली उस पत्ती को मैंने फिर देखने की चेष्टा नहीं की।

कैसे उल्लास के साथ आया था, किन्तु कैसा भीषण द्वन्द्व लेकर चल दिया।

बेनीबाबू ने बड़े प्यार से पूछा—हाँ, कह जाओ।

मैंने कहा—क्या कह जाऊँ? बड़ी बात हुई। उन लोगों ने गाना बन्द कर दिया।

'फिर तुमने वह बात नहीं कही।'

'मैं कुछ कह नहीं सका।'

'तो यह कहो कि तुम खुद ही लजा गये?'

मैं चुप रहा। जिसने कभी चोरी नहीं की, जो यह भी नहीं जानता कि चोरी की कैसे जाती है, वह चीज क्या है, यदि वह कभी उसके दलदल में पड़ जाएगा तो उससे सफाई के साथ निकल ही कैसे सकेगा? वह तो निश्चयपूर्वक फँस जाएगा। वही गति मेरी हुई। क्या मैं जानता था कि बेनीबाबू मुझे ऐसी जगह ले जाएँगे, जहाँ पहुँचकर फिर मुक्ति का मार्ग ही दृष्टिगत न होगा?

बेनीबाबू बोले—अच्छा एक काम कर आओ। रामलखन से कहना, अगर आज किसी तरह यह काम पूरा होता न दीख पड़े तो कल ही पूरा कर डालना ठीक होगा। बेनीबाबू से मैंने कह दिया कि मज़दूरों से उतना ही काम लिया जाय, जितना वे कर सकें।

मैं उनकी ओर देखता रह गया। मेरे मन में आया—यह आदमी है कि देवता!

मुझे अवाक् देखकर उन्होंने पूछा—सोचते क्या हो?

मैंने कहा—कुछ नहीं। इतने दिन से आपका परिचय प्राप्त है, किन्तु कभी ऐसा अवसर नहीं आया कि आपको इतने निकट से देख पाता।

वे बोले—यह सब कोई चीज नहीं है छोटे भैया! न्याय और सत्य से हम कितने दूर रहते हैं, शायद हम खुद नहीं जानते।. . . . .अच्छा जाओ, जो काम तुम्हें दिया गया है, उसको पूरा तो कर आओ।

मैं फिर उसी छत पर जा पहुँचा, पर अबकी बार मैंने देखा गान चल रहा है, लेकिन एक ही गान तो दिन-भर चल नहीं सकता। तो भी मुझे उसी गाने के सुनने की इच्छा हो आई। साथ ही मैंने यह भी सोच लिया कि अभी कुछ समय पहले बेनीबाबू ने कहा था, मनुष्य की कामनाओं का अन्त नहीं है।

मैंने जो रामलखन को बुलाया तो वह सिटपिटा गया, बोला—छोटे सरकार, क्या हुक्म है।

मैंने कहा—बेनीबाबू क्या तुम लोगों के साथ कुछ ज्यादा सख्ती से काम लेते हैं?

वह चुप ही बना रहा, सत्य-कृष्ण कुछ भी नहीं कह सका। तब मैंने समझ लिया, डर के कारण वह उनके विरुद्ध कुछ कहना नहीं चाहता इसीलिए चुप है, लेकिन जब मैंने कहा—कि मैं उनसे कुछ कहूँगा नहीं, मैं तो सिर्फ असल बात जानना चाहता हूँ। बिलकुल निडर होकर बतलाओ।

तब उसने कहा—काम सख्ती से लेते हैं तो मजदूरी भी तो दो पैसा ज्यादा और वक्त पर देते हैं। ऐसे मालिक मिलें तो मैं जिन्दगी भर उनकी गुलामी करूँ।

मैंने कहा—तुम ठीक कहते हो। उन्होंने मुझसे कहला भेजा है कि अगर काम आज नहीं पूरा होता है तो कल ही पूरा कर डालना। ज्यादा तकलीफ उठाने की जरूरत नहीं है।

रामलखन बोला—पर छोटे भैया, उन्होंने पहले ही बहुत सोच-समझकर हुक्म दिया था। काम अगर आज पूरा न होता तो कूटने के लिए चूना कल हम लोगों को इस हालत में

न मिलता। वह सूख जाता तब उस पर कुटाई ठीक तरह से कैसे होती? इसके सिवाय कल गुड़ियों का त्योहार—छुट्टी का दिन है। मैंने पीछे जो सोचा तो मुझे इन सब बातों का ख्याल आ गया। काम पूरा हो जाएगा। बहुत कुछ तो हो भी गया है। थोड़ा-सा ही बाकी रह गया है। वह भी शाम होते-होते पूरा हो जाएगा। तकलीफ तो थोड़ी हुई—किसी-किसी के हाथों में छाले पड़ गये, लेकिन यह बात आप उनसे जाकर न कहें, सरकार! इतनी बात मेरी भी रख लें।

रामलखन की बात मानकर सचमुच मैंने बेनीबाबू से यह नहीं कहा कि कुछ स्त्रियों के हाथों में छाले पड़ गये हैं।

किन्तु उसी दिन सायंकाल—

एक ओर जीने की दीवार गिर गई। छुट्टी हो गई थी। मज़दूर लोग इधर-उधर से आ-आ कर जाने लगे थे कि अररर धम् का भीषण स्वर और एक क्षीण 'आह'!

लोग दौड़ पड़े। लोग गिने भी गये। सब मिलाकर उन्तीस आदमी आज काम पर आये थे, लेकिन हैं केवल सत्ताईस।

—तो दो आदमी दब गये क्या?

—हाँ, यह हल्का स्वर जो आ रहा है! यह! . . .यह!

ईंटें उठाई जाने लगीं तो एक स्त्री ने कहा हाय, पत्ती है—पत्ती! तभी मैं सोच रही थी—वह दिखाई नहीं पड़ती, शायद आगे निकल गई! हाय वह तो चल बसी।

उससे कौन कहता कि हाँ, वह आगे निकल गई।

लेकिन एक क्षीण स्वर तब भी ध्वनित होता रहा।

—अरे और उठाओ ईंटों को। हाँ, इस खँजड़ को। अभी एक आदमी और भी तो है।

एक साथ कई आदमियों ने मिलकर एक दीवार के टुकड़े को उठाया। वह ईंटों के ऊपर गिरा था और बीच में थोड़ी जगह शेष रह गई थी। उसी में मुड़ा हुआ अचेत मिला गिरिधर।

कुछ दिनों में गिरिधर अच्छा हो गया। उसकी रीढ़ टूट गई थी, लेकिन उसका जीवन उसकी रीढ़ से अधिक बलिष्ठ था।

उस बँगले को, फिर आगे बेनीबाबू नहीं बनवा सके। कुछ दिनों तक काम बन्द रहा और वे बीमार पड़ गये।

मनुष्य का यह जीवन क्या इतना अस्थिर है? क्या वह फूल के दल से भी अधिक मृदुल है? क्या वह छुई-मुई है? उन दिनों मैं यही सोचता रहा था। वे बीमार थे, और उनकी बीमारी बढ़ती जाती थी। मैं देख रहा था, शायद बेनीबाबू तैयारी कर रहे हैं। लेकिन एक दिन मैंने उन्हें दूसरे रूप में देखा। मैंने देखा कि मृत्यु को मसल डाला है, पीस डाला है! वह छटपटा रही है! वह भाग जाना चाहती है।

वे एक पलँग पर लेटे हुए थे, बहुत धीरे-धीरे बातें कर रहे थे। उनके पास एक नौजवान बैठा हुआ था। वह मौन था, और बेनीबाबू उससे पूछ रहे थे। उसी क्षण मैं पहुँच गया। वे उठने को हुए तो नौकर ने उन्हें उठा दिया और उनके पीछे तकिये लगा दिये। पहले आँखों पर चश्मा नहीं था; अब उन्होंने चश्मा चढ़ा लिया।

संकेत पाकर मैं उनके पास ही कुर्सी डालकर बैठ गया था।

वे बोले—सुनते हो मुल्लू, मैं तुमको रोने नहीं दूँगा। रोने दूँ तो मैं अपने को खो दूँगा, लेकिन मैं इतना सस्ता नहीं हूँ। मैं मरना नहीं चाहता। तुम किस तरह प्रसन्न हो सकते हो? मैं और साफ कर दूँ? मैं तुमको कुछ देना चाहता हूँ। बोलो, तुम कितने रुपये पाकर खुश हो सकते हो? लेकिन तुम यह सोचने की भूल न करना कि वे रुपये तुम्हारी स्त्री की कीमत हैं। एक स्त्री—एक नवयुवती, एक सुन्दरी को, क्या रुपयों से मोला जा सकता है? छि:, यह तो मूर्खता की बात है—जंगलीपन की। लेकिन मैंने तुमको बतलाया न, मैं तुमको खुश करना चाहता हूँ।

—ओह 'एक नवयुवती—एक सुन्दरी!'

—तो क्या पत्ती सुन्दर थी?

—तो उसका कण्ठ ही कोमल न था, वरन्. . . .

बेनीबाबू बोले—मैं जानता हूँ, तुम कुछ कहोगे नहीं। अच्छा तो मैं ही कहे देता हूँ—उसके बच्चे की परवरिश के लिए, दस रुपये हर महीने मुझसे बराबर ले जाया करना। समझे!. . . .यह लो दस रुपये आज पहली तारीख है। हर महीने की पहली तारीख को ले जाया करना—अच्छा !

जेब से नोट निकाल कर उन्होंने मुल्लू के आगे फेंक दिया। मुल्लू उस समय कितना खुश था, इसको मैंने जाना, किन्तु बेनीबाबू ने जितना कुछ जाना, उसको मैं न जान सका।

मुल्लू जब छलकते आनन्दाश्रुओं के साथ चल दिया तो बेनीबाबू बोले—मेरा ख्याल है, अब यह खुश रहेगा। क्यों तुम क्या सोचते हो?

मैं चकित था, प्रतिहत था, अभिभूत भी था, तो भी मैंने कह दिया—आपने यह क्या किया?

'ओह, तुम मुझसे पूछते हो, छोटे भैया!—मैंने यह क्या किया!' यह मैंने अपने को भुलाने के लिये किया है, क्योंकि मनुष्य अपने को भुलावे में रखने का अभ्यासी है। मैंने देखा—मैं एक भूल कर रहा हूँ—मैं मृत्यु को बुला रहा हूँ। तब मैंने सोचा—मैं ऐसी भूल करूँगा, जिसमें अपने आपको भी मैं भुला सकूँ! जीवन में एक ऐसा क्षण भी आता है, जब हमें अपने आपको भी भुलाना पड़ता है! यह मेरा ऐसा ही क्षण है, लेकिन यह मेरी भूल नहीं है, यह तो मेरा नवजीवन है—जागरण।

यह कथा यहीं समाप्त हो गई है, किन्तु इस कथा के प्राण में जो अंतर्कथा हैं, उसी की बात कहता हूँ। उपर्युक्त घटना के पीछे कुछ वत्सर और जुड़ गये हैं। यह बँगला अब मुझे रहने के लिये दिया गया है। मैं अब अकेला ही इसमें रहता हूँ। कई सहस्र पुस्तकों के ज्ञान से आवृत मैं—लोग कहते हैं—प्रोफेसर हूँ। जीवन और जगत् का तत्त्वदर्शी! लेकिन मैं अपनी समस्या किससे कहूँ—अपना अंतर किसको खोलकर दिखलाऊँ? बच्चे सुनें तो हँसे और बीबी सुने तो कहे—पागल हो गये हो?

कभी-कभी रात के घोर सन्नाटे में स्वप्नाविष्ट-सा मैं अस्पष्ट ध्वनियाँ सुनने लगता हूँ। कोई खिलखिल हँस रही है। कोई धक्का देकर कह रही है—गा री पत्ती! और चूड़ियाँ खनक उठती हैं, छत कुटने लगती है और एक कोमल, अत्यन्त कोमल गायन स्वर फूट पड़ता है—निंदिया लागी....।

और उसके हाथों में जो छाले पड़ गये हैं, वे वहाँ से उठकर मेरे हृदय से आकर चिपक गये हैं।

● ● ●

यशपाल

(जन्म 1903 ई०)

मार्क्सवादी विचारधारा के कथाकार यशपाल का जन्म फिरोजपुर छावनी में हुआ। यशपाल प्रगतिशील कथाकार थे, और सामाजिक राजनीतिक परिवर्तनों के लिए आपने अपना सारा लेखन अर्पित किया है। इसीलिए सामाजिक कुरीतियों, शोषण, अन्याय के विरुद्ध एक अन्तहीन संघर्ष आपकी कहानियों का मूल उद्देश्य हैं।

यशपाल की कथा साहित्य कृतियों में झूठा-सच, दिव्या, देशद्रोही आदि प्रसिद्ध उपन्यास हैं। कहानियों की दृष्टि से आपके 'पिंजरे की उड़ान, वो दुनिया, ज्ञानदान, अभिशप्त, भस्मावृत्त चिनगारी, फूलो का कुर्ता, धर्मयुद्ध, उत्तराधिकारी, तुमने क्यों कहा मैं सुन्दर हूँ, 'उत्तमी की माँ' आदि कहानी संग्रह प्रसिद्ध हैं।

परदा

प्रस्तुत कहानी में मध्यवर्ग के आर्थिक खोखलेपन, उसमें रहने की विवशता और साथ ही उसे ढँके रहने के द्वंद्व, उससे उत्पन्न मनोवृत्ति का कहानीकार ने हृदय स्पर्शी चित्रण किया है।

6. परदा

चौधरी पीरबख्श के दादा चुंगी के महकमे में दारोगा थे। आमदनी अच्छी थी। एक छोटा, पर पक्का मकान भी उन्होंने बनवा लिया। लड़कों को पूरी तालीम दी। दोनों लड़के एण्ट्रेन्स पास कर रेलवे और डाकखाने में बाबू हो गए। चौधरी साहब की जिन्दगी में लड़कों के ब्याह और बाल-बच्चे भी हुए, लेकिन ओहदे में खास तरक्की न हुई, वही तीस और चालीस रुपये माहवार का दर्जा।

अपने जमाने की याद कर चौधरी साहब कहते—"वो भी क्या वक्त थे! लोग मिडिल पास कर डिप्टी-कलक्टरी करते थे और आजकल की तालीम है कि एण्ट्रेन्स तक अंग्रेजी पढ़कर लड़के तीस-चालीस से आगे नहीं बढ़ पाते।" बेटों को ऊँचे ओहदों पर देखने का अरमान लिए ही उन्होंने आँखें मूँद लीं।

इंशाअल्ला, चौधरी साहब के कुनबे में बरकत हुई। चौधरी फ़जल कुरबान रेलवे में काम करते थे। अल्लाह ने उन्हें चार बेटे और तीन बेटियाँ दीं। चौधरी इलाहीबख्श डाकखाने में थे। उन्हें भी अल्लाह ने चार बेटे और दो लड़कियाँ बख्शीं।

चौधरी खानदान अपने मकान को हवेली पुकारता था। नाम बड़ा देने पर भी जगह तंग ही रही। दारोगा साहब के ज़माने में ज़नाना भीतर था और बाहर बैठक में वे मोढ़े पर बैठ नैचा गुड़गुड़ाया करते। जगह की तंगी की वजह से उनके बाद बैठक भी ज़नाने में शामिल हो गई और घर की ड्योढ़ी पर पर्दा लटक गया। बैठक न रहने पर भी घर की इज्जत का खयाल था, इसलिए पर्दा बोरी के टाट का नहीं, बढ़िया किस्म का रहता।

ज़ाहिरा दोनों भाइयों के बाल-बच्चे एक मकान में रहने पर भीतर सब अलग-अलग था। ड्योढ़ी का पर्दा कौन भाई लाए? इस समस्या का हल इस तरह हुआ कि दारोगा साहब के जमाने की पलंग की रंगीन दरियाँ एक के बाद एक ड्योढ़ी में लटकाई जाने लगीं।

तीसरी पीढ़ी के ब्याह-शादी होने लगे। आख़िर चौधरी खानदान की औलाद को हवेली छोड़ दूसरी जगहें तलाश करनी पड़ीं। चौधरी इलाहीबख्श के बड़े साहबजादे एण्ट्रेंस पास डाकखाने में बीस रुपये की क्लर्की पा गए। दूसरे साहबजादे मिडिल पास कर भस्पताल में कम्पाउण्डर बन गए। ज्यों-ज्यों जमाना गुज़रता जाता, तालीम और नौकरी

दोनों मुश्किल होती जातीं। तीसरे बेटे होनहार थे। उन्होंने वज़ीफा पाया। जैसे-तैसे मिडल कर स्कूल में मुदर्रिस हो देहात चले गए।

चौथे लड़के पीरबख्श प्राइमरी से आगे न बढ़ सके। आजकल की तालीम माँ-बाप पर खर्च के बोझ के सिवा और है क्या? स्कूल की फीस हर महीने, और किताबों, कापियों और नक्शे के लिए रुपये ही रुपये?

चौधरी पीरबख्श का भी ब्याह हो गया। मौला के करम से बीवी की गोद भी जल्दी ही भरी। पीरबख्श ने रोजगार के तौर पर खानदान की इज्जत के खयाल से एक तेल की मिल में मुंशीगिरी कर ली। तालीम ज्यादा नहीं तो क्या, सफेदपोश खानदान की इज्जत का पास तो था। मजदूरी और दस्तकारी उनके करने की चीजें न थीं। चौकी पर बैठते कलम दवात का काम था।

बारह रुपया महीना अधिक नहीं होता। चौधरी पीरबख्श को मकान सितवा की कच्ची बस्ती में लेना पड़ा। मकान का किराया दो रुपया था। आसपास के गरीब और कमीन लोगों की बस्ती थी। कच्ची गली के बीचों-बीच, गली के मुहाने पर लगे कमेटी के नल से टपकते पानी की काली धार बहती रहती, जिसके किनारे घास उग आई थी। नाली पर मच्छरों और मक्खियों के बादल उमड़ते रहते। सामने रमजानी धोबी की भट्ठी थी, जिसमें से धुआँ और सज्जी-मिले उबलते कपड़ों की गंध उड़ती रहती। दायीं ओर बीकानेरी मोचियों के घर थे। बायीं ओर वर्कशाप में काम करने वाले कुली रहते थे।

इस सारी बस्ती में चौधरी पीरबख्श ही पढ़े-लिखे सफेदपोश थे। सिर्फ उनके ही घर की ड्योढ़ी पर पर्दा था। सब लोग उन्हें चौधरीजी, मुंशीजी कहकर सलाम करते । उनके घर की औरतों को कभी किसी ने गली में नहीं देखा। लड़कियाँ चार-पाँच बरस तक किसी काम-काज से निकलतीं और फिर घर की आबरू के ख्याल से उनका बाहर निकलना मुनासिब न था। पीरबख्श खुद ही मुस्कराते हुए सुबह-शाम कमेटी के नल से घड़े भर लाते।

चौधरी की तनख्वाह पन्द्रह बरस में बारह से अठारह हो गई। खुदा की बरक्कत होती है, तो रुपये-पैसे की शक्ल में नहीं, आल-औलाद की शक्ल में होती है। पन्द्रह बरस में पाँच बच्चे हुए। पहले तीन लड़कियाँ और बाद में लड़के।

दूसरी लड़की होने की थी तो पीरबख्श की वाल्दा मदद के लिए आई। वालिद साहिब का इन्तकाल हो चुका था। दूसरा कोई भाई वाल्दा का फिक्र करने आया नहीं, वे छोटे लड़के के यहाँ ही रहने लगीं।

जहाँ बाल-बच्चे और घर-बार होता है, सौ किस्म की झंझटें होती ही हैं। कभी बच्चे को तकलीफ है, तो कभी जच्चा को। ऐसे वक्त में कर्ज की जरूरत कैसे न हो? घर-बार हो, तो कर्ज भी होगा ही।

मिल की नौकरी का कायदा पक्का होता है। हर महीने की सात तारीख को गिनकर तनख्वाह मिल जाती है। पेशगी से मालिक को चिढ़ है। कभी बहुत जरूरत पर मेहरबानी करते। जरूरत पड़ने पर चौधरी घर की छोटी-मोटी कोई चीज गिरवी रखकर उधार ले आते। गिरवी रखने से रुपये के बारह आने ही मिलते। ब्याज मिलाकर सोलह आने हो जाते और फिर चीज घर लौट आने की सम्भावना न रहती।

मुहल्ले में चौधरी पीरबख्श की इज्जत थी। इज्जत का आधार था, घर के दरवाजे पर लटका पर्दा। भीतर जो हो पर्दा सलामत रहता। कभी बच्चों की खींच-खाँच या बेदर्द हवा के झोंकों से उसमें छेद हो जाते, तो पर्दे की आड़ से हाथ-सुई-धागा ले उसकी मरम्मत कर देते।

दिनों का खेल! मकान की ड्योढ़ी के किवाड़ गलते-गलते बिलकुल गल गए। कई दफा कहा कसे जाने से पेच टूट गए और सूराख ढीले पड़ गए। मकान-मालिक सूरज पाँडे को उसकी फिक्र न थी। चौधरी कभी जाकर कहते-सुनते तो उत्तर मिलता—"कौन बड़ी रकम थमा देते हो? दो रुपल्ली किराया और वह भी छः-छः महीने का बकाया। जानते हो लकड़ी का क्या भाव है? न हो मकान छोड़ जाओ।" आखिर किवाड़ गिर गए। रात में चौधरी उन्हें जैसे-तैसे चौखट से टिका देते। रात-भर दहशत रहती कि कहीं कोई चोर न आ जाये।

मुहल्ले में सफेदपोशी और इज्जत होने पर भी चोर के लिए घर में कुछ न था। शायद एक भी साबित कपड़ा या बरतन ले जाने के लिए चोर को न मिलता, पर चोर तो चोर है। छिनने के लिए कुछ न हो, तो भी चोर का डर तो होता ही है वह चोर जो ठहरा!

चोर से ज्यादा फिक्र थी आबरू की। किवाड़ न रहने पर पर्दा ही आबरू का रखवाला था। वह पर्दा भी तार-तार होते-होते एक रात आँधी में किसी भी हालत में लटकने लायक

न रह गया। दूसरे दिन घर की एकमात्र पुश्तैनी चीज दरी दरवाजे पर लटक गई। मुहल्ले वालों ने देखा और चौधरी को सलाह दी—"अरे चौधरी, इस जमाने में दरी यों काहे खराब करोगे? बाजार से ला टाट का टुकड़ा लटका दो!" पीरबख्श टाट की कीमत भी आते-जाते कई दफा पूछ चुके हैं। दो गज टाट आठ आने से कम में न मिल सकता था। हँसकर बोले—"होने दो, क्या है? हमारे यहाँ पक्की हवेली में भी ड्योढ़ी पर दरी का ही पर्दा रहता था।"

कपड़े की महँगी के इस जमाने में घर की पाँचों औरतों के शरीर से कपड़े जीर्ण होकर यों गिर रहे थे, जैसे पेड़ अपनी छाल बदलते हैं, पर चौधरी साहब की आमदनी से दिन में एक दफा किसी तरह पेट भर सकने के लिए आटे के अलावा कपड़े की गुंजाइश कहाँ? खुद उन्हें नौकरी पर जाना होता। पायजामे में जब पैबन्ध सँभालने की ताब न रही, मारकीन का एक कुर्ता पायजामा जरूरी हो गया, पर लाचार थे।

गिरवी रखने के लिए घर में कुछ भी न हो, गरीब का एकमात्र सहायक है पंजाबी खान। रहने की जगह-भर देखकर वह रुपया उधार दे सकता है। दस महीने पहले गोद के लड़के बरकत के जन्म के समय पीरबख्श को रुपये की जरूरत आ पड़ी। कहीं और कोई प्रबन्ध न हो सकने के कारण उन्होंने पंजाबी खान बबर अलीखाँ से चार रुपये उधार ले लिए थे।

बबर अलीखाँ का रोजगार सितवा के उस कच्चे मुहल्ले में अच्छा खासा चलता था। बीकानेरी मोची, वर्कशाप के मजदूर और कभी-कभी रमजानी धोबी सभी बबर मियाँ से कर्ज लेते रहते। कई दफा चौधरी पीरबख्श ने बबर अली को कर्ज और सूद की किश्त न मिलने पर अपने हाथ के डंडे से ऋणी का दरवाजा पीटते देखा था। उन्हें साहूकार और ऋणी में बीच-बचौवल भी करना पड़ा था। खान को वे शैतान समझते थे, लेकिन लाचार हो जाने पर उसी की शरण लेनी पड़ी। चार आना रुपया महीने पर चार रुपया कर्ज लिया। शरीफ खानदानी, मुसलमान भाई का खयाल कर बबर अली ने एक रुपया माहवार की किश्त मान ली। आठ महीने में कर्ज अदा होना तय हुआ।

खान की किश्त न दे सकने की हालत में अपने घर के दरवाजे पर फजीहत हो जाने की बात खयाल कर चौधरी के रोएँ खड़े हो जाते। सात महीने फाँका करके भी वे किसी

तरह से किश्त देते चले गए, लेकिन जब सावन में बरसात पिछड़ गई और बाजरा भी रुपये का तीन सेर मिलने लगा, किश्त देना सम्भव न रहा। खान सात तारीख की शाम को ही आया। चौधरी पीरबख्श ने खान की दाढ़ी छू और अल्ला की कसम खा एक महीने की मुआफी चाही। अगले महीने एक का सवा देने का वायदा किया। खान टल गया।

भादों में हालत और परेशानी की हो गई। बच्चों की माँ की तबीयत रोज-रोज गिरती जा रही थी। खाया-पिया उसके पेट में न ठहरता। पथ्य के लिए उसको गेहूँ की रोटी देना जरूरी हो गया। गेहूँ मुश्किल से रुपये का सिर्फ ढाई सेर मिलता। बीमार का जी ठहरा, कभी प्याज के टुकड़े या धनिए की खुशबू के लिए ही मचल जाता। कभी पैसे की सौंफ, अजवाइन, काले नमक की ही जरूरत हो, तो पैसे की कोई चीज मिलती ही नहीं। बाजार में ताँबे का नाम ही नहीं रह गया। नाहक इकन्नी निकल जाती है। चौधरी को दो रुपये महँगाई-भत्ते के मिले, पर पेशगी लेते-लेते तनख्वाह के दिन केवल चार ही रुपये हिसाब में निकले।

बच्चे पिछले हफ्ते लगभग फाके-से थे। चौंधरी कभी गली से दो पैसे की चौराई खरीद लाते, कभी बाजरा उबाल सब लोग कटोरा-कटोरा भर पी लेते। बड़ी कठिनता से मिले चार रुपयों में से सवा रुपया खान के हाथ में धर देने की हिम्मत चौधरी को न हुई।

मिल से घर लौटते समय वे मंडी की ओर टहल गए। दो घंटे बाद जब समझा, खान टल गया होगा तो अनाज की गठरी ले वे घर पहुँचे। खान के भय से दिल डूब रहा था, लेकिन दूसरी ओर चार भूखे बच्चों, उनकी माँ, दूध न उतर सकने के कारण सूखकर काँटा हो रहे गोद के बच्चे और चलने-फिरने से लाचार अपनी जईफ माँ की भूख से बिलबिलाती सूरतें आँखें के सामने नाच जातीं। धड़कते हुए हृदय से वे कहते जाते—"मौला सब देखता है, खैर करेगा।"

सात तारीख की शाम को असफल हो खान आठ की सुबह खूब तड़के चौधरी के मिल चले जाने से पहले ही अपना डंडा हाथ में लिए दरवाजे पर मौजूद हुआ।

रात-भर सोच-सोचकर चौधरी ने खान के लिए बयान तैयार किया। मिल के मालिक लालाजी चार रोज़ के लिए बाहर गए हैं। उनके दस्तखत के बिना किसी को भी तनख्वाह नहीं मिल सकी। तनख्वाह मिलते ही वह सवा रुपया हाज़िर करेगा। माकूल वजह बताने

पर भी खान बहुत देर तक गुर्राता रहा—"अम वतन चोड़ के परदेश में पड़ा है, ऐसे रुपया चोड़ देने के वास्ते अम यहाँ नहीं आया है, अमारा भी बाल बच्चा है। चार रोज़ में रुपिया नईं देगा, तो अम तुमारा. . . . .कर देगा।"

पाँचवें दिन रुपया कहाँ से आ जाता! तनख्वाह मिले अभी हफ्ता भी नहीं हुआ। मालिक ने पेशगी देने से साफ इन्कार कर दिया। छठे दिन किस्मत से इतवार था। मिल में छुट्टी करने पर भी चौधरी खान के डर से सुबह ही बाहर निकल गए। जान-पहचान के कई आदमियों के यहाँ गए। इधर-उधर की बातचीत कर वे कहते—"भाई, हो तो बीस आने पैसे तो दो-एक रोज़ के लिए देना। ऐसे ही जरूरत आ पड़ी है।"

उत्तर मिला—"मियाँ, पैसे कहाँ इस ज़माने में! पैसे का मोल कौड़ी नहीं रह गया। हाथ में आने से पहले ही उधार में उठ गया तमाम!"

दोपहर हो गई। खान आया भी होगा, तो इस वक्त तक बैठा नहीं रहेगा—चौधरी ने सोचा और घर की तरफ चल दिए। घर पहुँचने पर सुना खान आया था और घण्टे भर तक ड्योढ़ी पर लटके दरी के पर्दे को डंडे से ठेल-ठेलकर गाली देता रहा। पर्दे की आड़ से बड़ी बीबी के बार-बार खुदा की कसम खा यकीन दिलाने पर कि चौधरी बाहर गये हैं, रुपया लेने गए हैं, खान गाली देकर कहा—'नई, बदजात चोर बीतर में चिपा है! अम चार घंटे में फिर आता है। रुपया लेकर जाएगा। रुपया नई देगा, तो उसका खाल उतारकर बाजार में बेच देगा।. . . . . अमारा रुपिया क्या अराम का है?'

चार घंटे से पहले ही खान की पुकार सुनाई दी—"चौधरी!" पीरबख्श के शरीर में बिजली-सी दौड़ गई और वे बिलकुल निस्सत्व हो गए, हाथ-पैर सुन्न और खुश्क।

गाली दे पर्दे को ठेलकर खान के दुबारा पुकारने पर चौधरी का शरीर निर्जीव प्राय होने पर भी निश्चेष्ट न रह सका। उठकर बाहर आ गए। खान आगबबूला हो रहा था—"पैसा नई देने का वास्ते चिपता है।. . . . " एक-से-एक बढ़ती हुई तीन गालियाँ एक-साथ खान के मुँह से पीरबख्श के पुरखों-पीरों के नाम निकल गईं। इस भयंकर आघात से पीरबख्श का खानदानी रक्त भड़क उठने के बजाय और भी निर्जीव हो गया। खान के घुटने छू, अपनी मुसीबत को बता वे मुआफ़ी के लिए खुशामद करने लगे।

खान की तेजी बढ़ गई। उसके ऊँचे स्वर से पड़ोस के मोची और मजदूर चौधरी के दरवाजे के सामने इकट्ठे हो गए। खान क्रोध में डंडा फटकारकर कह रहा था—"पैसा

नहीं देना था, लिया क्यों? तनख्वाह किदर में जाता? अरामी अमारा पैसा मारेगा। आज तुमारा खाल खींच लेगा। पैसा नईं है, तो घर पर पर्दा लटका के शरीफ़जादा कैसे बनता?. . . तुम अमको बीबी का गैना दो, बर्तन दो, कुछ भी तो दो, अम ऐसे नईं जाएगा।''

बिल्कुल बेबस और लाचारी में दोनों हाथ उठा खुदा से खान के लिए दुआ माँग पीरबख्श ने कसम खाई, एक पैसा भी घर में नहीं, बर्तन भी नहीं, कपड़ा भी नहीं, खान चाहे तो बेशक उसकी खाल उतारकर बेच ले।

खान और आग हो गया, ''अम तुमारा दुआ क्या करेगा? तुमारा खाल क्या करेगा? उसका तो जूता भी नईं बनेगा। तुमारा खाल से तो यह टाट अच्छा।'' खान ने ड्योढ़ी पर लटका दरी का पर्दा झटक लिया। ड्योढ़ी से पर्दा हटने के साथ ही, जैसे चौधरी के जीवन की डोर टूट गई। वह डगमगाकर जमीन पर गिर पड़े।

इस दृश्य को देख सकने की ताब चौधरी में न थी, परन्तु द्वार पर खड़ी भीड़ ने देखा— घर की लड़कियाँ और औरतें पर्दे के दूसरी ओर घटती घटना के आतंक से आँगन के बीचों-बीच इकट्ठी हो खड़ी काँप रही थीं। सहसा पर्दा हट जाने से औरतें ऐसे सिकुड़ गईं, जैसे उनके शरीर का वस्त्र खींच लिया गया हो। वह पर्दा ही तो घर-भर की औरतों के शरीर का वस्त्र था। उनके शरीर पर बचे चीथड़े उनके एक-तिहाई अंग ढँकने में भी असमर्थ थे।

ज़ाहिल भीड़ ने घृणा और शरम से आँखें फेर लीं। उस नग्नता की झलक से खान की कठोरता भी पिघल गई। ग्लानि से थूक, पर्दे को आँगन में वापस फेंक क्रुद्ध निराशा में उसने ''लाहौल विला. . . . !'' कहा और असफल लौट गया।

भय से चीखकर ओट में हो जाने के लिए भागती हुई औरतों पर दया कर भीड़ छँट गई। चौधरी बेसुध पड़े थे। जब उन्हें होश आया, ड्योढ़ी का पर्दा आँगन के सामने पड़ा था, परन्तु उसे उठाकर फिर से लटका देने की सामर्थ्य उनमें शेष न थी। शायद अब इसकी आवश्यकता भी न रही थी। पर्दा जिस भावना का अवलम्ब था, वह मर चुकी थी।

○ ○ ○

जैनेन्द्रकुमार

(जन्म 1905 ई०)

हिन्दी साहित्य के मनोवैज्ञानिक कथा साहित्यकार जैनेन्द्रकुमार का जन्म कौडियागंज अलीगढ़ में हुआ। आपका कहानी साहित्य एकदम नया और मौलिक है। आपने अपनी कहानियों के पात्रों को संघर्षशील बनाकर कहानी का अन्त दु:खान्त या सुखान्त की अपेक्षा प्रश्नवाचक रखा है। यह आपकी सर्वाधिक जीवन्त शक्ति का परिचायक माना जा सकता है।

जैनेन्द्रकुमार के कथा साहित्य में कल्याणी, परख, सुनीता, जयवर्धन, त्यागपत्र, मुक्तिबोध आदि प्रसिद्ध उपन्यास हैं। कहानी की दृष्टि से नीलम देश की राजकन्या, वातायन, स्पर्द्धा, ध्रुवयात्रा आदि कहानी-संग्रह हैं। इसके अतिरिक्त आपके कुछ निबंध संग्रह भी प्रसिद्ध हैं।

अपना-अपना भाग्य

प्रस्तुत कहानी में लेखक ने नागरी जीवन में मनुष्य की संवेदना कितनी क्षीण हो जाती है, इसकी ओर संकेत किया है। कुछ लोग अनाथ बच्चों के प्रति दया तो दिखाते हैं। परंतु इसके अतिरिक्त कुछ नहीं कर पाते। परिणामत: उनकी दया भावना केवल एक मजाक बनकर रह जाती है। इस बात का एहसास प्रस्तुत कहानी में मिलता है।

7. अपना-अपना भाग्य

[1]

बहुत कुछ निरुद्देश्य घूम चुकने पर हम सड़क के किनारे की बेंच पर बैठ गये।

नैनीताल की संध्या धीरे-धीरे उतर रही थी। रुई के रेशे-से, भाप से बादल हमारे सिरों को छू-छूकर बेरोक घूम रहे थे। हलके प्रकाश और अँधियारी से रंगकर कभी वे नीले दीखते, कभी सफेद और फिर जरा देर में अरुण पड़ जाते। वे जैसे हमारे साथ खेलना चाह रहे थे।

पीछे हमारे पोलो वाला मैदान फैला था। सामने अंग्रेजों का एक प्रमोद-गृह था, जहाँ सुहावना-रसीला बाजा बज रहा था और पार्श्व में था वही सुरम्य अनुपम नैनीताल।

ताल में किश्तियाँ अपने सफेद पाल उड़ाती हुई एक-दो अंग्रेज यात्रियों को लेकर, इधर-से-उधर खेल रही थीं। और कहीं कुछ अंग्रेज एक-एक देवी सामने प्रतिस्थापित कर, अपनी सूई-सी शक्ल की डोंगियों को मानो शर्त बाँधकर सरपट दौड़ा रहे थे। कहीं किनारे पर कुछ साहब अपनी बंसी पानी में डाले सधैर्य, एकाग्र, एकस्थ, एकनिष्ठ मछली-चिन्तन कर रहे थे।

पीछे, पोलो-लॉन में बच्चे किलकारियाँ मारते हुए हॉकी खेल रहे थे। शोर, मार-पीट, गाली-गलौज भी जैसे खेल का ही अंश था। इस तमाम खेल को उतने क्षणों का उद्देश्य बना वे बालक अपना सारा मन, सारी देह, समग्र बल और समूची विद्या लगाकर मानो खत्म कर देना चाहते थे। उन्हें आगे की चिन्ता न थी, बीते का ख्याल न था। वे शुद्ध तत्काल के प्राणी थे। वे शब्द की सम्पूर्ण सच्चाई के साथ जीवित थे।

सड़क पर से नर-नारियों का अविरल प्रवाह आ रहा था और जा रहा था। उसका न ओर था न छोर। यह प्रवाह कहां जा रहा था और कहाँ से आ रहा था, कौन बता सकता है? सब उम्र के सब तरह के लोग उसमें थे। मानो मनुष्यता के नमूनों का बाजार, सजकर, सामने से इठलाता निकला चला जा रहा हो!

अधिकार-गर्व में तने अंग्रेज उसमें थे, और चिथड़ों से सजे, घोड़ों की बाग थामे वे पहाड़ी उसमें थे, जिन्होंने अपनी प्रतिष्ठा और सम्मान को कुचलकर शून्य बना लिया है, और जो बड़ी तत्परता से दुम हिलाना सीख गये हैं।

भागते, खेलते, हँसते, शरारत करते, लाल-लाल अंग्रेज बच्चे थे और पीली-पीली आँखें फाड़े पिता की उँगली पकड़कर चलते हुए अपने हिन्दुस्तानी नौनिहाल भी थे।

अंग्रेज पिता थे जो अपने बच्चों के साथ भाग रहे थे, हँस रहे थे और खेल रहे थे। उधर भारतीय पितृदेव भी थे, जो बुजुर्गी को अपने चारों तरफ लपेटे धन-सम्पन्नता के लक्षणों का प्रदर्शन करते हुए चल रहे थे।

अंग्रेज रमणियाँ थीं, जो धीरे नहीं चलती थीं, तेज चलती थीं। उन्हें न चलने में थकावट आती थी, न हँसने में लाज आती थी। कसरत के नाम पर भी बैठ सकती थीं, और घोड़े के साथ-ही-साथ जरा जी होते ही, किसी हिन्दुस्तानी पर भी कोड़े फटकार सकती थीं। वह दो-दो, तीन-तीन, चार-चार की टोलियों में निश्शंक, निरापद, इस प्रवाह में मानो अपने स्थान को जानती हुई, सड़क पर से चली जा रही थीं। उधर हमारी भारत की कुललक्ष्मियाँ, सड़क के बिलकुल किनारे-किनारे, दामन बचाती और सम्भालती हुई, साड़ी कीं कई तहों में सिमट-सिमट कर, लोक-लाज, स्त्रीत्व और भारतीय गरिमा के आदर्श को अपने परिवेष्टनों में छिपाकर, सहमी-सहमी धरती में आँखें गाड़े, कदम-कदम बढ़ रही थीं।

इसके साथ ही भारतीयता का एक और नमूना था। अपने कालेपन को खुरच-खुरच कर बहा देने की इच्छा करने वाले अंग्रेजीदां पुरुषोत्तम भी थे, जो नेटिव को देखकर मुँह फेर लेते थे और अंग्रेज को देखकर आँखें बिठा देते थे और दुम हिलाने लगते थे। वैसे वह अकड़कर चलते थे—मानो भारत-भूमि को इसी अकड़ के साथ कुचल-कुचलकर चलने का उन्हें अधिकार मिला है।

[2]

घण्टे-के-घण्टे सरक गये, अन्धकार गाढ़ा हो गया। बादल सफेद होकर जम गए। मनुष्यों का वह ताँता एक-एक कर क्षीण हो गया। अब इक्का-दुक्का आदमी सड़क पर छतरी लगाकर निकल रहा था। हम वहीं-के-वहीं बैठे थे। सर्दी-सी मालूम हुई। हमारे ओवरकोट भीग गये थे।

पीछे फिरकर देखा। वह लॉन बर्फ की चादर की तरह बिलकुल स्तब्ध और सुन्न पड़ा था।

सब सन्नाटा था। तल्ली ताल की बिजली की रोशनियाँ दीपमालिका सी जगमगा रही थीं। वह जगमगाहट दो मील तक फैले हुए प्रकृति के जल-दर्पण पर प्रतिबिम्बित हो रही थीं। और दर्पण का काँपता हुआ, लहरें लेता हुआ वह तल उन प्रतिबिम्बों को सौ-गुना हजार-गुना करके उनके प्रकाश को मानो एकत्र और पुंजीभूत करके व्यस्त कर रहा था। पहाड़ों के सिर पर रोशनियाँ तारों-सी जान पड़ती थीं।

हमारे देखते-देखते एक घने पर्दे ने आकर इन सबको ढँक दिया। रोशनियाँ मानो मर गईं। जगमगाहट लुप्त हो गई। वह काले-काले भूत से पहाड़ भी इस सफेद पर्दे के पीछे छिप गये। पास की वस्तु भी न दीखने लगी। मानो वह घनीभूत प्रलय थी। सब कुछ इसी घनी, गहरी सफेदी में दब गया। जैसे एक शुभ्र महासागर ने फैलकर स्तुति के सारे अस्तित्व को डुबा दिया। ऊपर, नीचे, चारों तरफ, वह निर्भेद सफेद शून्यता ही फैली हुई थी।

ऐसा घना कुहरा हमने कभी न देखा था। वह टप-टप टपक रहा था।

मार्ग अब निर्जन चुप था। वह प्रवाह न जाने किन घोंसलों में जा छिपा था।

उस बृहदाकार शुभ्र शून्य में कहीं से ग्यारह टन्-टन् हो उठा। जैसे कहीं दूर कब्र में से आवाज आ रही हो।

हम अपने-अपने होटलों के लिए चल दिए।

[3]

रास्ते में दो मित्रों का होटल मिला। दोनों वकील मित्र छुट्टी लेकर चले गये। हम दोनों आगे बढ़े। हमारा होटल आगे था।

ताल के किनारे-किनारे हम चले जा रहे थे। हमारे ओवरकोट तर हो गये थे। बारिश नहीं मालूम होती थी, पर वह तो ऊपर नीचे हवा के कण-कण में बारिश थी। सर्दी इतनी थी कि सोचा, कोट पर एक कम्बल और होता तो अच्छा होता।

रास्ते में ताल के बिलकुल किनारे एक बेंच पड़ी थी। मैं जी में बेचैन हो रहा था। झटपट होटल पहुँचकर, इन भीगे कपड़ों से छुट्टी पा, गरम बिस्तर में छिपकर सो रहना

चाहता था। पर साथ के मित्र की सनक कब उठेगी और कब थमेगी इसका क्या ठिकाना है! और वह कैसी क्या होगी—इसका भी कुछ अन्दाज है! उन्होंने कहा, "आओ, जरा यहाँ बैठें।"

हम उस चूते कुहरे में रात के ठीक एक बजे, तालाब के किनारे की उस भीगी, बर्फीली ठण्डी हो रही लोहे की बेंच पर बैठ गये।

5-10-15 मिनट हो गये। मित्र के उठने का इरादा न मालूम हुआ। मैंने खिजलाकर कहा—

"चलिए भी. . . . "

हाथ पकड़कर ज़रा बैठने के लिए जब इस जोर से बैठा लिया गया तो और चारा न रहा—लाचार बैठ रहना पड़ा। सनक से छुटकारा आसान न था, और यह जरा बैठना भी जरा न था।

चुप-चाप बैठे तंग हो रहा था कि मित्र अचानक बोले—

"देखो, वह क्या है?"

मैंने देखा— कुहरे की सफेदी में कुछ ही हाथ दूर से एक काली-सी मूरत हमारी तरफ आ रही थी। मैंने कहा, "होगा कोई।"

तीन गज की दूरी से दीख पड़ा, एक लड़का सिर के बड़े-बड़े बालों को खुजलाता हुआ चला आ रहा है। नंगे पैर हैं, नंगे सिर। एक मैली-सी कमीज़ लटकाये है।

पैर उसके न जाने कहाँ पड़ रहे थे, और वह न जाने कहाँ जा रहा है—कहाँ जाना चाहता है! उसके कदमों में जैसे न कोई अगला है, न पिछला है, न दायाँ है, न बायाँ है।

पास की चुंगी की लालटेन के छोटे-से प्रकाश-वृत्त में देखा—कोई दस बरस का होगा। गोरे रंग का है, पर मैल से काला पड़ गया है। आँखें अच्छी बड़ी पर सूनी हैं। माथा जैसे अभी से झुर्रियाँ खा गया है।

वह हमें न देख पाया। वह जैसे कुछ भी नहीं देख रहा था। नीचे की धरती, न ऊपर चारों तरफ फैला हुआ कुहरा, न सामने का तालाब और न बाकी दुनिया। वह बस अपने विकट वर्तमान को देख रहा था।

मित्र ने आवाज दी—"ए!"

उसने जैसे जागकर देखा और पास आ गया।

"तू कहाँ जा रहा है रे?"

उसने अपनी सूनी आँखें फाड़ दीं।

"दुनिया सो गई, तू ही क्यों घूम रहा है?"

बालक मौन-मूक फिर भी बोलता हुआ चेहरा लेकर खड़ा रहा।

कहाँ सोयेगा?"

"यही कहीं।"

"कल कहाँ सोया था?"

"दुकान पर।"

"आज वहाँ क्यों नहीं?"

"नौकरी से हटा दिया।"

"क्या नौकरी थी?"

"सब काम। एक रुपया और जूठा खाना।"

"फिर नौकरी करेगा?"

"हाँ।"

"बाहर चलेगा?"

"हाँ।"

"आज क्या खाना खाया?"

"कुछ नहीं।"

"अब खाना मिलेगा?"

"नहीं मिलेगा।"

"यों ही सो जाएगा?"

"हाँ . . . "

"कहाँ?"

"यहीं कहीं।"

"इन्हीं कपड़ों से?"

बालक फिर आँखों से बोलकर मूक खड़ा रहा। आँखें मानो बोलती थीं—

"यह भी कैसा मूर्ख प्रश्न!"

"माँ-बाप हैं?"

"हैं!"

"कहाँ?"

"पन्द्रह कोस दूर गाँव में।"

"तू भाग आया?"

"हाँ।"

"क्यों?"

"मेरे कई छोटे भाई-बहन हैं—सो भाग आया। वहाँ काम नहीं, रोटी नहीं। बाप भूखा रहता था और मारता था। माँ भूखी रोती रहती थी और रोती थी। सो भाग आया। एक साथी और था। उसी गाँव का था—मुझसे बड़ा। दोनों साथ यहाँ आये। वह अब नहीं है।"

"कहाँ गया?"

"मर गया।"

इस जरा-सी उम्र में ही इसकी मौत से पहचान हो गई। मुझे अचरज हुआ, दर्द हुआ, पूछा, "मर गया?"

"हाँ, साहब ने मारा, मर गया।"

"अच्छा, हमारे साथ चल।"

वह साथ चल दिया। लौटकर हम वकील दोस्तों के होटल में पहुँचे।

"वकील साहब!"

वकील लोग होटल के ऊपर के कमरे से उतरकर आये। कश्मीरी दोशाला लपेटे थे, मोजे चढ़े पैरों में चप्पल थी। स्वर में हल्की-सी झुँझलाहट थी, कुछ लापरवाही थी।

"ओ-हो, फिर आप! कहिए?"

"आपको नौकर की जरूरत थी न? —देखिए, यह लड़का है।"

"कहाँ से लाये? —इसे आप जानते हैं?"

"जानता हूँ—यह बेईमान नहीं हो सकता।"

"अजी, ये पहाड़ी बड़े शैतान होते हैं। बच्चे-बच्चे में गुन छिपे रहते हैं। आप भी क्या अजीब हैं—उठा लाये कहाँ से—लो जी यह नौकर लो।"

"मानिए तो, यह लड़का अच्छा निकलेगा।"

"आप भी. . . . जी, बस खूब हैं। ऐरे-गैरे को नौकर बना लिया जाय और अगले दिन वह न जाने क्या-क्या लेकर चम्पत हो जाय।"

"आप मानते ही नहीं, मैं क्या करूँ?"

"मानें क्या खाक? आप भी— जी अच्छा मजाक करते हैं। अच्छा अब हम सोने जाते हैं।"

और वह चार रुपये रोज के किराये वाले कमरे में सजी मसहरी पर सोने झटपट चले गये।

[4]

वकील साहब के चले जाने पर होटल के बाहर आकर मित्र ने अपनी जेब में हाथ डालकर कुछ टटोला। पर झट कुछ निराश भाव से हाथ बाहर कर वे मेरी ओर देखने लगे।

"क्या है?" मैंने पूछा।

"इसे खाने के लिए कुछ देना चाहता था।" अंग्रेजी में मित्र ने कहा, "मगर दस-दस के नोट हैं।"

"नोट ही शायद मेरे पास भी हैं,—देखूँ?"

सचमुच मेरी जेब में भी नोट ही थे। हम फिर अंग्रेजी बोलने लगे। लड़के के दाँत बीच-बीच में कटकटा उठते थे। कड़ाके की सर्दी थी।

मित्र ने पूछा, "तब?"

मैंने कहा, "दस का नोट ही दे दो।" सकपकाकर मित्र मेरा मुँह देखने लगे, "अरे यार, बिगड़ जाएगा। हृदय में जितनी दया है, पास उतने पैसे तो नहीं।"

"तो जाने दो, यह दया ही इस जमाने में बहुत है।" —मैंने कहा। मित्र चुप रहे। जैसे कुछ सोचते रहे। फिर लड़के से बोले—

"अब आज तो कुछ नहीं हो सकता। कल मिलना। वह 'होटल डि-पव' जानता है? वहीं कल 10 बजे मिलेगा।"

"हाँ. . . . कुछ काम देंगे, हजूर?"

"हाँ-हाँ, ढूंढ़ दूँगा।"

"तो जाऊँ?" —लड़के ने निराश आशा से पूछा।

"हाँ —ठंडी साँस खींचकर फिर मित्र ने पूछा, "कहाँ सोयेगा?"

"यहीं-कहीं, बेंच पर पेड़ के नीचे—किसी दुकान की भट्ठी में।"

बालक कुछ ठहरा। मैं असमंजस में रहा। तब वह प्रेतगति से एक ओर बढ़ा और कुहरे में मिल गया। हम भी होटल की ओर बढ़े। हवा तीखी थी—हमारे कोटों को पारकर बदन में तीर-सी लगती थी।

सिकुड़ते हुए मित्र ने कहा—"भयानक शीत है। उसके पास कम —बहुत कम कपड़े हैं. . . . ।"

"यह संसार है, यार!" मैंने स्वार्थ की फिलासफी सुनाई, "चलो, पहले बिस्तर में गर्म हो लो, फिर किसी और की चिन्ता करना।"

उदास होकर मित्र ने कहा, "स्वार्थ! —जो कहो, लाचारी कहो, निठुराई कहो या बेहयाई!"

दूसरे दिन नैनीताल-स्वर्ग के किसी काल के गुलाम पशु के दुलार का वह बेटा— वह बालक, निश्चित समय पर हमारे 'होटल-डि-पव' में नहीं आया। हम अपनी नैनीताल-सैर खुशी-खुशी खतम कर चलने को हुए। उस लड़के की आस लगाये बैठ रहने की जरूरत हमने न समझी।

मोटर में सवार होते ही थे कि समाचार मिला—पिछली रात, एक पहाड़ी बालक, सड़क के किनारे, पेड़ के नीचे ठिठुरकर मर गया।

मरने के लिए उसे वही जगह, वही दस बरस की उम्र और वही काले चिथड़ों की कमीज मिली! आदमियों की दुनिया ने बस यही उपहार उसके पास छोड़ा था।

पर बताने वालों ने बताया कि गरीब के मुँह पर, छाती, मुट्ठियों और पैरों पर बरफ की हलकी-सी चादर चिपक गई थी। मानो दुनिया की बेहयाई ढकने के लिए प्रकृति ने शव के लिए सफेद और ठंडे कफन का प्रबन्ध कर दिया था।

सब सुना और सोचा—अपना-अपना भाग्य!



भीष्म साहनी

(जन्म 1915 ई०)

भीष्म साहनी का जन्म विभाजन पूर्व पंजाब के छोटे से शहर रावलपिंडी में हुआ। आपकी प्रारंभिक शिक्षा और संस्कार का केन्द्र यही था। जहाँ आपको देश की जीवन की लगभग सभी प्रवृत्तियों की झलक मिल जाती थी। आपको देश विभाजन के समय की परिस्थितियों का पूरा अनुभव है। जिसकी झलक आपके साहित्य में मिलती है।

आपके दिल्ली में एक कॉलेज में प्राध्यापक होने के बाद आपकी साहित्यिक प्रतिभा का विकास हुआ है। भटकती राख, भाग्य रेखा, पहला पाठ, चीफ की दावत, अमृतसर आ गया है. . . आदि आपकी प्रसिद्ध कहानियाँ हैं। आपके द्वारा लिखे गये 'तमस' उपन्यास को साहित्य अकादमी पुरस्कार प्राप्त हो चुका है। भीष्म साहनी जी को जीवन के सहज प्रवाह से वास्तविकताओं को चुनकर उन्हें चित्रित करने में महारत हासिल है।

अमृतसर आ गया है . . .

प्रस्तुत कहानी में भीष्म साहनी ने देश-विभाजन की घटना पर आधारित प्रसंग का चित्रण किया है जिस समय हिन्दू-मुसलान मानवीय संवेदनाओं से पूर्णतः रिक्त हो गए थे। सारे देश में साम्प्रदायिकता का बोलबाला था और अपने धर्म के समुदाय में ही प्रत्येक व्यक्ति अपने आप को सुरक्षित महसूस करता था। परिणामतः दूसरे धर्म के व्यक्ति पर वह रोब जमाना था।

8. अमृतसर आ गया है . . .

गाड़ी के डिब्बे में बहुत मुसाफिर नहीं थे। मेरे सामने वाली सीट पर बैठे सरदारजी देर से मुझे लाम के किस्से सुनाते रहे थे। वह लाम के दिनों में बर्मा की लड़ाई में भाग ले चुके थे और बात-बात पर खी-खी करके हँसते और गोरे फौजियों की खिल्ली उड़ाते रहे थे। डिब्बे में तीन पठान व्यापारी भी थे, उनमें से एक हरे रंग की पोशाक पहने ऊपरवाली बर्थ पर लेटा हुआ था। वह आदमी बड़ा हँसमुख था और बड़ी देर से मेरे साथ वाली सीट पर बैठे एक दुबले-से बाबू के साथ उसका मजाक चल रहा था। वह दुबला बाबू पेशावर का रहने वाला जान पड़ता था क्योंकि किसी-किसी वक्त वे आपस में पश्तो में बातें करने लगते थे। मेरे सामने दायीं ओर कोने में, एक बुढ़िया मुँह-सिर ढाँपे बैठी थी और देर से माला जप रही थी। यही कुछ लोग रहे होंगे। सम्भव है, दो-एक और मुसाफिर भी रहे हों, पर वे स्पष्टत: मुझे याद नहीं।

गाड़ी धीमी रफ्तार से चली जा रही थी, और गाड़ी में बैठे मुसाफिर बतिया रहे थे और बाहर गेहूँ के खेतों में हल्की-हल्की लहरियाँ उठ रही थीं, और मैं मन-ही-मन बड़ा खुश था क्योंकि मैं दिल्ली में होने वाला स्वतन्त्रता-दिवस समारोह देखने जा रहा था।

उन दिनों के बारे में सोचता हूँ, तो लगता है, हम किसी झुटपुटे में जी रहे थे। शायद समय बीत जाने पर अतीत का सारा व्यापार ही झुटपुटे में बीता जान पड़ता है। ज्यों-ज्यों भविष्य के पट खुलते जाते हैं, यह झुटपुटा और भी गहराता चला जाता है।

उन्हीं दिनों पाकिस्तान के बनाये जाने का ऐलान किया गया था और लोग तरह-तरह के अनुमान लगाने लगे थे कि भविष्य में जीवन की रूपरेखा कैसी होगी। पर किसी की भी कल्पना बहुत दूर तक नहीं जा पाती थी। मेरे सामने बैठे सरदारजी बार-बार मुझसे पूछ रहे थे कि पाकिस्तान बन जाने पर जिन्ना साहिब बम्बई में ही रहेंगे या पाकिस्तान में जाकर बस जायेंगे, और मेरा हर बार यही जवाब होता—बम्बई क्यों छोड़ेंगे, पाकिस्तान में आते-जाते रहेंगे, बम्बई छोड़ देने में क्या तुक है। लाहौर और गुरदासपुर के बारे में भी अनुमान लगाये जा रहे थे कि कौन-सा शहर किस ओर जायेगा। मिल बैठने के ढंग में, गप-शप में, हँसी-

मजाक में कोई विशेष अन्तर नहीं आया था। कुछ लोग अपने घर छोड़ कर जा रहे थे जबकि अन्य लोग उनका मजाक उड़ा रहे थे। कोई नहीं जानता था कि कौन-सा कदम ठीक होगा और कौन-सा गलत। एक ओर पाकिस्तान बन जाने का जोश था तो दूसरी ओर हिन्दुस्तान के आजाद हो जाने का जोश। जगह-जगह दंगे भी हो रहे थे, और योम-ए-आजादी की तैयारियाँ भी चल रही थीं। इस पृष्ठभूमि में लगता, देश आज़ाद हो जाने पर दंगे अपने-आप बन्द हो जायेंगे। वातावरण के इस झुटपुटे में आज़ादी की सुनहरी धूल-सी उड़ रही थी और साथ-ही-साथ अनिश्चय भी डोल रहा था, और इसी अनिश्चय की स्थिति में किसी-किसी वक्त भावी रिश्तों की रूपरेखा झलक दे जाती थी।

शायद जेहलम का स्टेशन पीछे छूट चुका था जब ऊपरवाली बर्थ पर बैठे पठान ने एक पोटली खोल ली और उसमें से उबलता हुआ मांस और नान-रोटी के टुकड़े निकाल-निकालकर अपने साथियों को देने लगा। फिर वह हँसी-मजाक के बीच मेरी बगल में बैठे बाबू की ओर भी नान का टुकड़ा और मांस की बोटी बढ़ाकर खाने का आग्रह करने लगा था, "खा ले, बाबू, ताकत आयेगी। हम जैसा हो जायेगा। बीवी भी तेरे साथ खुश रहेगी। खा ले दालखोर, तू दाल खाता है इसलिए दुबला है. . . . ."

डिब्बे में लोग हँसने लगे थे। बाबू ने पश्तो में कुछ जवाब दिया और फिर मुस्कराता सिर हिलाता रहा।

इस पर दूसरे पठान ने हँसकर कहा, "ओ जालिम, हमारे आथ से नईं लेता ए तो अपने आथ से उठा ले। खुदा कसम बर का गोश्त ए, और किसी चीज का नईं ए।"

ऊपर बैठा पठान चहककर बोला, "ओ खंजीर के तुख्म, इधर तुमें कोन देखता ए? हम तेरी बीवी को नईं बोलेगा। ओ तू आमरे साथ बोटी तोड़। हम तेरे साथ दाल पियेगा. . . ."

इस पर कहकहा उठा, पर दुबला-पतला बाबू हँसता, सिर हिलाता रहा और कभी-कभी दो शब्द पश्तो में भी कह देता।

"ओ कितना बुरा बात ऐ अम खाता ए, और तू अमारा मुँह देखता ए.... " सभी पठान मगन थे।

"यह इसलिए नहीं लेता कि तुमने हाथ नहीं धोये हैं. . . ." स्थूलकाय सरदारजी बोले और बोलते ही खी-खी करने लगे। अधलेटी मुद्रा में बैठे सरदारजी की आधी तोंद सीट के नीचे लटक रही थी— "तुम अभी सोकर उठे हो और उठते ही पोटली खोलकर खाने लग गये हो, इसीलिए बाबू जी तुम्हारे हाथ से नहीं लेते, और कोई बात नहीं।" और सरदारजी ने मेरी ओर देखकर आँख मारी और फिर खी-खी करने लगे।

"मांस नईं खाता ए, बाबू तो जाओ जनाना डिब्बे में बैठो, इधर क्या करता ए?" फिर कहकहा उठा।

डिब्बे में और भी अनेक मुसाफिर थे लेकिन पुराने मुसाफिर यही थे जो सफर शुरू होने पर गाड़ी में बैठे थे। बाकी मुसाफिर उतरते-चढ़ते रहे थे। पुराने मुसाफिर होने के नाते ही उनमें एक तरह की बेतकल्लुफी आ गयी थी।

"ओ इधर आकर बैठो। तुम अमारे साथ बैठो। आओ जालिम, किस्साखानी की बातें करेंगे।"

तभी किसी स्टेशन पर गाड़ी रुकी थी और नये मुसाफिरों का रेला अन्दर आ गया था। बहुत-से मुसाफिर एक साथ अन्दर घुसते चले आये थे।

"कौन-सा स्टेशन है?" किसी ने पूछा।

"वजीराबाद है शायद।" मैंने बाहर की ओर देखकर कहा।

गाड़ी वहाँ थोड़ी देर के लिए खड़ी रही। पर छूटने से पहले एक छोटी सी घटना घटी। एक आदमी साथ वाले डिब्बे में से पानी लेने उतरा और नल पर जाकर पानी लोटे में भर रहा था जब वह भागकर अपने डिब्बे की ओर लौट आया। छलछलाते लोटे में से पानी गिर रहा था। लेकिन जिस ढंग से वह भागा था उसी ने बहुत कुछ बता दिया था। नल पर खड़े और लोग भी, तीन या चार आदमी रहे होंगे—इधर-उधर अपने-अपने डिब्बे की ओर भाग गये थे। इस तरह घबराकर भागते लोगों को मैं देख चुका था। देखते-ही-देखते प्लेटफार्म खाली हो गया। मगर डिब्बे के अन्दर अभी भी हँसी-मजाक चल रहा था।

"कहीं कोई गड़बड़ है।" मेरे पास बैठे दुबले बाबू ने कहा।

कहीं कुछ था, लेकिन क्या था, कोई भी स्पष्ट नहीं जानता था। मैं अनेक दंगे देख चुका था, इसलिए वातावरण में होने वाली छोटी-सी तब्दीली को भी भाँप गया था। भागते व्यक्ति, खटाक् से बन्द होते दरवाजे, घरों की छतों पर खड़े लोग, चुप्पी और सन्नाटा, सभी दंगों के चिह्न थे।

तभी पिछले दरवाजे की ओर से, जो प्लेटफार्म की ओर न खुलकर दूसरी ओर खुलता था, हल्का-सा शोर हुआ। कोई मुसाफिर अन्दर घुसना चाह रहा था।

"कहाँ घुसा आ रहा, नहीं है जगह! बोल दिया, जगह नहीं है।" किसी ने कहा।

"बन्द करो जी दरवाजा। यों ही मुँह उठाये घुसे आते हैं. . . ." आवाजें आ रही थीं।

जितनी देर कोई मुसाफिर डिब्बे के बाहर खड़ा अन्दर आने की चेष्टा करता रहे, अन्दर बैठे मुसाफिर उसका विरोध करते रहते हैं। पर एक बार जैसे-तैसे वह अन्दर आ जाये तो विरोध खत्म हो जाता है, और वह मुसाफिर जल्दी ही डिब्बे की दुनिया का निवासी बन जाता है, और अगले स्टेशन पर वही सबसे पहले बाहर खड़े मुसाफिरों पर चिल्लाने लगता है—'नहीं है जगह, अगले डिब्बे में जाओ. . . . घुसे आते हैं. . . '

दरवाजे पर शोर बढ़ता जा रहा था। तभी मैले-कुचैले कपड़ों और लटकती मूँछोंवाला एक आदमी दरवाजे में से अन्दर घुसता दिखायी दिया। चीकट मैले कपड़े, जरूर कहीं हलवाई की दुकान करता होगा। वह लोगों की शिकायतों-आवाजों की ओर ध्यान दिये बिना दरवाजे की ओर घूमकर बड़ा-सा काले रंग का सन्दूक अन्दर की ओर घसीटने लगा।

"आ जाओ, आ जाओ, तुम भी चढ़ आओ!" वह अपने पीछे किसी से कहे जा रहा था। तभी दरवाजे में एक पतली सूखी-सी औरत नज़र आयी और उसके पीछे सोलह-सत्तरह बरस की साँवली-सी एक लड़की अन्दर आ गयी। लोग अभी भी चिल्लाये जा रहे थे। सरदारजी को कूल्हों के बल उठकर बैठना पड़ा।

"बन्दर करो जी दरवाजा, बिना पूछे चढ़े आते हैं, अपने बाप का घर समझ रखा है। मत घुसने दो जी, क्या करते हो, धकेल दो पीछे. . . . " और लोग भी चिल्ला रहे थे।

वह आदमी अपना सामान अन्दर घसीटे जा रहा था और उसकी पत्नी और बेटी संडास के दरवाजे के साथ लगकर खड़ी थीं।

''और कोई डिब्बा नहीं मिला? औरत जात को भी यहाँ उठा लाया है?''

वह आदमी पसीने से तर था और हाँफता हुआ सामान अन्दर घसीटे जा रहा था। सन्दूक के बाद रस्सियों से बँधी खाट की पाटियाँ अन्दर खींचने लगा।

''टिकट है जी मेरे पास, मैं बेटिकट नहीं हूँ। लाचारी है, शहर में दंगा हो गया है। बड़ी मुश्किल से स्टेशन तक पहुँचा हूँ।'' इस पर डिब्बे में बैठे बहुत-से लोग चुप हो गये, पर बर्थ पर बैठा पठान उचककर बोला, ''निकल जाओ इदर से, देखता नईं ए इदर जगा नईं ए।''

और पठान ने आव देखा न ताव, आगे बढ़कर ऊपर से ही उस मुसाफिर के लात जमा दी, पर लात उस आदमी को लगने के बजाय उसकी पत्नी के कलेजे में लगी और वह वहीं हाय-हाय करती बैठ गयी।

उस आदमी के पास मुसाफिरों के साथ उलझने के लिए वक्त नहीं था। वह बराबर अपना सामान अन्दर घसीटे जा रहा था। पर डिब्बे में मौन छा गया। खाट की पाटियों के बाद बड़ी-बड़ी गठरियाँ आयीं। इस पर ऊपर बैठे पठान की सहन-क्षमता चुक गयी। ''निकालो इसे, कौन ऐ ये?'' वह चिल्लाया। इस पर दूसरे पठान ने जो नीचे की सीट पर बैठा था, उस आदमी का सन्दूक दरवाजे में से नीचे धकेल दिया, जहाँ लाल वर्दी वाला एक कुली खड़ा सामान अन्दर पहुँचा रहा था।

उसकी पत्नी के चोट लगने पर कुछ मुसाफिर चुप हो गये थे। केवल कोने में बैठी बुढ़िया कुरलाये जा रही थी, ''ऐ नेकबख्तो, बैठने दो। आ जा बेटी, तू मेरे पास आ जा। जैसे-तैसे सफर काट लेंगे। छोड़ो वे जालिमो, बैठने दो।''

अभी आधा सामान ही अन्दर आ पाया होगा कि सहसा गाड़ी सरकने लगी।

''छूट गया! सामान छूट गया!'' वह आदमी बदहवास सा होकर चिल्लाया।

''पिताजी, सामान छूट गया।'' संडास के दरवाजे के पास खड़ी लड़की सिर से पाँव तक काँप रही थी और चिल्लाये जा रही थी।

''उतरो, नीचे उतरो'' वह आदमी हड़बड़ाकर चिल्लाया, और आगे बढ़कर खाट की पाटियाँ और गठरियाँ बाहर फेंकते हुए दरवाजे का डण्डहरा पकड़कर नीचे उतर गया।

उसके पीछे उसकी भयाकुल बेटी और फिर उसकी पत्नी, कलेजे को दोनों हाथों से दबाये हाय-हाय करती नीचे उतर गयीं।

"बहुत बुरा किया है तुम लोगों ने, बहुत बुरा किया है।" बुढ़िया ऊँचा-ऊँचा बोल रही थी। "तुम्हारे दिल में दर्द मर गया है। छोटी-सी बच्ची उसके साथ थी। बेरहमो, तुमने बहुत बुरा किया है, धक्के देकर उतार दिया है।"

गाड़ी सूने प्लेटफार्म को लाँघती आगे बढ़ गयी। डिब्बे में व्याकुल-सी चुप्पी छा गयी। बुढ़िया ने बोलना बन्द कर दिया था। पठानों का विरोध कर पाने की किसी की हिम्मत नहीं हुई।

तभी मेरी बगल में बैठे दुबले बाबू ने मेरे बाजू पर हाथ रखकर कहा, "आग है, देखो आग लगी है।"

गाड़ी प्लेटफार्म छोड़कर आगे निकल आयी थी और शहर पीछे छूट रहा था। तभी शहर की ओर से उठते धुएँ के बादल और उनमें लपलपाती आग के शोले नज़र आने लगे थे।

"दंगा हुआ है। स्टेशन पर भी लोग भाग रहे थे। कहीं दंगा हुआ है।"

शहर में आग लगी थी। बात डिब्बे-भर के मुसाफिरों को पता चल गयी और वे लपक-लपककर खिड़कियों में से आग का दृश्य देखने लगे।

जब गाड़ी शहर छोड़कर आगे बढ़ गयी तो डिब्बे में सन्नाटा छा गया। मैंने घूमकर डिब्बे के अन्दर देखा, दुबले बाबू का चेहरा पीला पड़ गया था और माथे पर पसीने की परत किसी मुर्दे के माथे की तरह चमक रही थी। मुझे लगा, जैसे अपनी-अपनी जगह बैठे सभी मुसाफिरों ने अपने आसपास बैठे लोगों का जायजा ले लिया है। सरदारजी उठकर मेरी सीट पर आ बैठे। नीचे वाली सीट पर बैठा पठान उठा और अपने दो साथी पठानों के साथ ऊपर वाली बर्थ पर चढ़ गया। यही क्रिया शायद रेलगाड़ी के अन्य डिब्बों में भी चल रही थी। डिब्बे में तनाव आ गया। लोगों ने बतियाना बन्द कर दिया। तीनों के तीनों पठान ऊपरवाली बर्थ पर एक साथ बैठे चुपचाप नीचे की ओर देखे जा रहे थे। सभी मुसाफिरों की आँखें पहले से ज्यादा खुली-खुली, ज्यादा शंकित-सी लगीं। यही स्थिति सम्भवतः गाड़ी के सभी डिब्बों में व्याप्त हो रही थी।

''कौन-सा स्टेशन था यह?'' डिब्बे में किसी ने पूछा।

''वज़ीराबाद।'' किसी ने उत्तर दिया।

जवाब मिलने पर डिब्बे में एक और प्रतिक्रिया हुई। पठानों के मन का तनाव फौरन ढीला पड़ गया, जबकि हिन्दू-सिख मुसाफिरों की चुप्पी और ज्यादा गहरी हो गयी। एक पठान ने अपनी बास्कट की जेब में से नसवार की डिबिया निकाली और नाक में नसवार चढ़ाने लगा। अन्य पठान भी अपनी-अपनी डिबिया निकालकर नसवार चढ़ाने लगे। बुढ़िया बराबर माला जपे जा रही थी। किसी-किसी वक्त उसके बुदबुदाते होंठ नज़र आते, लगता, उनमें से कोई खोखली-सी आवाज निकल रही है।

अगले स्टेशन पर जब गाड़ी रुकी तो वहाँ भी सन्नाटा था। कोई परिन्दा तक नहीं फड़क रहा था। हाँ, एक भिश्ती, पीठ पर पानी की मशक लादे, प्लेटफार्म लाँघकर आया और मुसाफिरों को पानी पिलाने लगा।

''लो, पियो पानी, पानी पियो।'' औरतों के डिब्बे में से औरतों और बच्चों के अनेक हाथ बाहर निकल आये थे।

''बहुत मार-काट हुई है, बहुत लोग मरे हैं।'' लगता था, वह इस मार-काट में अकेला पुण्य कमाने चला आया था।

गाड़ी सरकी तो सहसा खिड़कियों के पल्ले चढ़ाये जाने लगे। दूर-दूर तक, पहियों की गड़गड़ाहट के साथ, खिड़कियों के पल्ले चढ़ाने की आवाज आने लगी।

किसी अज्ञात आशंकावश दुबला बाबू मेरे पासवाली सीट पर से उठा और दो सीटों के बीच फर्श पर लेट गया। उसका चेहरा अभी भी मुर्दे जैसा पीला हो रहा था। इस पर बर्थ पर बैठा पठान उसकी ठिठोली करने लगा—ओ बेगैरत, तुम मर्द ऐ कि औरत ए? सीट पर से उठकर नीचे लेटता ए। तुम मर्द के नाम को बदनाम करता ए।. . . वह बोल रहा था और बार-बार हँसे जा रहा था। फिर वह उससे पश्तो में कुछ कहने लगा। बाबू चुप बना लेटा रहा। अन्य सभी मुसाफिर चुप थे। डिब्बे का वातावरण बोझिल बना हुआ था।

''ऐसे आदमी को अम डिब्बे में बैठने नईं देगा। ओ बाबू, तुम अगले स्टेशन पर उतर जाओ, और जनाना डिब्बे में बैठो।''

मगर बाबू की हाजिर-जवाबी अपने कण्ठ में सूख चली थी। हकलाकर चुप हो रहा। पर थोड़ी देर बाद वह अपने-आप सीट पर जा बैठा और देर तक अपने कपड़ों की धूल झाड़ता रहा। वह क्यों उठकर फर्श पर लेट गया था। शायद उसे डर था कि बाहर से गाड़ी पर पथराव होगा या गोली चलेगी, शायद इसी कारण खिड़कियों के पल्ले चढ़ाये जा रहे थे।

कुछ भी कहना कठिन था। मुमकिन है किसी एक मुसाफिर ने किसी कारण से खिड़की का पल्ला चढ़ाया हो और उसकी देखा-देखी, बिना सोचे-समझे, धड़ाधड़ खिड़कियों के पल्ले चढ़ाये जाने लगे हों।

बोझिल अनिश्चित-से वातावरण में सफर कटने लगा। रात गहराने लगी थी। डिब्बे के मुसाफिर स्तब्ध और शंकित ज्यों-के-त्यों बैठे थे। कभी गाड़ी की रफ्तार सहसा टूटकर धीमी पड़ जाती तो लोग एक-दूसरे की ओर देखने लगते। कभी रास्ते में ही रुक जाती तो डिब्बे के अन्दर का सन्नाटा और भी गहरा हो उठता। केवल पठान निश्चिंत बैठे थे। हाँ, उन्होंने भी बतियाना छोड़ दिया था, क्योंकि उनकी बातचीत में कोई भी शामिल होने वाला नहीं था।

धीरे-धीरे पठान ऊँघने लगे, जबकि अन्य मुसाफिर फटी-फटी आँखों से शून्य में देखे जा रहे थे। बुढ़िया मुँह-सिर लपेटे, टाँगे सीट पर चढ़ाये, बैठी-बैठी सो गयी थी। ऊपरवाली बर्थ पर एक पठान ने, अधलेटे ही, कुर्ते की जेब में से काले मनकों की तसबीह निकाल ली और उसे धीरे-धीरे हाथ में चलाने लगा।

खिड़की के बाहर आकाश में चाँद निकल आया और चाँदनी में बाहर की दुनियाँ और भी अनिश्चित, और भी अधिक रहस्यमयी हो उठी। किसी-किसी वक्त दूर किसी ओर आग के शोले उठते नज़र आते, कोई नगर जल रहा था। गाड़ी किसी वक्त चिंघाड़ती हुई आगे बढ़ने लगती, फिर किसी वक्त उसकी रफ्तार धीमी पड़ जाती और मीलों तक धीमी रफ्तार से ही चलती रहती।

सहसा दुबला बाबू खिड़की में से बाहर देखकर ऊँची आवाज़ में बोला, ''हरबंसपुरा निकल गया है।'' उसकी आवाज में उत्तेजना थी, वह जैसे चीखकर बोला था। डिब्बे के

सभी लोग उसकी आवाज सुनकर चौंक गये। उसी वक्त डिब्बे के अधिकांश मुसाफिरों ने मानो उसकी आवाज़ को ही सुनकर करवट बदली।

"ओ बाबू, चिल्लाता क्यों ए?" तसबीहवाला पठान चौंककर बोला, "इधर उतरेगा तुम?" जंजीर खींचूँ?" और खीं-खीं करके हँस दिया। ज़ाहिर है, वह हरबंसपुरा की स्थिति से अथवा उसके नाम से अनभिज्ञ था।

बाबू ने कोई उत्तर नहीं दिया, केवल सिर हिला दिया और एक-आध बार पठान की ओर देखकर फिर खिड़की के बाहर झाँकने लगा।

डिब्बे में फिर मौन छा गया। तभी इंजन ने सीटी दी और एक-रस रफ्तार टूट गयी। थोड़ी ही देर बाद खटाक् का-सा शब्द भी हुआ, शायद गाड़ी ने लाइन बदली थी। बाबू ने झाँककर उस दिशा में देखा जिस ओर गाड़ी बढ़ी जा रही थी।

"शहर आ गया है!" वह फिर ऊंची आवाज़ में चिल्लाया, "अमृतसर आ गया है!" उसने फिर से कहा और उछलकर खड़ा हो गया, और ऊपरवाली बर्थ पर लेटे पठान को सम्बोधन करके चिल्लाया, "ओ बे पठान के बच्चे! नीचे उतर! तेरी माँ की. . .नीचे उतर, तेरी उस पठान बनाने वाले की मैं...."

बाबू चिल्लाने लगा था और चीख-चीखकर गालियाँ बकने लगा था। तसबीहवाले पठाने ने करवट बदली और बाबू की ओर देखकर बोला, "ओ क्या ए बाबू? अम को कुछ बोला?"

बाबू को उत्तेजित देखकर अन्य मुसाफिर भी उठ बैठे।

"नीचे उतर, तेरी मैं....हिन्दू औरत को लात मारता है, हरामजादे, तेरी उस...."

"ओ बाबू, बक-बक नईं करो। ओ खंजीर के तुख्म, गाली मत बको, अमने बोल दिया। अम तुम्हारा जबान खींच लेगा।"

"गाली देता है मादर... " बाबू चिल्लाया और उछलकर सीट पर चढ़ गया। वह सिर से पाँव तक काँप रहा था।

"बस-बस," सरदारजी बोले, "यह लड़ने की जगह नहीं है। थोड़ी देर का सफर बाकी है, आराम से बैठो।"

"तेरी मैं लात न तोड़ूँ तो कहना, गाड़ी तेरे बाप की है?" बाबू चिल्लाया।

"ओ अमने क्या बोला! सभी लोग उसको निकालता था, अमने भी निकाल दिया। ये इदर अमको गाली देता ए। अम इसका जबान खींच लेगा।"

बुढ़िया बीच में फिर बोल उठी, "वे जीण जोगयो, अराम नाल बैठो। वे रब्ब दियो बंदयो, कुज होश करो।"

उसके होंठ किसी प्रेत के होंठों की तरह फड़फड़ाये जा रहे थे और उनमें से क्षीण-सी फुसफुसाहट सुनायी दे रही थी।

बाबू चिल्लाये जा रहा था, "अपने घर में शेर बनता था। अब बोल, तेरी मैं उस पठान बनाने वाले की...."

तभी गाड़ी अमृतसर के प्लेटफार्म पर रुकी। प्लेटफ़ार्म लोगों से खचाखच भरा था। प्लेटफार्म पर खड़े लोग झाँक-झाँककर डिब्बों के अन्दर देखने लगे। बार-बार लोग एक ही सवाल पूछ रहे थे—पीछे क्या हुआ है? कहाँ पर दंगा हुआ है?

खचाखच भरे प्लेटफार्म पर शायद इसी बात की चर्चा चल रही थी कि पीछे क्या हुआ है। प्लेटफार्म पर खड़े दो-तीन खोमचे वालों पर मुसाफिर टूटे पड़ रहे थे। सभी को सहसा भूख और प्यास परेशान करने लगी थी। इसी दौरान तीन-चार पठान हमारे डिब्बे के बाहर प्रकट हो गये और खिड़की में से झाँक-झाँककर अन्दर देखने लगे। अपने पठान साथियों पर नज़र पड़ते ही वे उनसे पश्तो में कुछ बोलने लगे। मैंने घूम कर देखा, बाबू डिब्बे में नहीं था। न जाने कब वह डिब्बे में से निकल गया था। मेरा माथा ठनका। गुस्से से वह पागल हुआ जा रहा था। न जाने क्या कर बैठे! पर इस बीच डिब्बे में तीनों पठान, अपनी-अपनी गठरी उठाकर बाहर निकल गये और अपने पठान साथियों के साथ गाड़ी के अगले किसी डिब्बे की ओर बढ़ गये। जो विभाजन पहले प्रत्येक डिब्बे के भीतर होता रहा था, अब सारी गाड़ी के स्तर पर होने लगा था।

खोमचेवालों के इर्द-गिर्द भीड़ छँटने लगी। लोग अपने-अपने डिब्बों में लौटने लगे। तभी सहसा एक ओर से मुझे वह बाबू आता दिखायी दिया। उसका चेहरा अभी भी बहुत पीला था और माथे पर बालों की लट झूल रही थी। नज़दीक पहुँचा, तो मैंने देखा, उसने

अपने दायें हाथ में लोहे की एक छड़ उठा रखी थी। जाने वह उसे कहाँ से मिल गयी थी। डिब्बे में घुसते समय उसने छड़ को अपनी पीठ-पीछे कर लिया और मेरे साथ वाली सीट पर बैठने से पहले उसने हौले से छड़ को सीट के नीचे सरका दिया। सीट पर बैठते ही उसकी आँखें पठान को देख पाने के लिए ऊपर को उठीं। पर डिब्बे में पठानों को न पाकर वह हड़बड़ाकर चारों ओर देखने लगा।

"निकल गये हरामी, मादर.....सब-के-सब निकल गये।" फिर वह सिटपिटाकर उठ खड़ा हुआ और चिल्लाकर बोला, "तुमने उन्हें जाने दिया? तुम सब नामर्द हो, बुजदिल।"

पर गाड़ी में भीड़ बहुत थी। बहुत-से नये मुसाफिर आ गये थे। किसी ने उसकी ओर विशेष ध्यान नहीं दिया।

गाड़ी सरकने लगी तो वह फिर मेरी बगलवाली सीट पर आ बैठा, पर वह बड़ा उत्तेजित था और बराबर बड़बड़ाये जा रहा था।

धीरे-धीरे हिचकोले खाती गाड़ी आगे बढ़ने लगी। डिब्बे के पुराने मुसाफिरों ने भरपेट पूरियाँ खा ली थीं और पानी पी लिया था और गाड़ी उस इलाके से आगे बढ़ने लगी थी, जहाँ उनके जान माल को खतरा नहीं था।

नये मुसाफिर बतिया रहे थे। धीरे-धीरे गाड़ी फिर समतल गति से चलने लगी थी। कुछ ही देर बाद लोग ऊँघने लगे थे। मगर बाबू अभी भी फटी-फटी आँखों से सामने की ओर देखे जा रहा था। बार-बार मुझसे पूछता कि पठान डिब्बे में से निकलकर किस ओर गये हैं। उसके सिर पर जनून सवार था।

गाड़ी के हिचकोलों मैं खुद ऊँघने लगा था। डिब्बे में लेट पाने के लिए जगह नहीं थी। बैठे-बैठे ही नींद में मेरा सिर कभी एक ओर को लुढ़क जाता, कभी दूसरी ओर को। किसी-किसी वक्त झटके से मेरी नींद टूटती और मुझे सामने की सीट पर अस्त-व्यस्त-से पड़े सरदारजी के खर्राटे सुनायी देते—अमृतसर पहुँचने के बाद सरदारजी फिर से सामने वाली सीट पर टाँगें पसारकर लेट गये थे। डिब्बे में तरह-तरह की आड़ी-तिरछी मुद्राओं

में मुसाफिर पड़े थे। उनकी बीभत्स मुद्रओं को देखकर लगता, डिब्बा लाशों से भरा है। पास बैठे बाबू पर नज़र पड़ती तो कभी तो वह खिड़की के बाहर मुँह किये देख रहा होता, कभी दीवार से पीठ लगाये तनकर बैठा नज़र आता।

किसी-किसी वक्त गाड़ी किसी स्टेशन पर रुकती तो पहियों की गड़गड़ाहट बन्द होने पर निःस्तब्धता-सी छा जाती। तभी लगता, जैसे प्लेटफार्म पर कुछ गिरा है, या जैसे कोई मुसाफिर गाड़ी में से उतरा है और मैं झटके से उठकर बैठ जाता।

इसी तरह एक बार जब मेरी नींद टूटी तो गाड़ी की रफ्तार धीमी पड़ गयी थी और डिब्बे में अँधेरा था। मैंने उसी तरह अधलेटे खिड़की में से बाहर देखा। दूर, पीछे की ओर किसी स्टेशन के सिगनल के लाल कुमकुमे चमक रहे थे। स्पष्टतः गाड़ी कोई स्टेशन लाँघकर आयी थी। पर अभी तक उसने रफ्तार नहीं पकड़ी थी।

डिब्बे के बाहर मुझे धीमे से अस्फुट स्वर सुनायी दिये। दूर ही एक धूमिल-सा काला पुंज नजर आया। नींद की खुमारी में मेरी आँखें कुछ देर तक उस पर लगी रहीं, फिर मैंने उसे समझ पाने का विचार छोड़ दिया। डिब्बे के अन्दर अँधेरा था, बत्तियाँ बुझी हुई थीं, लेकिन बाहर लगता था, पौ फटने वाली है।

मेरी पीठ-पीछे, डिब्बे के बाहर किसी चीज को खरोंचने की सी आवाज़ आयी। मैंने दरवाजे की ओर घूमकर देखा। डिब्बे का दरवाजा बन्द था। मुझे फिर से दरवाजा खरोंचने की आवाज सुनायी दी, फिर मैंने साफ-साफ सुना, लाठी से कोई व्यक्ति डिब्बे का दरवाजा पटपटा रहा था। मैंने झाँककर खिड़की के बाहर देखा। सचमुच एक आदमी डिब्बे की दो सीढ़ियाँ चढ़ आया था। उसके कन्धे पर गठरी झूल रही थी और हाथ में लाठी थी और उसने बदरंग-से कपड़े पहन रखे थे और उसके दाढ़ी थी। फिर मेरी नज़र बाहर नीचे की ओर गयी। गाड़ी के साथ-साथ एक औरत भागती चली आ रही थी, नंगे पाँव और उसने दो गठरियाँ उठा रखी थीं। बोझ के कारण उससे दौड़ा नहीं जा रहा था। डिब्बे के पायदान पर खड़ा आदमी बार-बार उसकी ओर मुड़कर देख रहा था और हाँफता हुआ कहे जा रहा था—आ जा, आ जा, तू भी चढ़ आ, आ जा!

दरवाज़े पर फिर से लाठी पटपटाने की आवाज़ आयी, "खोलो जी दरवाजा, खुदा के वास्ते दरवाज़ा खोलो।"

वह आदमी हाँफ रहा था, "खुदा के लिए दरवाज़ा खोलो। मेरे साथ में औरत जात है। गाड़ी निकल जायेगी. . . ."

सहसा मैंने देखा, बाबू हड़बड़ाकर उठ खड़ा हुआ और दरवाज़े के पास जाकर दरवाज़े मं लगी खिड़की में से मुँह बाहर निकालकर बोला, "कौन है? इधर जगह नहीं है"

बाहर खड़ा आदमी फिर गिड़गिड़ाने लगा, "खुदा के वास्ते गाड़ी निकल जायेगी......"

और वह आदमी खिड़की में से अपना हाथ अन्दर डालकर दरवाज़ा खोल पाने के लिए सिटकनी टटोलने लगा।

"नहीं है जगह, बोल दिया, उतर जाओ गाड़ी पर से।" बाबू चिल्लाया और उसी क्षण लपककर दरवाजा खोल दिया।

"या अल्लाह!" उस आदमी के अस्फुट-से शब्द सुनायी दिये। दरवाजा खुलने पर जैसे उसने इत्मीनान की साँस ली हो।

और उसी वक्त मैंने बाबू के हाथ में छड़ को चमकते देखा। एक ही भरपूर वार बाबू ने उस मुसाफिर के सिर पर किया था। मैं देखते ही डर गया और मेरी टाँगे लरज गयीं। मुझे लगा, जैसे छड़ के वार का उस आदमी पर कोई असर नहीं हुआ। उसके दोनों हाथ अभी भी जोर से डण्डहरे को पकड़े हुए थे। कन्धे पर से लटकती गठरी खिसककर उसकी कोहनी पर आ गयी थी।

तभी सहसा उसके चेहरे पर लहू की दो-तीन धारें एक साथ फूट पड़ीं। झुरमुटे में उसके खुले होंठ और चमकते दाँत नजर आये। वह दो-एक बार 'या अल्लाह!' बुदबुदाया, फिर उसके पैर लड़खड़ा गये। उसकी आँखों ने बाबू की ओर देखा, अधमुँदी-सी आँखें, जो धीरे-धीरे सिकुड़ती जा रही थीं, मानो उसे पहचानने की कोशिश कर रही हों कि वह कौन है और उससे किस अदावत का बदला ले रहा है। इस बीच अँधेरा कुछ और छन गया था। उसके होंठ फिर से फड़फड़ाये और उनमें उसके सफेद दाँत फिर से झलक उठे। मुझे लगा, जैसे वह मुसकराया है, पर वास्तव में केवल त्रास के ही कारण उसके होंठों में बल पड़ने लगे थे।

नीचे पटरी के साथ-साथ भागती औरत बड़बड़ाये और कोसे जा रही थी। उसे भी मालूम नहीं हो पाया था कि क्या हुआ है। वह अभी भी शायद यही समझ रही थी कि गठरी के कारण उसका पति गाड़ी पर ठीक तरह से चढ़ नहीं पा रहा है, कि उसका पैर जम नहीं पा रहा है। वह गाड़ी के साथ-साथ भागती हुई, अपनी दो गठरियों के बावजूद अपने पति के पैर को पकड़-पकड़कर सीढ़ी पर टिकाने की कोशिश कर रही थी।

तभी सहसा डण्डहरे पर उस आदमी के दोनों हाथ छूट गये और वह कटे पेड़ की भाँति नीचे जा गिरा। और उसके गिरते ही औरत ने भागना बन्द कर दिया, मानो दोनों का सफर एक साथ ही खत्म हो गया हो।

बाबू अभी भी मेरे निकट, डिब्बे के खुले दरवाजे में बुत-का-बुत बना खड़ा था, लोहे की छड़ अभी भी उसके हाथ में थी। मुझे लगा, जैसे वह छड़ को फेंक देना चाहता है लेकिन उसे फेंक नहीं पा रहा, उसका हाथ जैसे उठ नहीं रहा था। मेरी साँस अभी भी फूली हुई थी और डिब्बे के अंधियारे कोने में मैं खिड़की के साथ सटकर बैठा उसकी ओर देखे जा रहा था।

फिर वह आदमी खड़े-खड़े हिला। किसी अज्ञात प्रेरणावश वह एक कदम आगे बढ़ आया और दरवाज़े में से बाहर पीछे की ओर देखने लगा। गाड़ी आगे निकलती जा रही थी। दूर, पटरी के किनारे अँधियारा पुंज-सा नजर आ रहा था।

बाबू का शरीर हरकत में आया। एक झटके में उसने छड़ को डिब्बे के बाहर फेंक दिया। फिर घूमकर डिब्बे के अन्दर दायें-बायें देखने लगा। सभी मुसाफिर सोये पड़े थे। मेरी ओर उसकी नज़र नहीं उठी।

थोड़ी देर तक वह खड़ा डोलता रहा, फिर उसने घूमकर दरवाजा बन्द कर दिया। उसने ध्यान से अपने कपड़ों की ओर देखा, अपने दोनों हाथों की ओर देखा, फिर एक-एक करके अपने दोनों हाथों को नाक के पास ले जाकर उन्हें सूँघा, मानो जानना चाहता हो कि उसके हाथों से खून की बू तो नहीं आ रही है। फिर वह दबे पाँव चलता हुआ आया और मेरी बगलवाली सीट पर बैठ गया।

धीरे-धीरे झुटपुटा छँटने लगा, दिन खुलने लगा। साफ-सुथरी-सी रोशनी चारों ओर फैलने लगी। किसी ने जंजीर खींचकर गाड़ी को खड़ा नहीं किया था, छड़ खाकर गिरी उसकी देह मीलों पीछे छूट चुकी थी। सामने गेहूँ के खेतों में फिर से हल्की-हल्की लहरियाँ उठने लगी थीं।

सरदारजी बदन खुजलाते उठ बैठे। मेरी बगल में बैठा बाबू, दोनों हाथ सिर के पीछे रखे सामने की ओर देखे जा रहा था। रात-भर में उसके चेहरे पर दाढ़ी के छोटे-छोटे बाल उग आये थे। अपने सामने बैठा देख कर सरदार उसके साथ बतियाने लगा—"बड़े जीवटवाले हो बाबू, दुबले-पतले हो, पर बड़े गुर्दे वाले हो। बड़ी हिम्मत दिखायी है। तुमसे डरकर ही वे पठान डिब्बे में से निकल गये। यहाँ बने रहते तो एक-न-एक की खोपड़ी तुम जरूर दुरुस्त कर देते. . ." और सरदारजी हँसने लगे।

बाबू जवाब में मुसकराया—एक बीभत्स-सी मुसकान, और देर तक सरदार के चेहरे की ओर देखता रहा।



मुक्तिबोध

(जन्म 1917 ई० : मृत्यु 1964 ई०)

नई कविता के प्रमुख कवि, निबंधकार, आलोचक, कहानीकार तथा उपन्यासकार गजानन माधव मुक्तिबोध का जन्म मध्य प्रदेश के श्योपुर कस्बे में हुआ। आप मुख्यतः मार्क्सवादी विचारधारा के साहित्यकार हैं। आपने यथार्थवाद की मौलिक एवं गहन व्याख्या की है।

कविता के क्षेत्र में आप विशेष प्रसिद्ध हैं। हिंदी संसार ने 'निराला' के बाद आपको ही प्रमुख कवि स्वीकार किया है। आपकी साहित्य सेवा में कविताओं के अतिरिक्त 'भारतीय संस्कृति और सभ्यता' यह ग्रंथ मिलता है जिस पर मध्य प्रदेश सरकार ने रोक लगा दी थी। इसके अलावा आपकी कहानियाँ 'काठ का सपना' में संकलित हैं। आपने 'विपात्र' नामक उपन्यास भी लिखा है।

ब्रह्मराक्षस का शिष्य

प्रस्तुत कहानी में कहानीकार ने विद्यार्जन और अध्यापन पर बल देते हुए कहने का प्रयास किया है कि अपना ज्ञान योग्य व्यक्ति को देना यही हमारे जीवन की सार्थकता है। विद्यादान के बिना हमें मुक्ति नहीं मिल सकती।

9. ब्रह्मराक्षस का शिष्य

उस महाभव्य भवन की आठवीं मंजिल के जीने से सातवीं मंजिल के जीने की सूनी-सूनी सीढ़ियों पर उतरते हुए, उस विद्यार्थी का चेहरा भीतर से किसी प्रकाश से लाल हो रहा था।

वह चमत्कार उसे प्रभावित नहीं कर रहा था, जो उसने हाल-हाल में देखा। तीन कमरे पार करता हुआ वह विशाल वज्रबाहु हाथ उसकी आँखों के सामने फिर से खिंच जाता। उस हाथ की पवित्रता ही उसके खयाल में आती किन्तु वह चमत्कार, चमत्कार के रूप में उसे प्रभावित नहीं करता था। उस चमत्कार के पीछे ऐसा कुछ है, जिसमें वह घुल रहा है, लगातार घुलता जा रहा है। वह 'कुछ' क्या एक महापण्डित की जिन्दगी का सत्य नहीं है? नहीं, वही है! वही है!

पाँचवीं मंजिल से चौथी मंजिल पर उतरते हुए, ब्रह्मचारी विद्यार्थी, उस प्राचीन भव्य भवन की सूनी-सूनी सीढ़ियों पर यह श्लोक गाने लगता है :

मेघैर्मेदुरमम्बरं वनभुवः श्यामास्तमालद्रुमैः

इस भवन से ठीक बारह वर्ष के बाद यह विद्यार्थी बाहर निकला है। उसके गुरु ने जाते समय, राधा-माधव की यमुना-कूल-क्रीड़ा में घर भूली हुई राधा को बुला रहे नन्द के भाव प्रकट किये हैं। गुरु ने एक साथ शृंगार और वात्सल्य का बोध विद्यार्थी को करवाया। विद्याध्ययन के बाद, अब उसे पिता के चरण छूना है। पिताजी! पिताजी! माँ! माँ! यह ध्वनि उसके हृदय से फूट निकली।

किन्तु ज्यों-ज्यों वह छन्द सूने भवन में गूँजता, घूमता गया, त्यों-त्यों विद्यार्थी के हृदय में अपने गुरु की तसवीर और भी तीव्रता से चमकने लगी।

भाग्यवान् है वह जिसे ऐसा गुरु मिले!

जब वह चिड़ियों के घोंसलों और बर्रों के छत्तों-भरे सूने ऊँचे सिंहद्वार के बाहर निकला तो एकाएक राह से गुजरते हुए लोग 'भूत' 'भूत' कहकर भाग खड़े हुए। आज तक उस भवन में कोई नहीं गया था। लोगों की धारणा थी कि वहाँ एक ब्रह्मराक्षस रहता है।

बारह साल और कुछ दिन पहले–

सड़क पर दोपहर के दो बजे, एक देहाती लड़का, भूखा-प्यासा अपने सूखे होंठों पर जीभ फेरता हुआ, उसी बगलवाले ऊँचे सेमल के वृक्ष के नीचे बैठा हुआ था। हवा के झोंकों से फूलों के फलों का रेशमी कपास हवा में तैरता हुआ, दूर-दूर तक और इधर-उधर बिखर रहा था। उसके माथे पर फिक्रें गुँथ-बिंध रही थीं। उसने पास में पड़ी हुई एक मोटी ईंट सिरहाने रखी और पेड़-तले लेट गया।

धीरे-धीरे, उसकी विचार-मग्नता को तोड़ते हुए कान के पास उसे कुछ फुसफुसाहट सुनाई दी। उसने ध्यान से सुनने की कोशिश की। वे कौन थे?

उनमें से एक कह रहा था, "अरे, वह भट्ट। नितान्त मूर्ख है और दम्भी भी। मैंने जब उससे ईशावास्योपनिषद् की कुछ पंक्तियों का अर्थ पूछा, तो वह बौखला उठा। इस काशी में कैसे-कैसे दम्भी इकट्ठे हुए हैं?"

वार्तालाप सुनकर वह लेटा हुआ लड़का खट से उठ बैठा। उसका चेहरा धूल और पसीने से म्लान और मलिन हो गया था, भूख और प्यास से निर्जीव।

वह एकदम, बात करने वालों के पास खड़ा हुआ। हाथ जोड़े, माथा जमीन पर टेका। चेहरे पर आश्चर्य और प्रार्थना के दयनीय भाव! कहने लगा, 'हे विद्वानो! मैं मूर्ख हूँ। अपढ़ देहाती हूँ किन्तु ज्ञान-प्राप्ति की महत्त्वाकांक्षा रखता हूँ। हे महाभागो! आप विद्यार्थी प्रतीत होते हैं। मुझे विद्वान गुरु के घर की राह बताओ।'

पेड़-तले बैठे हुए दो बटुक विद्यार्थी उस देहाती को देखकर हँसने लगे, पूछा–

'कहाँ से आया है?'

'दक्षिण के एक देहात से! . . . पढ़ने-लिखने से मैंने बैर किया तो विद्वान् पिताजी ने घर से निकाल दिया। तब मैंने पक्का निश्चय कर लिया कि काशी जाकर विद्याध्ययन करूँगा। जंगल-जंगल घूमता, राह पूछता, मैं आज ही काशी पहुँचा हूँ। कृपा करके गुरु का दर्शन कराइए।'

अब दोनों विद्यार्थी जोर-जोर से हँसने लगे। उनमें से एक, जो विदूषक था, कहने लगा—

'देख बे, सामने सिंहद्वार है। उसमें घुस जा, तुझे गुरु मिल जायेगा।' कहकर वह ठठाकर हँस पड़ा।

आशा न थी कि गुरु बिलकुल सामने ही हैं। देहाती लड़के ने अपना डेरा-डण्डा सँभाला और बिना प्रणाम किये तेजी से कदम बढ़ाता हुआ भवन में दाखिल हो गया।

दूसरे बटुक ने पहले से पूछा, 'तुमने अच्छा किया उसे वहाँ भेजकर?' उसके हृदय में खेद था और पाप की भावना।

दूसरा बटुक चुप था। उसने अपने किये पर खिन्न होकर सिर्फ इतना ही कहा, 'आखिर ब्रह्मराक्षस का रहस्य भी तो मालूम हो।'

सिंहद्वार की लाल-लाल बर्रें गूँ-गूँ करती उसे चारों ओर से काटने के लिए दौड़ी, लेकिन ज्योंही उसने उसे पार कर लिया तो सूरज की धूप में चमकने वाली भूरी घास से भरे, विशाल, सूने आँगन के आस-पास चारों ओर उसे बरामदे दिखाई दिये—विशाल, भव्य और सूने जिनकी छतों में फानूस लटक रहे थे। लगता था कि जैसे अभी-अभी उन्हें कोई साफ करके गया हो। लेकिन वहाँ कोई नहीं था। आँगन से दीखने वाली तीसरी मंजिल की छज्जेवाली मुँडेर पर एक बिल्ली सावधानी से चलती हुई दिखाई दे रही थी। उसे एक जीना भी दिखाई दिया, लम्बा-चौड़ा, साफ-सुथरा उसकी सीढ़ियाँ ताजे गोबर से पुती हुई थीं। उसकी महक नाक में घुस रही थी। सीढ़ियों पर उसके चलने की आवाज गूँजती, पर कहीं, कुछ नहीं! वह आगे-आगे चढ़ता-बढ़ता गया। दूसरी मंजिल के छज्जे मिले जो बीच के आँगन के चारों ओर फैले हुए थे। उनमें सफेद चादर लगी गद्दियाँ दूर-दूर तक बिछी हुई थीं। एक ओर मृदंग, तबला, सितार आदि अनेक वाद्य-यन्त्र करीने से रखे हुए थे। रंग-बिरंगे फानूस लटक रहे थे और कहीं अगरबत्तियाँ जल रही थीं।

इतनी प्रबन्ध व्यवस्था के बाद भी उसे कहीं मनुष्य के दर्शन नहीं हुए। और न कोई पैरों की आवाजें सुनाई दीं, सिवाय अपनी पग-ध्वनि के। उसने सोचा शायद ऊपर कोई होगा।

उसने तीसरी मंजिल पर जाकर देखा। फिर वही सफेद-सफेद गद्दियाँ, फिर वही फानूस, फिर वही अगरबत्तियाँ। वही खाली-खालीपन, वही सूनापन, वही विशालता, वही भव्यता और वही मनुष्यहीनता।

अब उससे देहाती के दिल में से आह निकली। यह क्या? यह कहाँ फँस गया, लेकिन इतनी व्यवस्था है तो कहीं कोई और जरूर होगा। इस खयाल से उसका डर कम हुआ और वह बरामदे में से गुजरता हुआ अगले जीने पर चढ़ने लगा।

इन बरामदों में कोई सजावट नहीं थी। सिर्फ दरियाँ बिछी हुई थीं। कुछ तैल-चित्र टँगे थे। खिड़कियाँ खुली हुई थीं जिनमें से सूरज की पीली किरणें आ रही थीं। दूर ही से खिड़की के बाहर जो नजर जाती तो बाहर का हरा-भरा, ऊँचा-नीचा, ताल-तलैयों, पेड़ों-पहाड़ों वाला नज्जारा देखकर पता चलता कि यह मंजिल कितनी ऊँची है और कितनी निर्जन।

अब वह देहाती लड़का भयभीत हो गया। वह विशालता और निर्जनता उसे आतंकित करने लगी। वह डरने लगा। लेकिन वह इतना ऊपर आ गया था कि नीचे देखने ही से आँखों में चक्कर आ जाता। उसने ऊपर देखा तो सिर्फ एक ही मंजिल शेष थी। उसने अगले जीने से ऊपर की मंजिल चढ़ना तय किया।

डण्डा कन्धे पर रखे और गठरी खोंसे वह लड़का धीरे-धीरे अगली मंजिल का जीना चढ़ने लगा। उसके पैरों की आवाज उसी से जाने क्या फुसलाती और उसकी रीढ़ की हड्डी में से सर्द संवेदनाएँ गुजरने लगतीं!

जीना खत्म हुआ तो फिर एक भव्य बरामदा मिला, लिपा-पुता और अगरु-गन्ध से महकता हुआ। सभी ओर मृगासन, व्याघ्रासन बिछे हुए। एक ओर योजनाओं विस्तार-दृश्य देखती, खिड़की के पास देवपूजा में संलग्न-मन मुँदी आँखों वाले ऋषि-मनीषी कश्मीर की कीमती शाल ओढ़े ध्यानस्थ बैठे।

लड़के को हर्ष हुआ। उसने दरवाजे पर मत्था टेका। आनन्द के आँसू आँखों में खिल उठे। उसे स्वर्ग मिल गया।

'ध्यान-मुद्रा' भंग नहीं हुई तो मन-ही-मन माने हुए गुरु को प्रणाम कर लड़का जीने की सर्वोच्च सीढ़ी पर लेट गया। तुरन्त ही उसे नींद आ गयी। वह गहरे सपनों में खो गया।

शरीर और सन्तुष्ट मन ने उसकी इच्छाओं को मूर्त-रूप दिया।... वह विद्वान् बनकर देहात में अपने पिता के पास वापस पहुँच गया है। उनके चरणों को पकड़े, उन्हें अपने आँसुओं से तर कर रहा है और आर्द्र-हृदय होकर कह रहा है, पिताजी! मैं विद्वान् बनकर आ गया, मुझे और सिखाइए। मुझे राह बताइए। पिताजी! पिताजी! और माँ अंचल से अपनी आँखें पोंछती हुई, पुत्र के ज्ञान-गौरव से भरकर, उसे अपने हाथ से खींचती हुई गोद में भर लेती है। साश्रुमुख पिता का वात्सल्य-भरा हाथ उसके शीश पर आशीर्वाद का छत्र बनकर फैला हुआ है. . . .।

वह देहाती लड़का चल पड़ा और देखा कि उस 'तेजस्वी ब्राह्मण' का देदीप्यमान चेहरा, जो अभी-अभी मृदु और कोमल होकर उस पर किरनें बिखेर रहा था, कठोर और अजनबी होता जा रहा है।

ब्राह्मण ने कठोर होकर कहा, 'तुमने यहाँ आने का कैसे साहस किया? यहाँ कैसे आये?'

लड़के ने मत्था टेका, 'भगवन्! मैं मूढ़ हूँ, निरक्षर हूँ, ज्ञानार्जन करने के लिए आया हूँ।'

ब्राह्मण कुछ हँसा। उसकी आवाज धीमी हो गयी किन्तु दृढ़ता वही रही। सूखापन और कठोरता वही।

'तूने निश्चय कर लिया है?'

'जी!'

'नहीं, तुझे निश्चय की आदत नहीं है, एक बार और सोच ले।. . . जा, फिलहाल नहा-धो उस कमरे में, वहाँ जाकर भोजन कर लेट, सोच-विचार! कल मुझसे मिलना।'

दूसरे दिन प्रत्यूष काल में लड़का गुरु से पूर्व जागृत हुआ। नहाया-धोया। गुरु की पूजा की थाली सजायी और आज्ञाकारी शिष्य की भाँति आदेश की प्रतीक्षा करने लगा। उसके शरीर में अब एक नयी चेतना आ गयी थी। नेत्र प्रकाशमान थे।

विशालबाहु पृथु-वक्ष तेजस्वी ललाटवाले अपने गुरु की चर्या देखकर लड़का भावुक-रूप से मुग्ध हो गया था। वह छोटे-से-छोटा होना चाहता था कि जिससे लालची चींटी की

भाँति जमीन पर पड़ा, मिट्टी में मिला, ज्ञान की शक्कर का एक-एक कण साफ देख सके और तुरन्त पकड़ सके!

गुरु ने संशयपूर्ण दृष्टि से देख उससे डपटकर पूछा, 'सोच-विचार लिया?'

'जी!' की डरी हुई आवाज!

कुछ सोचकर गुरु ने कहा, 'नहीं, तुझे निश्चय करने की आदत नहीं है। एक बार पढ़ाई शुरू करने पर तुम बारह वर्ष तक फिर यहाँ से निकल नहीं सकते। सोच-विचार लो। अच्छा, मेरे साथ एक बजे भोजन करना, अलग नहीं!'

और गुरु व्याघ्रासानपर बैठकर पूजा-अर्चा में लीन हो गये। इस प्रकार दो दिन और बीत गये। लड़के ने अपना एक कार्यक्रम बना लिया था, जिसके अनुसार वह काम करता रहा। उसे प्रतीत हुआ कि गुरु उससे सन्तुष्ट है।

एक दिन गुरु ने पूछा, 'तुमने तय कर लिया है कि बारह वर्ष तक तुम इस भवन के बाहर पग नहीं रखोगे?'

नतमस्तक होकर लड़के ने कहा, 'जी!'

गुरु को थोड़ी हँसी आयी, शायद उसकी मूर्खता पर या अपनी मूर्खता पर, कहा नहीं जा सकता। उन्हें लगा कि क्या इस निरे निरक्षर के आँखें नहीं हैं? क्या यहाँ का वातावरण सचमुच अच्छा मालूम होता है? उन्होंने अपने शिष्य के मुख का ध्यान से अवलोकन किया। एक सीधा, भोला-भाला निरक्षर बालमुख! चेहरे पर निष्कपट, निश्छल ज्योति!

अपने चेहरे पर गुरु की गड़ी हुई दृष्टि से किंचित् विचलित होकर शिष्य ने अपना निरक्षर बुद्धिवाला मस्तक और नीचा कर लिया।

गुरु का हृदय पिघला। उन्होंने दिल दहलाने वाली आवाज से, जो काफी धीमी थी, कहा, 'देख! बारह वर्ष के भीतर तू वेद, संगीत, शास्त्र, पुराण, आयुर्वेद, साहित्य, गणित आदि-आदि समस्त शास्त्र और कलाओं में पारंगत हो जावेगा। केवल भवन त्यागकर तुझे बाहर जाने की अनुज्ञा नहीं मिलेगी। ला, वह आसन। वहाँ बैठ।'

और इस प्रकार गुरु ने पूजा-पाठ के स्थान के समीप एक कुशासन पर अपने शिष्य को बैठा, परम्परा के अनुसार पहले शब्द-रूपावली से उसका विद्याध्ययन प्रारम्भ कराया।

गुरु ने मृदुता से कहा, 'बोलो बेटे—'

'रामः, रामौ, रामाः'

और इस बाल-विद्यार्थी की अस्फुट हृदय की वाणी उस भयानक निःसंग, शून्य, निर्जन, वीरान भवन में गूँज-गूँज उठती। सारा भवन गाने लगा।

'रामः रामौ रामाः—प्रथमा!'

धीरे-धीरे उसका अध्ययन 'सिद्धान्तकौमुदी' तक आया और फिर अनेक विद्याओं को आत्मसात् कर, वर्ष एक-के-बाद एक बीतने लगे। नियमित आहार-विहार और संयम के फलस्वरूप विद्यार्थी की देह पुष्ट हो गयी और आँखों में नवीन तारुण्य की चमक प्रस्फुटित हो उठी। लड़का, जो देहाती था, अब गुरु से संस्कृत में वार्तालाप भी करने लगा।

केवल एक ही बात वह आज तक नहीं जान सका। उसने कभी जानने का प्रयत्न नहीं किया। वह यह कि इस भव्य-भवन में गुरु के समीप इस छोटी-सी दुनिया में यदि और कोई व्यक्ति नहीं है तो सारा मामला चलता कैसे है? निश्चित समय पर दोनों गुरु-शिष्य भोजन करते। सुव्यवस्थित रूप से उन्हें सादा सुचारु भोजन मिलता। इस आठवीं मंजिल से उतर सातवीं मंजिल तक उनमें से कोई कभी नहीं गया। दोनों भोजन के समय अनेक विवादग्रस्त प्रश्नों पर चर्चा करते। यहाँ इस आठवीं मंजिल पर एक नयी दुनिया बस गयी।

जब गुरु उसे कोई छन्द सिखलाते और जब विद्यार्थी मन्दाक्रान्ता या शार्दूल विक्रीड़ित गाने लगता तो एकाएक उस भवन में हलके-हलके मृदंग और वीणा बज उठती और वह वीरान, निर्जन, शून्य भवन वह छन्द गा उठता।

एक दिन गुरु ने शिष्य से कहा, 'बेटा। आज से तेरा अध्ययन समाप्त हो गया है। आज ही तुझे घर जाना है। आज बारहवें वर्ष की अन्तिम तिथि है। स्नान-सन्ध्यादि से निवृत्त होकर आओ और अपना अन्तिम पाठ लो।'

पाठ के समय गुरु और शिष्य दोनों उदास थे। दोनों गम्भीर। उनका हृदय भर रहा था। पाठ के अनन्तर यथाविधि भोजन के लिए बैठे।

दूसरे कक्ष में वे भोजन के लिए बैठे थे। गुरु और शिष्य दोनों अपनी अन्तिम बातचीत के लिए स्वयं को तैयार करते हुए कौर मुँह में डालने ही वाले थे कि गुरु ने कहा, बेटे खिचड़ी में घी नहीं डाला है?'

शिष्य उठने ही वाला था कि गुरु ने कहा, 'नहीं, नहीं, उठो मत!' और उन्होंने अपना हाथ इतना बढ़ा दिया कि वह कक्ष के पार जाता हुआ, अन्य कक्ष में प्रवेश कर क्षण के भीतर, घी की चमचमाती लुटिया लेकर शिष्य की खिचड़ी में घी उड़ेलने लगा। शिष्य काँपकर स्तम्भित रह गया। वह गुरु के कोमल वृद्ध मुख को कठोरता से देखने लगा कि यह कौन है? मानव है या दानव? उसने आज तक गुरु के व्यवहार में कोई अप्राकृतिक चमत्कार नहीं देखा था। वह भयभीत, स्तम्भित रह गया। गुरु ने दुःखपूर्ण कोमलता से कहा, 'शिष्य! स्पष्ट कर दूँ कि मैं ब्रह्मराक्षस हूँ किन्तु फिर भी तुम्हारा गुरु हूँ। मुझे तुम्हारा स्नेह चाहिए। अपने मानव-जीवन में मैंने विश्व की समस्त विद्या को मथ डाला किन्तु दुर्भाग्य से कोई योग्य शिष्य न मिल पाया कि जिसे मैं समस्त ज्ञान दे पाता। इसलिए मेरी आत्मा इस संसार में अटकी रह गयी और मैं ब्रह्मराक्षस के रूप में यहाँ विराजमान रहा।

'तुम आये, मैंने तुम्हें बार-बार कहा, लौट जाओ। कदाचित् तुममें ज्ञान के लिए आवश्यक श्रम और संयम न हो किन्तु मैंने तुम्हारी जीवन-गाथा सुनी। विद्या से वैर रखने के कारण, पिता द्वारा अनेक ताड़नाओं के बावजूद तुम गँवार रहे और बाद में माता-पिता द्वारा निकाल दिये जाने पर तुम्हारे व्यथित अहंकार ने तुम्हें ज्ञान-लोक का पथ खोज निकालने की ओर प्रवृत्त किया। मैं प्रवृत्तिवादी हूँ, साधु नहीं। सैकड़ों मील जंगल की बाधाएँ पार कर तुम काशी आये। तुम्हारे चेहरे पर जिज्ञासा का आलोक था। मैंने अज्ञान से तुम्हारी मुक्ति की। तुमने मेरा ज्ञान प्राप्त कर मेरी आत्मा को मुक्ति दिला दी। ज्ञान का पाया हुआ उत्तरदायित्व मैंने पूरा किया। अब मेरा यह उत्तरदायित्व तुम पर आ गया है। जब तक मेरा दिया तुम किसी और को न दोगे तब तक तुम्हारी मुक्ति नहीं।

'शिष्य, आओ, मुझे बिदा दो।'

'अपने पिताजी और माँजी को प्रणाम कहना।'

शिष्य ने साश्रुमुख ज्यों ही चरणों पर मस्तक रखा, आशीर्वाद का अन्तिम कर-स्पर्श पाया और ज्यों ही सिर ऊपर उठाया तो वहाँ से वह ब्रह्मराक्षस तिरोहित हो गया।

वह भयानक वीरान, निर्जन बरामदा सूना था। शिष्य ने ब्रह्मराक्षस गुरु का व्याघ्रासन लिया और उनका सिखाया पाठ मन-ही-मन गुनगुनाते हुए आगे बढ़ गया।

○ ○ ○

अमृता प्रीतम

(जन्म 1919 ई०)

अमृता प्रीतम का जन्म गुजरावाला (पंजाब) में हुआ। आपकी रचनाओं में प्रेम की गहन संवेदना और उद्वेग को स्पष्ट रूप मिलता है। आप स्वयं एक स्त्री होने के कारण स्त्री मन की व्यथा को अपने साहित्य द्वारा अभिव्यक्त करने का बराबर प्रयास करती है।

अमृता प्रीतम की साहित्य सेवा से अब तक करीब पचास पुस्तकें छप चुकी हैं। आप की रचनाओं के कई भाषाओं में अनुवाद किए जा चुके हैं। पत्रकारिता के क्षेत्र में भी आपका कार्य उल्लेखनीय है।

बू

प्रस्तुत कहानी में गुलेरी नामक स्त्री अपने पति के अपार प्रेम के बावजूद निःसंतान होने के कारण परित्यक्त्या होती है और प्राणत्याग कर देती है। प्रेम और विरह व्यथा का बड़ा ही मार्मिक चित्र यहाँ उपस्थित होता है।

10. बू

घोड़ी हिनहिनायी। गुलेरी दौड़कर अन्दर से बाहर आयी। उसने घोड़ी की आवाज पहचान ली थी। वह घोड़ी उसके मायके की थी। उसने घोड़ी की गरदन के साथ अपना सिर टेक दिया। जैसे वह घोड़ी की गरदन न होकर उसके मायके का द्वार हो।

गुलेरी का मायका चम्बे शहर में था। ससुराल का गाँव लक्कड़ मण्डी एवं खजियार के रास्ते में एक ऊँची समतल जगह पर था। खजियार से लगभग एक मील आगे चलकर पहाड़ी का एक ऐसा मोड़ आता था, जहाँ पर खड़े होकर चम्बा शहर बहुत नीची दिखायी देता था। कभी-कभी गुलेरी जब उदास हो जाती तो अपने मानक को साथ लेकर उस मोड़ पर आकर खड़ी हो जाती। चम्बे शहर के मकान उसको एक जगमगाते बिन्दु के समान दिखायी देते, फिर वे बिन्दु उसके मन में एक चमक पैदा कर देते।

मायके वह वर्ष भर में एक बार आश्विन के महीने में जाती थी। हर साल इन दिनों उसके मायके में चुगान का मेला लगता था। माता-पिता उसको लिवाने के लिए आदमी भेज देते थे। सिर्फ़ गुलेरी के ही नहीं, गुलेरी की सभी सहेलियों के मायके अपनी लड़कियों को बुलावा भेज देते थे। सभी सहेलियाँ जब एक-दूसरे के गले मिलतीं तो वर्ष भर के सभी ऋतुओं के दुख-सुख की बातें एक-दूसरी से कह-सुन लेतीं और अपने मायके की गलियों में हिरनियों के समान चौकड़ी भरती स्वच्छन्द घूमतीं।

दो-दो, तीन-तीन बच्चों की माताएँ बड़े बच्चों को उनके दादा-दादी के पास छोड़ आतीं और गोदवाले को मायके पहुँचते ही ननिहालवालों के हवाले कर देतीं। मेले के लिए नये कपड़े सिलवातीं। चुनरियों को रँगवातीं और अबरक लगवातीं। मेले में से काँच की चूड़ियाँ और चाँदी की बालियाँ खरीदतीं। मेले में से खरीदी हुई सुगन्धित साबुन की टिक्कियों को अपने बदन पर ऐसे मलतीं जैसे वह अपने खोये हुए कुंवारे यौवन की गन्ध को फिर सूँघना चाहती हों।

गुलेरी कितने ही दिनों से आज के दिन का इन्तजार कर रही थी। आश्विन का आसमान जब सावन-भादों की बरसात के साथ हाथ-पाँव धोकर निखर बैठता था, गुलेरी

और गुलेरी जैसी ससुराल में बैठी लड़कियाँ पशुओं को दाना-पानी डालतीं, सास-ससुर के लिए दाल-चावल राँधती और हर रोज हाथ-पाँव धोकर बन-सँवर बैठतीं तो मन में सोचने लगतीं आज नहीं तो कल, कल नहीं तो परसों कोई न कोई उनके मायके से उनको लेने के लिए आता होगा।

आज गुलेरी के घर के दरवाजे के सामने उसके मायके की घोड़ी हिनहिनायी तो गुलेरी चंचल हो उठी। घोड़ी लेकर आये नत्थू कामे को गुलेरी ने बैठने के लिए चौकी दी।

गुलेरी को कुछ कहने की जरूरत नहीं थी। उसके मुँह का रंग स्वयं सब कुछ बता रहा था। मानक ने तम्बाकू का एक लम्बा कश खींचा और आँखें बन्द कर लीं, जाने उससे तम्बाकू का नशा न झेला गया या गुलेरी के मुँह का रंग।

"इस बार तो मेला देखने आयेगा न, चाहे दिन का दिन ही सही।" गुलेरी ने मानक के पास बैठकर बड़े दुलार से कहा।

मानक के हाथ काँपे, उसने हाथों में पकड़ी हुई चिलम को एक ओर रख दिया।

"बोलता क्यों नहीं?" गुलेरी ने रोष के साथ कहा।

"गुलेरी, एक बात कहूँ?"

"मैं जानती हूँ, तूझे क्या कहना है। क्या यह बात तुझे कहनी चाहिए? साल भर में एक बार तो मैं मायके जाती हूँ। फिर तू मुझे ऐसे क्यों रोकता है?"

"आगे तो मैंने तुझे कभी भी कुछ नहीं कहा?"

"फिर इस बार क्यों कहता है?"

"इस बार....बस इस बार...." मानक के मुँह से एक लम्बी आह निकल गयी।

"तेरी माँ तो मुझे कुछ कहती नहीं, फिर तू क्यों रोकता है?" गुलेरी की आवाज़ में बच्चों जैसी जिद थी।

"मेरी माँ. . . " मानक ने अपना मुँह बन्द कर लिया। जैसे आगे की बात को उसने दाँतों-तले दबा लिया हो।

दूसरे दिन गुलेरी मुँह अँधेरे बन-सँवरकर तैयार हो गयी। गुलेरी का न कोई बड़ा बच्चा था, न गोद का। न किसी को ससुराल में छोड़ना था, न किसी को मायके ले जाना था। नत्थू ने घोड़ी पर काठी कसी और गुलेरी के सास-ससुर ने उसके सिर पर प्यार दिया।

"चल, दो कोस मैं भी तेरे साथ चलूँगा।" मानक ने कहा। गुलेरी ने खुश होकर मानक की बाँसुरी अपने आँचल में रख ली।

वे खजियार पार कर गये। आगे एक कोस और लाँघ गये। फिर चम्बे की उतराई आरम्भ हो गयी। गुलेरी ने आँचल में से बाँसुरी निकाली और मानक के हाथ में थमा दी।

सामने कठिन उतराई थी। पाँव जैसे फिसल रहे थे। गुलेरी ने मानक का हाथ पकड़ा और रुककर कहने लगी, "बजाता क्यों नहीं बाँसुरी?"

सोच भी जैसे उतराई उतर रही थी। मानक का मन फिसलता जा रहा था। गुलेरी ने जब मानक का हाथ पकड़ा तो मानक चौंककर उसकी ओर देखा।

"बजाता क्यों नहीं बाँसुरी?" गुलेरी ने फिर कहा।

मानक ने बाँसुरी होंठों के साथ लगायी, फूँक मारी पर बाँसुरी में से ऐसा स्वर निकला जैसे बाँसुरी की जबान पर छाले पड़ गये हों।

"गुलेरी, तू मत जा! मैं तुझे फिर कहता हूँ, मत जा। इस बार मत जा।"

मानक ने हाथ की बाँसुरी गुलेरी को वापस कर दी।

"कोई बात भी तो हो? अच्छा तू मेले के दिन चला आइयो। मैं तेरे साथ लौट आऊँगी। पीछे नहीं रहूँगी, सच्च कहती हूँ, पक्की बात।"

मानक ने कुछ न कहा पर उसने गुलेरी के मुँह की ओर ऐसे देखा जैसे वह कहना चाहता हो, 'गुलेरी यह बात पक्की नहीं। यह बहुत कच्ची है।' पर मानक ने कुछ न कहा....जैसे उसको कुछ कहना न आता हो।

गुलेरी और मानक सड़क से थोड़ा-सा हटकर एक पत्थर के साथ अपनी पीठ टेककर खड़े हो गये। नत्थू ने दस कदम आगे बढ़कर घोड़ी खड़ी कर दी थी पर मानक का मन कहीं भी खड़ा नहीं हो रहा था।

मानक का मन घूमता-फिसलता आज से सात वर्ष पीछे तक चला गया। यही दिन थे जब मानक अपने मित्रों के साथ इस सड़क को लाँघता हुआ चौगान का मेला देखने चम्बे गया था। मेले में काँच की चूड़ियों से लेकर गायों-बकरियों तक कुछ न कुछ खरीद और बेच रहे थे। इसी मेले में मानक ने गुलेरी को देखा था और मानक को गुलेरी ने। फिर दोनों ने एक-दूसरे का दिल खरीद लिया था।

वे दोनों अवसर देखकर एक-दूसरे को मिले थे। 'तू तो दुधिया भुट्टे जैसी है।' मानक ने यह कहकर गुलेरी का हाथ पकड़ लिया था।

'पर कच्चे भुट्टे को पशु मुँह मारते हैं।' यह कहकर गुलेरी ने हाथ छुड़ा लिया था और मुसकराते हुए कहा था, 'इनसान तो भुट्टे को भूनकर खाते हैं। यदि साहस है तो मेरे पिता से मेरा रिश्ता माँग ले।'

मानक के दूर-पास के सम्बन्धियों में जब भी किसी का ब्याह होता था तो लड़के वाले मूल्य चुकाते थे।

मानक डर रहा था कि पता नहीं गुलेरी का पिता कितना रुपया माँग ले। पर गुलेरी का बाप खाता-पीता आदमी था। और फिर वह दूर शहर में भी रह आया था। वह अपने मन में यह निश्चय किए हुए था कि वरवालों से बेटी के पैसे नहीं लूँगा। जहाँ पर अच्छा घर और वर मिलेगा वहीं पर अपनी लड़की का ब्याह कर दूँगा। मानक के इस काम में कोई कठिनाई नहीं हुई। दोनों के दिल मिले हुए थे। दोनों ने ब्याह का रास्ता ढूँढ़ लिया था।

"आज तू क्या सोच रहा है? तू मुझे अपने मन की बात क्यों नहीं बताता?" गुलेरी ने मानक के कन्धे को हिलाते हुए कहा।

मानक ने गुलेरी की ओर ऐसे देखा जैसे उसकी जबान पर छाले पड़ गये हों।

घोड़ी हिनहिनायी। गुलेरी को आगे का रास्ता स्मरण हो आया। वह चलने के लिए तैयार हुई और मानक से कहने लगी, "आगे चलकर नीले फूलों का वन आता है। कोई दो मील होगा। तू जानता है न उस वन को पार करने वालों के कान बहरे हो जाते हैं।"

"हाँ" मानक ने धीरे से कहा।

"मुझे ऐसा लग रहा है जैसे हम उस वन में से गुजर रहे हैं। तुझे मेरी कोई बात सुनायी ही नहीं देती है।"

''तू सच कहती है, गुलेरी। मुझे तुम्हारी कोई बात सुनायी नहीं देती और तुझे मेरी कोई बात सुनायी नहीं देती।'' मानक ने एक लम्बी साँस ली।

दोनों ने एक-दूसरे के मुँह की ओर देखा। पर दोनों एक-दूसरे की बात नहीं समझ सके।

''मैं अब जाऊँ? तू वापस चला जा। तू बड़ी दूर आ गया है।'' गुलेरी ने धीरे से कहा।

''तू इतना रास्ता पैदल चलती आयी, घोड़ी पर नहीं बैठी। अब घोड़ी पर बैठ जाना।'' मानक ने उसी प्रकार धीरे से कहा।

''यह ले पकड़ अपनी बाँसुरी।''

''तू अपने साथ ही ले जा।''

''मेले के दिन आकर बजायेगा?'' गुलेरी हँस दी। उसकी आँखों में धूप चमक रही थी।

मानक ने अपना मुँह दूसरी ओर कर लिया। शायद उसकी आँखों में बादल उमड़ आये थे।

गुलेरी ने मायके का रास्ता लिया और मानक लौट आया।

''माँ.... !'' घर पहुँचकर मानक इस तरह खाट पर गिर पड़ा जैसे वह बड़ी मुश्किल से खाट तक पहुँच पाया हो।

''बड़ी देर लगायी। मैं तो सोचती थी शायद तू उसको आखिर तक छोड़ने चला गया है।'' माँ ने कहा।

''नहीं, माँ, आखिर तक नहीं गया। रास्ते के बीच ही छोड़ आया हूँ।'' मानक का गला रुँध गया।

''औरतों की तरह रोता क्यों है? मर्द बन।'' माँ ने रोष में कहा।

मानक के मन में आया कि वह माँ से कहे, 'पर तू तो औरत है, एक बार औरतों की तरह रोती क्यों नहीं?'

मानक को गुलेरी की एक बात स्मरण हो आयी।

'हम नीचे फूलों वाले वन में से गुजर रहे हैं जहाँ पर सभी के कान बहरे हो जाते हैं।' मानक को ऐसे महसूस हुआ कि आज किसी को उसकी बात सुनायी नहीं देती। सारा संसार जैसे नीले फूलों का वह वन है और सभी के कान बहरे हो गये हैं।

सात वर्ष हो गये थे। गुलेरी की अभी तक कोख नहीं हरियायी थी। माँ कहती थी, "अब मैं आठवाँ वर्ष नहीं लगने दूँगी।" माँ ने पाँच सौ रुपया देकर भीतर ही भीतर मानक के दूसरे ब्याह की बात पक्की कर ली थी। वह उस समय के इन्तजार में थी कि जब गुलेरी मायके जायेगी, वह नयी बहू का डोला घर ले आयेगी।

इसके बाद मानक को ऐसे महसूस हुआ जैसे उसके दिल का मांस सो गया था। गुलेरी का प्यार उसके दिल में चुटकी भर रहा था। पर उसके दिल को कुछ महसूस नहीं हो रहा था। नयी बहू की कोख से उत्पन्न होने वाले बच्चे की हँसी उसके दिल को गुदगुदा रही थी, पर उसके दिल को कुछ नहीं हो रहा था। जाने उसके दिल का मांस सो गया था।

सातवें दिन मानक के घर उसकी नयी बहू बैठी हुई थी।

मानक के सभी अंग जाग रहे थे, एक उसके दिल का मांस सोया हुआ था। दिल के सोये हुए मांस को उसके जाग रहे अंग सभी स्थान पर ले गये थे। नयी ससुराल में भी और नयी बहू के बिछौने पर भी।

मानक मुँह अंधेरे अपने खेत में बैठा हुआ तम्बाकू पी रहा था जब मानक का एक पुराना मित्र वहाँ से गुज़रा।

"इतने बड़े सवेरे कहाँ चला है, भवानी?"

भवानी एक मिनट चौंककर ठहर गया। चाहे उसने अपने कन्धे पर एक छोटी-सी गठरी उठायी हुई थी फिर भी धीरे से कहने लगा, "कहीं नहीं।"

"कहीं तो चला है। आ बैठ, तम्बाकू पी ले।" मानक ने आवाज दी।

भवानी बैठ गया और मानक के हाथ से चिलम लेकर पीता हुआ कहने लगा, "चम्बे चला हूँ, आज वहाँ मेला है।"

मेले के शब्द ने मानक के दिल में जाने कैसी सुई चुभो दी, मानक को महसूस हुआ उसके भीतर कहीं पीड़ा हुई थी।

''आज मेला है?'' मानक के मुँह से निकला।

''हर वर्ष आज के दिन ही होता है।'' भवानी ने कहा। फिर मानक की ओर ऐसे देखा जैसे वह यह भी कह रहा हो, 'तू भूल गया है इस मेले को? सात वर्ष हुए जब तू मेले में गया था। मैं भी तो तेरे साथ था। तूने तो इसी मेले में मुहब्बत की थी।'

भवानी ने कहा कुछ नहीं, पर मानक को ऐसे महसूस हुआ कि जैसे उसने सब कुछ सुन लिया था। उसको भवानी पर गुस्सा आ रहा था कि वह सब कुछ क्यों सुन रहा है।

भवानी मानक की चिलम छोड़कर उठ खड़ा हुआ। उसकी पीठ पर लटक रही गठरी में से उसकी बाँसुरी का सिरा बाहर निकला हुआ था। भवानी चलता जा रहा था।

मानक उसकी पीठ को देखता रहा। पीठ पर रखी हुई छोटी-सी गठरी को देखता रहा। गठरी में से निकले हुए बाँसुरी के सिरे को देखता रहा।

'भवानी और भवानी की बाँसुरी मेले जा रहे हैं।' मानक को अपनी बाँसुरी स्मरण हो आयी जब उसने मायके जा रही गुलेरी को अपनी बाँसुरी देते हुए कहा था, 'इसे तू साथ ले जाना' फिर मानक को खयाल आया, 'और मैं?'

मानक का मन आया कि वह भी भवानी के पीछे-पीछे दौड़ पड़े। वह अपनी उस बाँसुरी के पीछे दौड़ पड़े, जो उससे पहले मेले में चली गयी थी।

मानक ने हाथ से चिलम फेंक दी और भवानी के पीछे-पीछे दौड़ पड़ा। फिर मानक की टाँगें काँपने लग पड़ीं। वह वहीं-का-वहीं बैठ गया।

मानक को सारा दिन और सारी रात मेले जा रहे भवानी की पीठ दिखायी देती रही।

दूसरे दिन तीसरे पहर का समय था जब मानक अपने खेत में बैठा हुआ था। उसको मेले में से आते हुए भवानी का मुँह दिखायी दिया।

मानक ने मुँह एक ओर कर लिया। उसने सोचा कि मुझको न तो भवानी का मुँह दिखाई दे और न भवानी की पीठ। इस भवानी को देखकर उसको मेले की याद आ जाती थी और यह मेला उसके सोये हुए दिल के मांस को जगा देता था। और जब वह मांस जाग पड़ता था, उसमें बहुत पीड़ा होती थी।

मानक ने मुँह फेर लिया, पर भवानी चक्कर काटकर भी मानक के सामने आ बैठा। भवानी का मुँह ऐसा था, जैसे किसी ने जल रहे कोयले पर अभी-अभी पानी डाला हो। और उसके ताप का रंग अब लाल न होकर काला हो।

मानक ने डरकर भवानी के मुँह की ओर देखा।

''गुलेरी मर गयी।''

''गुलेरी मर गयी?''

''उसने तुम्हारे विवाह की बात सुनी और मिट्टी का तेल अपने ऊपर डालकर जल मरी।''

''मिट्टी का तेल. . . .'' इसके बाद मानक बोला नहीं।

पहले भवानी डरा। फिर मानक के माँ-बाप डर गये, और फिर मानक की नयी बहू डर गयी कि मानक को पता नहीं क्या हो गया था। वह न किसी के साथ बोलता था और न किसी को पहचानता दीखता था।

कई दिन बीत गये। मानक समय पर रोटी खाता, खेती का काम भी करता और सभी के मुँह की ओर ऐसे देखता जैसे वह किसी को भी न पहचानता हो।

''मैं उसकी औरत काहे की हूँ? मैं तो सिर्फ इसके फेरों की चोर हूँ।'' नयी बहू दिन-रात रोने लगी। यह फेरों की चोरी अगले महीने मानक की नयी बहू की और मानक की माँ की आशा बन गयी। बहू के दिन चढ़ गये थे। माँ ने मानक को अकेले में बैठाकर यह बात सुनायी। पर मानक ने माँ के मुँह की ओर ऐसे देखा जैसे यह बात उसकी समझ में न आयी हो।

मानक को चाहे कुछ समझ में नहीं आया था पर वह बात बहुत बड़ी थी। माँ ने नयी बहू को हौसला दिया कि तू हिम्मत से यह बेला काट ले। जिस दिन मैं तुम्हारा बच्चा मानक की झोली में रखूँगी तो मानक की सभी सुधियाँ पलट आयेंगी। फिर वह वेला भी कट गयी। मानक के घर बेटा पैदा हुआ। माँ ने बालक को नहलाया-धुलाया, कोमल रेशमी कपड़े में लपेटकर मानक की झोली में डाल दिया।

मानक झोली में पड़े हुए बच्चे को देखता रहा, फिर जैसे चीख़ उठा, ''इसको दूर करो, दूर करो! मुझे इसमें मिट्टी के तेल की बू आती है।''

● ● ●

फणीश्वरनाथ रेणु

(जन्म 1921 ई० : मृत्यु 1977 ई०)

फणीश्वरनाथ रेणु का जन्म जिला पूर्णिया बिहार के औराही हिंगना नामक गाँव में हुआ। आप हिंदी कहानी को सर्वथा नया मोड़ देने वाले समर्थ कहानीकार हैं। आपने आँचलिक कहानियों की ऐसी परम्परा का प्रारम्भ किया था कि जिसके फलस्वरूप हिन्दी कथा साहित्य को नई चेतना और नई दृष्टि मिल सकी है। आपने ग्राम्य जीवन के उपेक्षित तथा संत्रास मन में बैठकर उसकी समग्र आंतरिकता को अभिव्यक्त किया है।

फणीश्वरनाथ रेणु ने अपने साहित्यिक जीवन में करीब पचास कहानियाँ लिखी हैं। उनमें तीसरी कसम, रसप्रिया, भित्तिचित्र की मयूरी, आदिम रात्रि की महक, आजाद परिन्दे, नैना नागिन, जड़ाऊ मुखड़ा आदि विशेष प्रसिद्ध हैं। उपन्यास साहित्य तथा अन्य कथा साहित्य की दृष्टि से आपकी मैला आँचल, परती परी कथा, दीर्घतपा, जुलूस, ठुमरी, कितने चौराहे आदि प्रसिद्ध कृतियाँ हैं।

ठेस

प्रस्तुत कहानी में फणीश्वरनाथ रेणु ने एक ग्रामीण कारीगर का चित्रण किया है। जो मुँहजोर होते हुए भी मन का एकदम साफ है।

11. ठेस

खेती-बारी के समय, गाँव के किसान सिरचन की गिनती नहीं करते। लोग उसको बेकार नहीं, बेगार समझते हैं। इसलिए, खेत खलिहान की मजदूरी के लिए कोई नहीं बुलाने जाता है सिरचन को क्या होगा उसको बुलाकर? दूसरे मजदूर खेत पहुँचकर एक-तिहाई काम कर चुकेंगे, तब कहीं सिरचन राम हाथ में खुरपी डुलाता हुआ दिखायी पड़ेगा—पगडण्डी पर तौल-तौलकर पाँव रखता हुआ, धीरे-धीरे। मुफ्त में मजदूरी देनी हो तो और बात है।

. . . . . आज सिरचन को मुफ्तखोर, कामचोर या चटोर कह ले कोई। एक समय था, जबकि उसकी मड़ैया के पास बड़े-बड़े बाबू लोगों की सवारियाँ बँधी रहती थीं। उसे लोग पूछते ही नहीं थे, उसकी खुशामद भी करते थे।. . . . . "अरे सिरचन भाई! अब तो तुम्हारे ही हाथ में यह कारीगरी रह गयी है सारे इलाके में। एक दिन भी समय निकालकर चलो। कल बड़े भैया की चिट्ठी आयी है शहर से — सिरचन से एक जोड़ा चिक बनवाकर भेज दो।"

मुझे याद है. . . . मेरी माँ जब कभी सिरचन को बुलाने के लिए कहती, "मैं पहले ही पूछ लेता, भोग क्या-क्या लगेगा?"

माँ हँसकर कहती, "जा-जा, बेचारा मेरे काम में पूजा-भोग की बात नहीं उठाता कभी।"

ब्राह्मण टोली के पंचानन्द चौधरी के छोटे लड़के को एक बार मेरे सामने ही बेपानी कर दिया था सिरचन ने—"तुम्हारी भाभी नाखून से खाँटकर तरकारी परोसती है। और इमली का रस डालकर कढ़ी तो हम कहार-कुम्हारों की घरवाली बनाती है। तुम्हारी भाभी ने कहाँ से बनायी।"

इसलिए सिरचन को बुलाने के पहले माँ हुलसकर कहती, "आओ सिरचन! आज नैनू मथ रही थी, तो तुम्हारी याद आयी। घी की (खखोरन) डाड़ी के साथ चूड़ा तुमको

बहुत पसन्द है न! और बड़ी बेटी ने ससुराल से संवाद भेजा है, मोथी की शीतलपाटी के लिए।''

सिरचन अपनी पनियायी जीभ को सम्हालकर हँसता—''घी की सौंधी सुगन्ध सूँघकर ही आ रहा हूँ, काकी! नहीं तो इस शादी-ब्याह के मौसम में दम मारने की भी छुट्टी कहाँ मिलती है?''

सिरचन जाति का कारीगर है। मैंने घण्टों बैठकर उसके काम करने के ढंग को देखा है। एक-एक मोथी और पटेर को हाथ में लेकर बड़े जतन से उसकी कुच्ची बनाता। फिर कुच्चियों को रंगने से लेकर सुतली सुलझाने में पूरा दिन समाप्त। ''काम करते समय उसकी तन्मयता में जरा भी बाधा पड़ी कि गेहुँअन साँप की तरह फुफकार उठता—फिर किसी दूसरे से करवा लीजिये काम! सिरचन मुँहजोर है, कामजोर नहीं।''

बिना मजदूरी के पेट-भर भात पर काम करने वाला कारीगर। दूध में कोई मिठाई न मिले कोई बात नहीं, किन्तु बात में जरा भी झाल वह नहीं बरदाश्त कर सकता।

सिरचन को लोग चटोर भी समझते हैं. . . .तली-बघारी हुई तरकारी, दही की कढ़ी, मलाई वाला दूध, इन सबका प्रबन्ध पहले कर लो, तब सिरचन को बुलाओ, दुम हिलाता हुआ हाजिर हो जायेगा। खाने-पीने में चिकनाई की कमी हुई कि काम की सारी चिकनाई खत्म! काम अधूरा रखकर उठ खड़ा होगा—''आज तो अब अधकपाली दर्द से माथा टनटना रहा है। थोड़ा सा रह गया है, किसी दिन आकर पूराकर दूँगा।'' किसी दिन माने कभी नहीं।

मोथी घास और पटेर की रंगीन शीतलपाटी, बाँस की तीलियों की झिलमिलाती चिक सतरंगे डोर के मोढ़े, भूसी चुन्नी रखने के लिए मूँज की रस्सी के बड़े-बड़े झाले, हलवाहों के लिए ताल के सूखे पत्तों की छतरी टोपी तथा इसी तरह के बहुत से काम हैं, जिन्हें सिरचन के सिवा गाँव में और कोई नहीं जानता। वह दूसरी बात है कि अब गाँव में ऐसे कार्यों को बेकाम का काम समझते हैं लोग—बेकाम का काम, जिसकी मजदूरी में अनाज या पैसे देने की कोई जरूरत नहीं। पेट भर खिला दो, काम पूरा होने पर एकाध पुराना-धुराना कपड़ा देकर बिदा करो। वह कुछ भी नहीं बोलेगा।

कुछ भी नहीं बोलेगा, ऐसी बात नहीं। सिरचन को बुलाने वाले जानते हैं, सिरचन बात करने में भी कारीगर है। महाजन टोले के मज्जू महाजन की बेटी सिरचन की बात सुनकर तिलमिला उठी थी—"ठहरो! मैं माँ से जाकर कहती हूँ। इतनी बड़ी बात।"

"बड़ी बात ही है बिटिया ! बड़े लोगों की बस बात ही बड़ी होती है। नहीं तो दो-दो पटेर की पाटियों का काम सिर्फ खेसारी का सत्तू खिलाकर कोई करवाये भला? यह तुम्हारी माँ ही कर सकती है बबुनी।" सिरचन ने मुस्कराकर जवाब दिया था।

उस बार मेरी सबसे छोटी बहन की विदाई होने वाली थी। पहली बार ससुराल जा रही थी मानू। मानू के दुल्हे ने पहले ही बड़ी भाभी को ख़त लिखकर चेतावनी दे दी, "मानू के साथ मिठाई की पतीली न आये, कोई बात नहीं। तीन जोड़ी फैशनेबल चिक और पटेर की दो शीतल-पाटियों के बिना आयेगी मानू तो..... ।" भाभी ने हँसकर कहा, बैरंग वापस। इसलिए, एक सप्ताह पहले से ही सिरचन को बुलाकर काम पर तैनात करवा दिया था माँ ने—"देख सिरचन! इस बार नयी धोती दूँगी, असली मोहर छापवाली धोती। मन लगाकर ऐसा काम करो कि देखने वाले देखते ही रह जायँ।"

पान-जैसी पतली छुरी से बाँस की तीलियों और कमानियों को चिकनाता हुआ सिरचन अपने काम में लग गया। रंगीन सुतलियों में झब्बे डालकर वह बुनने बैठा। डेढ़ हाथ की बिनाई देखकर ही लोग समझ गये कि इस बार एकदम नये फैशन की चीज बन रही है, जो पहले कभी नहीं बनी। मझली भाभी से नहीं रहा गया, परदे की आड़ से बोली, "पहले ऐसा जानती कि मोहर छाप वाली धोती देने से ही अच्छी चीज बनती है तो भैया को खबर भेज देती।"

काम में व्यस्त सिरचन के कानों में बात पड़ गयी। बोला, "मोहर छाप वाली धोती के साथ रेशमी कुरता देने पर भी ऐसी चीज नहीं बनती बहुरिया।"

"मानू दीदी काकी की सबसे छोटी बेटी है. . . . . . .मानू दीदी का दुल्हा अफसर आदमी है।"

मँझली भाभी का मुँह लटक गया। मेरी चाची ने फुसफुसाकर कहा, "किससे बात करती है बहू? मोहर छाप वाली धोती नहीं, मूँगिया लड्डू। बेटी की बिदाई के समय रोज मिठाई खाने को मिलेगी। देखती है न।"

दूसरे दिन चिक की पहली पाँति में सात तारे जगमगा उठे, सात रंग के। सतभैया तारा। सिरचन जब काम में मगन रहता है तो उसकी जीभ जरा बाहर निकल आती है, होंठ पर अपने काम में मगन सिरचन को खाने-पीने की सुध नहीं रहती। चिक में सुतली के फन्दे डालकर उसने पास पड़े सूप पर निगाह डाली—चिउरा और गुड़ का एक सूखा ढेला।

मैंने लक्ष्य किया, सिरचन की नाक के पास दो रेखाएँ उभर आयीं। मैं दौड़कर माँ के पास गया—"माँ, आज सिरचन को कलेवा किसने दिया है, सिर्फ चिउरा और गुड़।"

माँ रसोई घर के अन्दर पकवान आदि बनाने में व्यस्त थी। बोली, "मैं अकेली कहाँ-कहाँ क्या-क्या देखूँ। .....अरी मँझली, सिरचन को बुँदिया क्यों नहीं देती?"

"बुँदिया मैं नहीं खाता, काकी।" सिरचन के मुँह में चिउरा भरा हुआ था, गुड़ का ढेला सूप में एक किनारे को पड़ा रहा, अछूता।

माँ की बोली सुनते ही मँझली भाभी की भौंहे तन गयीं। मुट्ठी भर बुँदिया सूप में फेंककर चली गयी।

सिरचन ने पानी पीकर कहा, "मँझली बहूरानी अपने मौके से आयी हुई मिठाई भी इसी तरह हाथ खोलकर बाँटती हैं क्या?"

बस मँझली भाभी अपने कमरे में बैठकर रोने लगी। चाची ने माँ के पास जाकर लगाया—"छोटी जाति के आदमी का मुँह भी छोटा होता है, मुँह लगाने से सिर पर चढ़ेगा ही. . . .किसी की नैहर-ससुराल की बात क्यों करेगा वह?"

मँझली भाभी माँ की दुलारी बहू है। माँ तमतमाकर बाहर आयीं. . . ."सिरचन तुम काम करने आये हो, अपना काम करो बहुओं से बतकुट्टी करने की क्या जरूरत? जिस चीज़ की ज़रूरत हो मुझसे कहो।"

सिरचन का मुँह लाल हो गया। उसने कोई जवाब नहीं दिया। बाँस में टँगे हुए अधूरे चिक में फन्दे डालने लगा।

मानू पान सजाकर बाहर बैठक खाने में भेज रही थी। चुपके से पान का एक बीड़ा सिरचन को देती हुई बोली, इधर-उधर देखकर—"सिरचन दादा, कामकाज का घर। पाँच तरह के लोग पाँच किस्म की बात करेंगे। तुम किसी की बात पर कान न दो।"

सिरचन ने मुस्कराकर पान का बीड़ा मुँह में लिया। चाची अपने कमरे से निकल रही थीं। सिरचन को पान खाते देखकर अवाक् हो गयी। सिरचन ने चाची को अपनी ओर घूरते देखकर कहा, ''छोटी चाची जरा अपनी डिबिया का गमकौआ ज़र्दा तो खिलाना। बहुत दिन हुए. . . .।''

चाची कई कारणों से जली-भुनी रहती थी, सिरचन से। गुस्सा उतारने का ऐसा मौका फिर नहीं मिल सकता। झनकती हुई बोली, ''मसखरी करता है? तुम्हारी बढ़ी हुई जीभ में आग लगे। घर में भी पान और गमकौआ ज़र्दा खाते हो?. . . .चटोर कहीं के।'' मेरा कलेजा धड़क उठा. . . .यत्परो नास्ति।

बस, सिरचन की उँगलियों में सुतली के फँदे पड़ गये। मानों, कुछ देर तक वह चुपचाप बैठा पान को मुँह में घुलाता रहा। फिर अचानक उठकर पिछवाड़े पीक थूक आया। अपनी छुरी, हँसिया वगैरह समेट. . . .सम्हालकर झोले में रखे। टँगी हुई अधूरी चिक पर एक निगाह डाली और हनहनाता हुआ आँगन से बाहर निकल गया था।

चाची बड़बड़ायी—''अरे बाप रे बाप इतनी तेजी! कोई मुफ्त में तो काम नहीं करता। आठ रुपये में मोहर छापवाली धोती आती है।. . . .इस मुँहझौंसे के न मुँह में लगाम है, न आँख में शील। पैसा खर्च करने पर सैकड़ों चिकें मिलेंगी। बाँतरटोली की औरतें सिर पर गट्ठर लेकर गली-गली मारी फिरती हैं।''

मानू कुछ नहीं बोली। चुपचाप अधूरी चिक को देखती रही।. . . .सातों तारे मन्द पड़ गये।

माँ बोली, ''जाने दे बेटी। जी छोटा मत कर, मानू। मेले से खरीद कर भेज दूँगी।''

मानू को याद आई, विवाह में सिरचन के हाथ की शीतल पाटी दी थी माँ ने। ससुराल वालों ने जाने कितनी बार खोल कर दिखलाया था पटना और कलकत्ता के मेहमानों को। वह उठकर बड़ी भाभी के कमरे में चली गयी।

मैं सिरचन को मनाने गया। देखा एक फटी हुई शीतल पाटी पर लेट कर वह कुछ सोच रहा है। मुझे देखते ही बोला, ''बबुआजी! अब नहीं। कान पकड़ता हूँ, अब नहीं।. . . .मोहर छाप वाली धोती लेकर क्या करूँगा? कौन पहनेगा?. . . . ससुरी खुद मरी, बेटे-बेटियों को ले गयी अपने साथ। बबुआजी, मेरी घर वाली जिन्दा रहती तो मैं ऐसी दुर्दशा भोगता? यह शीतल पाटी उसी की बुनी हुई है। इस शीतल पाटी को छू कर कहता हूँ, अब

यह काम नहीं करूँगा।. . . .गाँव भर में तुम्हारी हवेली में मेरी कदर होती थी।. . . .अब क्या?'' मैं चुपचाप वापस लौट आया। समझ गया, कलाकार के दिल में ठेस लगी है। वह नहीं आ सकता।

बड़ी भाभी अधूरी चिक में रंगीन छींट का झालर लगाने लगी—''यह भी बेजा नहीं दिखाई पड़ता, क्यों मानू?''

मानू कुछ नहीं बोली।. . . . बेचारी! किन्तु, मैं चुप नहीं रह सका—''चाची और मँझली भाभी की नजर न लग जाए इसमें भी।'' मानू को ससुराल पहुँचाने मैं ही जा रहा था।

स्टेशन पर सामान मिलाते समय देखा, मानू बड़े जतन से अधूरी चिक को मोड़कर लिए जा रही है अपने साथ। मन-ही-मन सिरचन पर गुस्सा ही आया। चाची के सुर-में-सुर मिलाकर कोसने को जी हुआ. . . . कामचोर, चटोर!

गाड़ी आयी। सामान चढ़ाकर मैं दरवाजा बन्द कर रहा था कि प्लेटफार्म पर दौड़ते हुए सिरचन पर नजर पड़ी। ''बबुआजी!'' उसने दरवाजे के पास आकर पुकारा।

''क्या है?'' मैंने खिड़की से गरदन निकालकर झिड़की के स्वर में कहा। सिरचन ने पीठ पर लदे हुए बोझ को उतार कर मेरी ओर देखा—''दौड़ता आया हूँ।...दरवाजा खोलिए! मानू दीदी कहाँ हैं? एक बार देखूँ।''

मैंने दरवाजा खोल दिया।

''सिरचन दादा।'' मानू इतना ही बोल सकी।

खिड़की के पास खड़े होकर सिरचन ने हकलाते हुए कहा, ''यह मेरी ओर से है। सब चीज़ है! शीतल पाटी, चिक और एक जोड़ी आसनी कुश की।'' गाड़ी चल पड़ी।

मानू मोहर छाप वाली धोती का दाम निकालकर देने लगी। सिरचन ने जीभ को दाँत से काटकर, दोनों हाथ जोड़ दिये।

मानू फूट-फूट कर रो रही थी। मैं बण्डल को खोलकर देखने लगा—ऐसी कारीगरी, ऐसी बारीकी, रंगीन सुतलियों के फन्दों का ऐसा काम, पहली बार देख रहा था।

● ● ●

धर्मवीर भारती

(जन्म 1926 ई० : मृत्यु 1996 ई०)

जीवन के प्रति स्वच्छंद दृष्टि अपनाने वाले प्रयोगवादी काव्यधारा के प्रमुख कवि तथा 'धर्मयुग' पत्रिका के सम्पादक धर्मवीर भारती का जन्म प्रयाग में हुआ। आप कविता, नाटक, उपन्यास, कहानी, निबन्ध तथा सम्पादन आदि क्षेत्रों में पूर्ण रूप से सफल रहे हैं। आपने अपने साहित्य में अपने व्यक्तिगत जीवन की गहराइयों में प्रवेश कर उसके आंतरिक सत्य को पकड़ने का प्रयास किया है।

धर्मवीर भारती की साहित्य साधना में ठंडा लोहा, अंधा युग, कनुप्रिया, सात वर्ष, गीत आदि काव्यकृतियाँ मिलती हैं। उपन्यास के विषय में उनके दो ही उपन्यास मिलते हैं। 'गुनाहों का देवता' और 'सूरज का सातवाँ घोड़ा'। उनकी अनेक कहानियाँ प्रसिद्ध हैं तथापि आपकी सबसे बड़ी उपलब्धि है 'धर्मयुग' पत्रिका का सम्पादन।

गुलकी बन्नो

प्रस्तुत कहानी में धर्मवीर भारती जी ने पति द्वारा निर्वासित कूबड़ी स्त्री का चित्रण किया है जो समाज से अपने पति से यहां तक की छोटे-छोटे बच्चों से भी सतायी हुई है। मानवीय संवेदना के प्रति प्रश्नचिह्न लगाते हुए बड़े ही करुणाप्रद प्रसंगों के सहारे हृदयस्पर्शी कहानी इसे कहा जा सकता है।

12. गुलकी बन्नो

"ऐ मर कलमुँहे!" अकस्मात् घेघा बुआ ने कूड़ा फेंकने के लिए दरवाजा खोला और चौतरे पर बैठे मिरवा को गाते हुए देखकर कहा, "तोरे पेट में फोनोगिराफ़ उलियान बा का, जौन भिनसार भवा कि तान तौड़े लाग? राम जानै, रात के कैसन एकरा दीदा लागत है।" मारे डर के कि कहीं घेघा बुआ सारा कूड़ा उसी के सर पर न फेंक दें, मिरवा थोड़ा खसक गया और ज्यों ही घेघा बुआ अन्दर गयीं कि फिर चौतरे की सीढ़ी पर बैठ, पैर झुलाते हुए मिरवा ने उलटा-सुलटा गाना शुरू किया, "तुमे बछ याद कलते अम छनम तेली कछम!" मिरवा की आवाज सुनकर जाने कहाँ से झबरी कुतिया भी कान-पूँछ झटकारते आ गयी और नीचे सड़क पर बैठकर मिरवा का गाना बिल्कुल उसी अन्दाज में सुनने लगी, जैसे हिज मास्टर्स वायस के रिकार्ड पर तस्वीर बनी होती हैं।

अभी सारी गली में सन्नाटा था। सबसे पहले मिरवा (असली नाम मिहिरलाल) जागता था और आँख मलते-मलते घेघा बुआ के चौतरे पर आ बैठता था। उसके बाद झबरी कुतिया, फिर मिरवा की छोटी बहन मटकी और उसके बाद एक-एक कर गली के तमाम बच्चे—खोंचेवाली का लड़का मेवा, ड्राइवर साहब की लड़की निरमल, मनीजर साहब के मुन्ना बाबू—सभी आ जुटते थे। जब से गुलरी ने घेघा बुआ के चौतरे पर तरकारियों की दूकान रखी थी, तब से यह जमावड़ा वहाँ होने लगा था। उसके पहले बच्चे हकीमजी के चौतरे पर खेलते थे। धूप निकलते-निकलते गुलकी सट्टी से तरकारियाँ खरीदकर अपनी कुबड़ी पीठ पर लादे, डण्डा टेकती आती और अपनी दूकान फैला देती। मूरी, नीबू, कद्दू, लौकी, घिया-बण्डा, कभी-कभी सस्ते फल। मिरवा और मटकी जानकी उस्ताद के बच्चे थे, जो एक भयंकर रोग में गल-गलकर मरे थे और दोनों बच्चे भी विकलांग,विक्षिप्त और रोगग्रस्त पैदा हुए थे। सिवा झबरी कुतिया के और कोई उनके पास नहीं बैठता था और सिवा गुलकी के कोई उन्हें अपनी देहरी या दूकान पर चढ़ने नहीं देता था।

आज भी गुलकी को आते देखकर सबसे पहले मिरवा गाना छोड़कर बोला, "छलाम गुलकी!" और मटकी अपने बढ़े हुए तिल्ली वाले पेट पर से खिसकता हुआ जाँघिया

सम्हालते हुए बोली, ''एक ठो मूली दै देव! एक गुलकी!'' गुलकी पता नहीं किस बात से खीझी हुई थी कि उसने मटकी को झिड़क दिया और अपनी दुकान लगाने लगी। झबरी भी पास गयी कि गुलकी ने डण्डा उठाया। दूकान लगाकर गुलकी अपनी कुबड़ी पीठ दुहराकर बैठ गयी और जाने किसे बुड़बुड़ाकर गालियाँ देने लगी। मटकी एक क्षण चुपचाप खड़ी रही, फिर उसने रट लगाना शुरू किया, ''एक मूरी! ए गुलकी! एक'' गुलकी ने फिर झिड़का तो चुप हो गयी और अलग हटकर लोलुप नेत्रों से सफेद धुली हुई मूलियों की ओर देखने लगी। इस बार वह बोली नहीं। चुपचाप उन मूलियों की ओर हाथ बढ़ाया ही था कि गुलकी चीखी, ''हाथ हटाओ। छूना मत। कोढ़िन, कहीं खाने-पीने की चीज़ देखी कि जोंक की तरह़ चिपक गयी, चल उधर!'' मटकी पहले तो पीछे हटी, पर फिर उसकी तृष्णा ऐसी अदम्य हो गयी कि उसने हाथ बढ़ाकर एक मूली खींची। गुलकी का मुँह तमतमा उठा और उसने बाँस की खपच्ची उठाकर उसके हाथ पर चट से मारी! मूली नीचे जा गिरी और ''हाय! हाय! हाय'' कर दोनों हाथ झटकते हुए मटकी पाँव पटक-पटककर रोने लगी। ''जाओ, अपने घर रोओ। हमारी दूकान पर मरने को गली भर के बच्चे हैं।'' गुलकी चीखी। ''दूकान दैके हम बिपता मोल लै लिया। छन-भर पूजा-भजन में भी कचरधाँव मची रहती है।'' अन्दर से घेघा बुआ ने स्वर मिलाया। खासा हंगामा मच गया कि इतने में झबरी भी खड़ी हो गयी और लगी उदात्त स्वर में भूँकने। 'लेफ्ट राइट! लेफ्ट राइट!' चौराहे पर तीन-चार बच्चों का जलूस चला आ रहा था। आगे-आगे दर्जा 'ब' में पढ़ने वाले मुन्ना बाबू नीम की सण्टी को झण्डे की तरह थामे जलूस का नेतृत्व कर रहे थे, पीछे थें मेवा और निरमल। जलूस आकर दूकान के सामने रुक गया। गुलकी सतर्क हो गयी। दुश्मन की ताकत बढ़ गयी थी।

मटकी सिसकते-सिसकते बोली, ''हमके गुलकी मारिस है। हाय! हाय! हमके नरिया में ढकेल दिहिस। अरे बार रे!'' निरमल, मेवा, मुन्ना सब पास आकर उसकी चोट देखने लगे। फिर मुन्ना ने ढकेल कर सबको पीछे हटा दिया और सण्टी लेकर तनकर खड़े हो गये, ''किसने मारा है इसे?''

''हम मारा है!'' कुबड़ी गुलकी ने बड़े कष्ट से खड़े होकर कहा, ''क्या करौगे? हमें मारौगे!'' ''मारैंगे क्यों नहीं?'' मुन्ना बाबू ने अकड़कर कहा, गुलकी इसका कुछ जवाब देती, कि बच्चे पास घिर आये। मटकी ने जीभ निकालकर मुँह बिराया। मेवा ने पीछे जाकर

कहा, "ए कुबड़ी, ए कुबड़ी, अपना कूबड़ दिखाओ!" और एक मुट्ठी धूल उसकी पीठ पर छोड़कर भागा। गुलकी का मुँह तमतमा आया और रुँधे गले से कराहते हुए उसने पता नहीं क्या कहा, किन्तु उसके चेहरे पर भय की छाया बहुत गहरी हो गयी थी। बच्चे सब एक-एक मुट्ठी धूल लेकर शोर मचाते हुए दौड़े, कि अकस्मात घेघा बुआ का स्वर सुनायी पड़ा, "ए मुन्ना बाबू, जात हौ कि अबहिन बहनजी का बुलवाय के दुइ, चार कनेठी दिलवाई!" "जाते तो हैं!" मुन्ना ने अकड़ते हुए कहा, "ऐ मिरवा, बिगुल बजाओ।" मिरवा ने दोनों हाथ मुँह पर रखकर कहा—धुतु धुतु धू। जलूस चल पड़ा और कप्तान ने नारा लगाया—

अपने देश में अपना राज!
गुलकी की दूकान बाईकाट!

नारा लगाते हुए जलूस गली में मुड़ गया। कुबड़ी ने आँसू पोंछे, तरकारी पर से धूल झाड़ी और साग पर पानी के छींटे देने लगी।

गुलकी की उम्र ज्यादा नहीं थी। यही हद से हद 25-26। पर चेहरे पर झुर्रियाँ आने लगी थीं और कमर के पास से वह इस तरह दोहरी हो गयी थी, जैसे 80 वर्ष की बुढ़िया हो। बच्चों ने जब पहली बार उसे मुहल्ले में देखा तो उन्हें ताज्जुब भी हुआ और थोड़ा भय भी। कहाँ से आयी? कैसे आ गयी? पहले कहाँ थी? उसका उन्हें कुछ अनुमान नहीं था। निरमल ने जरूर अपनी माँ को उसके पिता ड्राइवर से रात को कहते हुए सुना, "यह मुसीबत और खड़ी हो गयी। मरद ने निकाल दिया तो हम थोड़े ही यह ढोल गले बाँधेंगे। बाप अलग हम लोगों का रुपया खा गया। सुना, चल बसा तो कहीं मकान हम लोग न दखल कर लें तो मरद को छोड़कर चली आयी। खबरदार जो चाभी दी तुमने।"

"क्या छोटेपन की बात करती हो रुपया उसके बाप ने ले लिया तो क्या हम उसका मकान मार- लेंगे ? चाभी हमने दे दी है । दस-पाँच दिन का नाजपानी भेज दो उसके यहाँ।"

"हाँ-हाँ, सारा घर उठाके भेज देव। सुन रही हो घेघा बुआ!"

"तो का भवा बहू, अरे निरमल के बाबू से तो एकरे बाप की दाँतकाटी रही।" घेघा बुआ की आवाज़ आयी, "बेचारी बाप की अकेली सन्तान रही। एही के बियाह में

मटियामेट हुई गवा। पर ऐसे कसाई के हाथ में दिहिस कि पाँचै बरस में कूबड़ निकल आवा।''

''साला यहाँ आवे तो हण्टर से खबर लूँ मैं।'' ड्राइवर साहब बोले, ''पाँच बरस बाद बाल-बच्चा हुआ। अब मरा हुआ बच्चा पैदा हुआ तो उसमें इसका क्या कसूर! साले ने सीढ़ी से ढकेल दिया। जिन्दगी-भर के लिए हड्डी खराब हो गयी न। अब कैसे गुजारा हो उसका?''

''बेटवा एको दुकान खुलवाय देव। हमारा चौतरा खाली पड़ा है। यही रुपया दुइ रुपया किरावा दै देवा करै, दिन-भर अपना सौदा लगाय ले। हम का मना करित है? एत्ता बड़ा चौतरा मुहल्लेवालन के काम न आयी तो का हम छाती पर धै लै जाब! पर हाँ, मुला रुपया दै देवा करै।''

दूसरे दिन यह सनसनीखेज खबर बच्चों में फैल गयी। वैसे तो हकीमजी का चबूतरा बड़ा था, पर वह कच्चा था, उस पर छाजन नहीं थी। बुआ का चौतरा लम्बा था, उस पर पत्थर जड़े थे। लकड़ी के खम्भे थे। उस पर टीन छायी थी। कई खेलों की सुविधा थी। खम्भों के पीछे किल-किल काँटे की लकीरें खींची जा सकती थीं। एक टाँग से उचक-उचककर बच्चे चिबिड्डी खेल सकते थे। पत्थर पर लकड़ी का पीढ़ा रखकर नीचे से मुड़ा हुआ तार घुमाकर रेलगाड़ी चला सकते थे। जब गुलकी ने अपनी दुकान के लिए चबूतरे के खम्भों में बाँस बाँधे तो बच्चों को लगा कि उनके साम्राज्य में किसी अज्ञात शत्रु ने आकर किले बन्दी कर ली है। वे सहमे हुए से कुबड़ी गुलकी को देखा करते थे। निरमल ही उसकी एकमात्र संवाददाता थी और निरमल का एकमात्र विश्वस्त सूत्र था उसकी माँ। उससे जो सुना था, उसके आधार पर निरमल ने सब को बताया था कि यह चोर है। इसका बाप 100 रुपया चुराकर भाग गया। यह भी उसके घर का सारा रुपया चुराने आयी है। ''रुपया चुरायेगी तो यह भी मर जायेगी।'' मुन्ना ने कहा, ''भगवान सबको दण्ड देता है।'' निरमल बोली, ''ससुराल में भी रुपया चुरायी होगी।'' मेवा बोला, ''अरे कूबड़ थोड़े है। ओही रुपया बाँधे है पीठ पर। मनसेधू का रुपया है।'' ''सचमुच?'' निरमल ने अविश्वास से कहा। ''और नहीं क्या। कूबड़ थोड़े है। है तो दिखावै!'' मुन्ना द्वारा उत्साहित होकर मेवा पूछने ही जा रहा था कि देखा साबुनवाली सत्ती खड़ी बात कर रही है गलकी से—कह रही, ''अच्छा किया तमने! मेहनत से दूकान करो। अब कभी थूकने

भी न जाना उसके यहाँ। हरामजादा, दूसरी औरत कर ले, चाहे दस और कर ले। सबका खून उसी के मत्थे चढ़ेगा। यहाँ कभी आवे तो कहलाना मुझसे। इसी चाकू से दोनों आँखें निकाल लूँगी।''

बच्चे डरकर पीछे हट गये। चलते-चलते सत्ती बोली, ''कभी रुपये पैसे की जरूरत हो तो बताना बहिन!''

कुछ दिन बच्चे डरे रहे। पर अकस्मात् उन्हें यह सूझा कि सत्ती को यह कुबड़ी डराने के लिए बुलाती है। इसने उनके गुस्से में घी का काम किया। पर कर क्या सकते थे। अन्त में उन्होंने एक तरीका ईजाद किया। वे एक बुढ़िया का खेल खेलते थे। उसको उन्होंने संशोधित किया। मटकी को लैमजूस देने का लालच देकर कुबड़ी बनाया गया। वह उसी तरह पीठ दोहरी करके चलने लगी। बच्चों ने सवाल-जवाब शुरू किये—

''कुबड़ी कुबड़ी का हेराना?''

''सुई हिरानी।''

''सुई लैके का करबे?''

''कन्था सीबै!''

''कन्था सीके का करबे?''

''लकड़ी लाबै।''

''लकड़ी लाय के का करबे?''

''भात पकइबै!''

''भात पकाय के का करबे?''

''भात खाबै!''

''भात के बदले लात खाबे?''

और इसके पहले कि कुबड़ी बनी हुई मटकी कुछ कह सके, वे उसे जोर से लात मारते और मटकी मुँह के बल गिर पड़ती, उसकी कोहनियाँ और घुटने छिल जाते, आँख में आँसू आ जाते और होंठ दबाकर वह रुलाई रोती, बच्चे खुशी से चिल्लाते, ''मार डाला कुबड़ी को। मार डाला कुबड़ी को।'' गुलकी यह सब देखती और मुँह फेर लेती।

एक दिन जब इसी प्रकार मटकी को कुबड़ी बनाकर गुलकी की दुकान के सामने ले गये तो इसके पहले कि मटकी जवाब दे, उन्होंने अनचित्त में उसे इतनी जोर से ढकेल दिया कि वह कुहनी भी न टेक सकी और सीधे मुँह के बल गिरी। नाक, होंठ और भौंह खून से लथपथ हो गये। वह 'हाय! हाय' कर इस बुरी तरह चीखी कि लड़के 'कुबड़ी मर गयी!' चिल्लाते हुए भी सहम गये और हतप्रभ हो गये। अकस्मात् उन्होंने देखा कि गुलकी उठी। वे जान छोड़कर भागे। पर गुलकी उठकर आयी, मटकी को गोद में लेकर पानी से उसका मुँह धोने लगी और धोती से खून पोंछने लगी। बच्चों ने पता नहीं क्या समझा, कि वह मटकी को मार रही है, या क्या कर रही है कि वे अकस्मात् उस पर टूट पड़े। गुलकी की चीखें सुनकर मुहल्ले के लोग आये तो उन्होंने देखा कि गुलकी के बाल बिखरे हैं, दाँत से खून बह रहा है, अध-उघारी चबूतरे के नीचे पड़ी है, और सारी तरकारी सड़क पर बिखरी है। घेघा बुआ ने उसे उठाया, धोती ठीक की और बिगड़कर बोली, "औकात रत्ती भर नै और तेहा पौवा भर। आपन बखत देख के चुप नै रहा जाता। काहे लड़कन के मुँह लगत हौ?" लोगों ने पूछा तो कुछ नहीं बोली। जैसे उसे पाला मार गया हो। उसने चुपचाप अपनी दूकान ठीक की और दाँत से खून पोंछा, कुल्ला किया और बैठ गयी।

उसके बाद अपने उस कृत्य से बच्चे जैसे खुद सहम गये थे। वहुत दिन तक वे शान्त रहे। आज जब मेवा ने उसकी पीठ पर धूल फेंकी तो जैसे उसके खून चढ़ गया, पर फिर न जाने वह क्या सोचकर चुप रह गयी और जब नारा लगाते हुए जलूस गली में मुड़ गया तो उसने आँसू पोंछे, पीठ पर से धूल झाड़ी और साग पर पानी छिड़कने लगी। "लड़के का हैं गल्ली के, राच्छस हैं!" घेघा बुआ बोलीं। "अरे उन्हें काहे कहो बुआ! हमारा भाग ही खोटा है!" गुलकी ने गहरी साँस लेकर कहा। . . .

[2]

इस बार जो झड़ी लगी तो पाँच दिन तक लगातार सूरज के दर्शन नहीं हुए। बच्चे सब घर में कैद और गुलकी कभी दूकान लगाती थी, कभी नहीं। राम-राम करके छठवें दिन तीसरे पहर झड़ी बन्द हुई। बच्चे हकीमजी के चौतरे पर जमा हो गये। मेवा बिलबोटी बीन लाया था और निरमल ने टपकी हुई निमकौड़ियाँ बीनकर एक दूकान लगा ली थी और गुलकी की तरह आवाज लगा रही थी, "ले खीरा, आलू, मूरी, घिया-बण्डा!" थोड़ी देर में काफी शिशु ग्राहक दूकान पर जुट गये। अकस्मात् शोरगुल को चीरता हुआ बुआ के

चौतरे से गीत का स्वर उठा। बच्चों ने घूमकर देखा. मिरवा और मटकी गुलकी की दूकान पर बैठे हैं। मटकी खीरा खा रही है और मिरवा झबरी का सर अपनी गोद में रख बिल्कुल उसकी आँखों में आँखें डालकर गा रहा है।

तुरन्त मेवा गया और पता लगाकर आया कि गुलकी ने दोनों को एक-एक अधन्ना दिया है और दोनों मिलकर झबरी कुतिया के कीड़े निकाल रहे हैं। चौतरे पर हलचल मच गयी और मुन्ना ने कहा, ''निरमल! मिरवा मटकी को एक भी निकौड़ी मत देना। रहे उसी कुबड़ी के पास।'' ''हाँ जी!'' निरमल ने आँखें चमकाकर गोल मुँह करके कहा, ''हमार अम्मा कहत रहीं उन्हें छूयो न। न साथ खायो, न खेल्यो। उन्हें बड़ी बुरी बीमारी है।'' ''आक थू!'' मुन्ना ने उनकी ओर देखकर उबकाई-जैसा मुँह बनाकर थूक दिया।

गुलकी बैठी-बैठी सब समझ रही थी और जैसे इस निरर्थक घृणा में उसे कुछ रस-सा आने लगा था। उसने मिरवा से कहा, ''तुम दोनों मिलके गाओ तो एक अधन्ना दें। खूब जोर से!'' दोनों भाई-बहन ने गाना शुरू किया—'माल कताली मल जाना, पर अकियाँ किछी से. . . .' अकस्मात् फटाक से दरवाजा खुला और एक लोटा पानी दोनों के ऊपर फेंकती हुई घेघा बुआ गरजीं, ''दुर कलमुँहे। अबहिन बित्तौभर के नाहीं ना और पतुरियन के गाना गावै लागे। न बहन का ख्याल, न बिटिया का। और ए कुबड़ी, हम तुहूँ से कहे देइ है कि हम चकला-खाना खोलै के बरे अपना चौतरा नहीं दिया रहा। हुंह! चली हुँआ से मुजरा करावै।''

गुलकी ने पानी उधर छिटकाते हुए कहा, ''बुआ, बच्चे हैं। गा रहे हैं। कौन कसूर हो गया!''

''ऐ हाँ! हाँ बच्चे हैं। तुहूँ तो दूध पियत बच्ची हौ। कह दिया कि जबान न लड़ायो हमसे, हाँ! हम बहुतै बुरी हैं। एक तो पाँच महीने से किरावा नाहीं दियो और हियाँ दुनियाँ-भर के अन्धे कोढ़ी बटुरे रहत हैं। चलौ उठाओ अपनी दूकान हियाँ से। कल से न देखी हियाँ तुम्हें। राम! राम! सब अधरम की सन्तान राच्छस पैदा भये मुहल्ले में! धरतियौ नाहीं फाटत कि मर बिलाय जांय।''

गुलकी सन्न रह गयी। उसने किराया सचमुच पाँच महीने से नहीं दिया था। बिक्री ही नहीं थी। मुहल्ले में कोई उससे कुछ लेता ही नहीं था, पर इसके लिए बुआ उसे निकाल

देंगी, यह उसे कभी आशा नहीं थी। वैसे ही महीने में 20 दिन भूखी सोती थी। धोती में 10, 10 पैबन्द थे। मकान गिर चुका था। एक दालान में थोड़ी सी जगह में वह सो जाती थी। पर दुकान तो वहाँ रखी नहीं जा सकती। उसने चाहा कि वह बुआ के पैर पकड़ ले, मिन्नत कर ले। पर बुआ ने जितनी जोर से दरवाजा खोला था, उतनी ही जोर से बन्द कर दिया। जब से चौमासा आया था, पुरवाई बही थी, उसकी पीठ में भयानक पीड़ा उठती थी। उसके पाँव काँपते थे। सट्टी में उस पर उधार बुरी तरह चढ़ गया था। पर अब होगा क्या? वह मारे खीझ के रोने लगी।

इतने में कुछ खटपट हुई और उसने घुटनों से मुँह उठाकर देखा कि मौका पाकर मटकी ने एक ताजा फूट निकाल लिया है और मरभुखी की तरह उसे हबर-हबर खाती जा रही है। एक क्षण वह उसके फूलते-पचकते पेट को देखती रही, फिर ख्याल आते ही कि फूट पूरे 10 पैसे का है, वह उबल पड़ी और सड़ासड़ तीन-चार खपच्ची मारते हुए बोली, "चोट्टी! कुतिया! तोरे बदन में कीड़ा पड़ै!" मटकी के हाथ से फूट गिर पड़ा, पर वह नाली में से फूट के टुकड़े उठाते हुए भागी। न रोयी, न चीखी, क्योंकि मुँह में भी फूट भरा था। मिरवा हक्का-बक्का इस घटना को देख रहा था कि गुलकी उसी पर बरस पड़ी। सड़-सड़ उसने मिरवा को मारना शुरू किया, "भाग यहाँ से। हरामजादे।" मिरवा दर्द से तिलमिला उठा, "हमला पइछा देव तो जाई।" "देते हैं पैसा, ठहर तो!" सड़! सड़! . . . .रोता हुआ मिरवा चौतरे की ओर भागा।

निरमल की दूकान पर सन्नाटा छाया था। सब चुप उसी ओर देख रहे थे। मिरवा ने आकर कुबड़ी की शिकायत मुन्ना से की। मुन्ना चुप रहा। फिर मेवा की ओर घूमकर बोला, "मेवा, बता दो इसे!" मेवा पहले हिचकिचाया, फिर बड़ी मुलायमियत से बोला, "मिरवा, तुम्हें बीमारी है न! तो हम लोग अब तुम्हें नहीं छुयेंगे। साथ नहीं खिलायेंगे। तुम बैठ जाओ।"

"हम बिमाल हैं मुन्ना?"

मुन्ना कुछ पिघला, "हाँ, हमें छुओ मत। निमकौड़ी खरीदना हो तो उधर बैठ जाओ, हम दूर से फेंक देंगे! समझे!" मिरवा समझ गया, सर हिलाया और अलग जाकर बैठ गया। मेवा ने निमकौड़ी उसके पास रख दी और वह चोट भूलकर पकी निमकौड़ी का बीजा निकालकर छीलने लगा।

इतने में ऊपर से घेघा बुआ की आवाज आयी, ''ऐ मुन्ना! तईं तू लोग परे हो जाओ! अबहिन पानी गिरी ऊपर से।'' बच्चों ने ऊपर देखा। तिछत्ते पर घेघा बुआ कछोटा मारे पानी में छपछप करती घूम रही थीं। कूड़े से तिछत्ते की नाली बन्द थी और पानी भरा था। जिधर बुआ खड़ी थीं, उसके ठीक नीचे गुलकी का सौदा था। गुलकी कराहती हुई उठी। कूबड़ की वजह से वह तनकर तिछत्ते की ओर देख भी नहीं सकती थी। उसने धरती की ओर देखकर ऊपर बुआ से कहा, ''इधर की नाली काहे खोल रही हो? उधर की खोलो न!''

''काहे इधर की खोली! उधर हमारे चौका है कि नै!''

''इधर हमारा सौदा लगा है।''

''ऐ है!'' बुआ हाथ चमकाकर बोली, ''सौदा लगा है रानी साहब का! किरावा देय के दाईं हियाव फाटत है और टर्राय के दाईं नटई में गामा पहिलवान का जोर तो देखो! सौदा लगा है तो हम का करी। नारी तो इहै खुली!''

''खोलौ तो देखैं।'' अकस्मात् गुलकी ने तड़पकर कहा—आज तक किसी ने उसका स्वर नहीं सुना था, ''पाँच महीने का दस रुपया नहीं दिया, बस, पर हमारे घर की धन्नी निकाल के बसन्तू के हाथ किसने बेचा? तुमने! पच्छिम ओर का दरवाजा चिरवाके किसने जलवाया? तुमने। हम गरीब हैं। हमारा बाप नहीं है। सारा मुहल्ला मिलके हमें मार डालो।''

''हमें चोरी लगाती है। अरे, कल की पैदा हुई।'' बुआ मारे गुस्से के खड़ी बोली बोलने लगी थीं।

बच्चे चुप खड़े थे। वे कुछ-कुछ सहमे हुए थे। कुबड़ी का यह रूप उन्होंने कभी न देखा, न सोचा था।

''हाँ! हाँ! हाँ! तुमने, ड्राइवर चाचा ने, चाची ने, सबने मिलके हमारा मकान उजाड़ा है। अब हमारी दूकान बहाय देव। देखेंगे हम भी। निरबल के भी भगवान हैं!''

''ले! ले! ले! भगवान हैं तो ले!'' और बुआ ने पागलों की तरह दौड़कर नाली में जमा कूड़ा लकड़ी से ठेल दिया। छः इंच मोटी गन्दे पानी की धार धड़-धड़ करती हुई उसकी दुकान पर गिरने लगी। तरोइयाँ पहले नाली में गिरीं, फिर मूली, खीरे, साग, अदरक

उछल-उठल कर दूर जा गिरे। गुलकी आँखें फाड़े पागल-सी देखती रही और फिर दीवार पर सर पटककर हृदय-विदारक स्वर में डकराकर रो पड़ी, "अरे मोर बाबू—हमें कहाँ छोड़ गये—अरे मोरी माई! पैदा होते ही हमें क्यों नहीं मार डाला! अरे धरती मैया, हमें काहे नहीं लील लेतीं।"

सर खोले, बाल बिखरे, छाती कूट-कूटकर वह रो रही थी और तिछत्ते का पिछले नौ दिन का जमा पानी धड़-धड़ धड़-धड़ गिर रहा था।

बच्चे चुप खड़े थे। अब तक तो जो हो रहा था, उनकी समझ में आ रहा था। पर आज यह क्या हो गया, यह उनकी समझ में नहीं आ सका। पर वे कुछ बोले नहीं। सिर्फ मटकी उधर गयी और नाली में बहता हुआ एक मोटा खीरा निकालने लगी कि मुना ने डाँटा, "खबरदार! जो कुछ चुराया।" मटकी पीछे हट गयी। वे सब किसी अप्रत्याशित भय, संवेदना या आशंका से जुड़-बटुरकर खड़े हो गये। सिर्फ मिरवा अलग सर झुकाये खड़ा था। झींसी फिर पड़ने लगी थी और वे एक-एक कर अपने घर चले गये।

दूसरे दिन चौतरा खाली था। दूकान का बाँस उखड़वाकर बुआ ने नाँद में गाड़कर उस पर तुरई की लतर चढ़ा दी थी। उस दिन बच्चे आये, पर उनकी हिम्मत उस चौतरे पर जाने की नहीं हुई। जैसे वहाँ कोई मर गया हो। बिल्कुल सुनसान चौतरा था और फिर तो ऐसी झड़ी लगी कि बच्चों का निकलना बन्द। चौथे या पाँचवें दिन रात को भयानक वर्षा तो हो ही रही थी, पर बादल भी ऐसे गरज रहे थे कि मुन्ना अपनी खाट से उठकर अपनी माँ के पास घुस गया। बिजली चमकते ही जैसे कमरा रोशनी से नाच-नाच उठता था। छत पर बूँदों की पटर-पटर कुछ धीमी हुई, थोड़ी हवा भी चली और पेड़ों का हरहर सुनायी पड़ा कि इतनें में धड़ धड़ धड़ धड़ाम! भयानक आवाज हुई। माँ भी चौंक पड़ी। पर उठीं नहीं। मुन्ना आँखें खोले अंधेरे में ताकने लगा। सहसा लगा, मुहल्ले में कुछ लोग बातचीत कर रहे हैं। घेघा बुआ की आवाज सुनायी पड़ी, "किसका मकान गिरा है. रे!" "गुलकी का?"—किसी का दूरागत उत्तर आया। "अरे बाप रे! दब गयी क्या?" "नहीं, आज तो मेवा की माँ के यहाँ सोयी है!" मुन्ना लेटा था और उसके ऊपर अँधेरे में यह सवाल-जवाब इधर से उधर और उधर से इधर जा रहे थे। वह फिर काँप उठा, माँ के पास घुस गया और सोते-सोते उसने साफ सुना—कुबड़ी फिर उसी तरह रो रही है, गला फाड़कर रो रही है! कौन जाने मुन्ना के ही आँगन में बैठकर रो रही हो। नींद में वह स्वर कभी दूर, कभी

पास आता हुआ ऐसा लग रहा है जैसे कुबड़ी मुहल्ले के हर आँगन में जाकर रो रही हो, पर कोई सुन नहीं रहा, सिवा मुन्ना के।

[3]

बच्चों के मन में कोई बात इतनी गहरी लकीर नहीं बनाती कि उधर से उनका ध्यान हटे ही नहीं। सामने गुलकी थी तो वह एक समस्या थी, पर उसकी दूकान हट गयी, फिर वह जाकर साबुनवाली सत्ती के गलियारे में सोने लगी और दो-चार घर से माँग-जाँचकर खाने लगी, उस गली में दिखती ही नहीं थी। बच्चे भी दूसरे कामों में व्यस्त हो गये। अब जाड़ा आ रहा था, तो उनका जमावड़ा सुबह न होकर तीसरे पहर होता था। जमा होने के बाद जलूस निकलता था और जिस जोशीले नारे से गली गूँज उठती थी वह था, ''घेघा बुआ को वोट दो।'' पिछले दिनों म्युनिसिपैलटी का चुनाव हुआ था और उसी में बच्चों ने यह नारा सीखा था। वैसे कभी-कभी बच्चों में दो पार्टियाँ भी होती थीं, पर दोनों को घेघा बुआ से अच्छा उम्मीदवार कोई नहीं मिलता था, अत: दोनों ही गला फाड़-फाड़कर उनके लिए वोट माँगती थीं।

उस दिन जब घेघा बुआ के धैर्य का बाँध टूट गया और नयी-नयी गालियों से विभूषित अपनी प्रथम एलेक्शन स्पीच देने ज्यों ही चौतरें पर अवतरित हुई कि उन्हें डाकिया आता हुआ दिखायी पड़ा। वह अचकचाकर रुक गयीं। डाकिया के हाथ में पोस्टकार्ड था और वह गुलकी को ढूँढ रहा था। बुआ ने लपककर पोस्टकार्ड लिया, एक साँस में पढ़ गयीं। उनकी आँखें मारे अचरज के फैल गयीं और डाकिया को यह बताकर कि गुलकी सत्ती साबुनवाले के ओसारे में रहती है, वह झट से दौड़ी। निरमल की माँ ड्राइवर की पत्नी के यहाँ गयीं, बड़ी देर तक दोनों में सलाह-मशविरा होता रहा और अन्त में बुआ आयीं और उन्होंने मेवा को भेजा, ''जा, गुलकी को बुला ला!''

पर जब मेवा लौटा तो उसके साथ गुलकी नहीं, वरन् सत्ती साबुनवाली थी और सदा की भाँति इस समय भी उसकी कमर से वह काले बेंट का चाकू लटक रहा था, जिससे वह साबुन की टिक्की काटकर दूकानदारों को देती थी। उसने आते ही भौंह सिकोड़कर बुआ को देखा और कड़े स्वर में बोली, ''क्यों बुलाया है गुलकी को? तुम्हारा 10/- किराया बाकी था, तुमने 25/- का सौदा उजाड़ दिया! अब क्या काम है!'' ''अरे! राम! राम!

कैसा किराया बेटी! अन्दर आओ, अन्दर आओ!'' बुआ के स्वर में असाधारण मुलायमियत थी। सत्ती के अन्दर जाते ही बुआ ने फटाक से किवाड़ बन्द कर लिये। बच्चों का कौतूहल बहुत बढ़ गया था। बुआ के चौके में एक झँझरी थी। सब बच्चे वहाँ पहुँचे और आँख लगाकर कनपटियों पर दोनों हथेलियाँ रखकर घण्टीवाला बाइसकोप देखने की मुद्रा में खड़े हो गये।

अन्दर सत्ती गरज रही थी, ''बुलाया है तो बुलाने दो। क्यों जाय गुलकी? अब बड़ा ख्याल आया है। इसलिए कि उसकी रखैल को बच्चा हुआ है तो जाके गुलकी झाड़-बहारू करे, खाना बनाये, बच्चा खिलावै, और वह मरद का बच्चा गुलकी की आँख के आगे रखैल के साथ गुलछर्रे उड़ावै!''

निरमल की माँ बोलीं, ''अरे बिटिया! पर गुजर तो अपने आदमी के साथ करैगी न। जब उसकी पत्री आयी है तो गुलकी को जाना चाहिए। और मरद तो मरद। एक रखैल को छोड़ दुइ-दुइ रखैल रख ले तो औरत उसे छोड़ देगी? राम! राम!''

''नहीं, छोड़ नहीं देगी तो जायके लात खायेगी?'' सत्ती बोली।

''अरे बेटा!'' बुआ बोली, ''भगवान रहें न! तौन मथुरापुरी में कुब्जा दासी के लात मारिन तो ओकर कूबर सीधा हुइ गवा। पति तो भगवान है बिटिया! ओके जाय देव!''

''हाँ! हाँ! बड़ी हितू न बनिये। उनके आदमी से आप लोग मुफ्त में गुलकी का मकान झटकना चाहती हैं। मैं सब समझती हूँ।''

निरमल की माँ का चेहरा जर्द पड़ गया। पर बुआ ने ऐसी कच्ची गोली नहीं खेली थी। वे डपटकर बोलीं, ''खबरदार जो कच्ची जबान निकाल्यो! तुम्हारा चलित्तर कौन नै जानता! ओही छोकरा मानिक. . . . ''

''जबान खींच लूँगी।'' सत्ती गला फाड़कर चीखी, ''जो आगे एक हरुफ कहा।'' और उसका हाथ अपने चाकू पर गया—

''अरे! अरे! अरे!'' बुआ सहमकर दस कदम पीछे हट गयीं, ''तो का खून करबो कां, कतल करबो का?'' —सत्ती जैसे आयी थी वैसे ही चली गयी।

तीसरे दिन बच्चों ने तय किया कि होरी बाबू के कुएँ पर चलकर बर्रे पकड़ी जायँ। उन दिनों उनका जहर शान्त रहता है, बच्चे उन्हें पकड़कर उनका छोटा-सा काला डंक निकाल

लेते और फिर डोरी में बाँधकर उन्हें उड़ाते हुए घूमते। मेवा, निरमल और मुन्ना एक-एक बर्रें उड़ाते हुए जब गली में पहुँचे तो वहाँ देखा, बुआ के चौतरे पर टीन की कुर्सी डाले कोई आदमी बैठा है। उसकी अजीब शकल थी। कान पर बड़े-कड़े बाल, मिचमिची आँखें, मोछा और तेल से चुचुआते हुए बाल। कमीज और धोती, पुराने बदरंग बूट। मटकी हाथ फैलाये कह रही है, ''एक डबल दै देव! देव ना।'' मुन्ना को देखकर मटकी ताली बजा-बजाकर कहने लगी, ''गुलकी का मनसेधू आवा है। ए मुन्ना बाबू! ई कुबड़ी का मनसेधू है।'' फिर उधर मुड़कर ''एक डबल दै देव।'' तीनों बच्चे कौतूहल से रुक गये। इतने में निरमल की माँ एक गिलास में चाय भरकर लायी और उसे देते-देते निर्मल के हाथ में बर्रें देखकर उसे डाँटने लगी। बर्रें छुड़ाकर निरमल को पास बुलाया और बोली, ''बेटा, ई हमारी निर्मला है! ए निरमल, जीजाजी हैं, हाथ जोड़ो! बेटा, गुलकी हमारी जात-बिरादर की नहीं है तो का हुआ, हमारे लिए जैसे निरमल वैसे गुलकी। अरे निरमल के बाबू और गुलकी के बाप की दाँतकाटी रही। एक मकान बचा है उनकी चिन्हारी, और का!'' एक गहरी साँस लेकर निरमल की माँ ने कहा।

''अरे तो का उन्हें कोई इन्कार है।'' बुआ आ गयीं थीं, ''अरे 100/- तुम देबै किये रह्यू, चलो 300/- और दै देव। अपने नाम कराय लेव!''

''500/- से कम नहीं होगा!'' उस आदमी का मुँह खुला, एक वाक्य निकला और मुँह फिर बन्द हो गया।

''भवा! भवा! ऐ बेटा दामाद हौ, 500/- कहबो तो का निरमल की माँ को इन्कार है।''

अकस्मात वह आदमी उठकर खड़ा हो गया। आगे-आगे सत्ती चली आ रही थी, पीछे-पीछे गुलकी। सत्ती चौतरे के नीच खड़ी हो गयी। बच्चे दूर हट गये। गुलकी ने सर उठाकर देखा और अचकचाकर सर पर पल्ला डालकर माथे तक खींच लिया। सत्ती दो-एक क्षण उसकी ओर एकटक देखती रही और फिर गरजकर बोली, ''यही कसाई है। गुलकी, आगे बढ़कर मार दो चपोटा इसके मुँह पर! खबरदार, जो कोई बोला!'' बुआ चट से देहरी के अन्दर हो गयी, निरमल की माँ की जैसे घिग्घी बँध गयी और वह आदमी हड़बड़ा कर पीछे हटने लगा।

बढ़ती क्यों नहीं, गुलकी! बड़ा आया वहाँ से बिदा कराने!''

गुलकी आगे बढ़ी—सब सन्न थे—सीढ़ी चढ़ी, उस आदमी के चेहरे पर हवाइयाँ उड़ने लगीं। गुलकी चढ़ते-चढ़ते रुकी, सत्ती की ओर देखा, ठिठकी, अकस्मात् लपकी और फिर उस आदमी के पाँव पर गिरके फफक-फफककर रोने लगी, ''हाय हमें काहे को छोड़ दिया! तुम्हरे सिवा हमरा लोक-परलोक और कौन है। अरे, हमरे मरै पर कौन चुल्लू भर पानी चढ़ाई. . . . ''

सत्ती का चेहरा स्याह पड़ गया। उसने बड़ी हिकारत से गुलकी की ओर देखा और गुस्से में थूक निगलते हुए कहा, ''कुतिया!'' और तेजी से चली गयी। निरमल की माँ और बुआ गुलकी के सर पर हांथ फेर-फेरकर कह रही थीं, ''मत रो बिटिया! मत रो! सीता मइया भी तो बनवास भोगिन रहा! उठो गुलकी बेटा, धोती बदल लेव, कंघी चोटी करो! पति के सामने ऐसे आना असगुन होता है! चलो।''

गुलकी आँसू पोंछती-पोंछती निरमल की माँ के घर चली। बच्चे पीछे-पीछे चले तो बुआ ने डाँटा, ''ऐ चलो एहर, हुँआ लड्डू बँट रहा है का!''

दूसरे दिन निरमल के बाबू (ड्राइवर साहब), गुलकी और जीजा दिन-भर कचहरी में रहे। शाम को लौटे तो निरमल की माँ ने पूछा, ''पक्का कागज लिख गया?'' ''हाँ, हाँ रे, हाकिम के सामने लिख गया।'' फिर जरा निकट आकर फुसफुसाकर बोले, ''मट्टी के मोल मकान मिला है। अब कल दोनों को बिदा करो!'' ''अरे, पहले 100/- लाओ! बुआ का हिस्सा भी तो देना है!'' निरमल की माँ उदास स्वर में बोली, ''बड़ी चंट है बुढ़िया, गाड़-गाड़के रख रही है, मरके साँप होयगी।''

[4]

सुबह निरमल की माँ के यहाँ मकान खरीदने की कथा थी। शंख, घण्टा-घड़ियाली, केले का पत्ता, पंजीरी, पंचामृत का आयोजन देखकर मुन्ना के अलावा सब बच्चे इकट्ठे थे। निरमल की माँ और निरमल के बाबू पीढ़े पर बैठे थे, गुलकी एक पीली धोती पहने, माथे तक घूँघट काढ़े सुपारी काट रही थी और बच्चे झाँक-झाँककर देख रहे थे। मेवा ने पास पहुँचकर कहा, ''ए गुलकी, ए गुलकी, जीजाजी के साथ जाओगी क्या?'' कुबड़ी ने झेंपकर कहा, ''धत्त रे! ठिठोली करता है!'' और लज्जा-भरी जो मुस्कान किसी भी तरुणी

के चेहरे पर मन-मोहक लाली बनकर फैल जाती है, वह उसके झुर्रियोंदार, बेडौल, नीरस चेहरे पर विचित्र रूप से वीभत्स लगने लगी। उसके काले पपड़ीदार होंठ सिकुड़ गये, आँखों के कोने मिचमिचा उठे और अत्यन्त कुरुचिपूर्ण ढंग से उसने अपने पल्ले से सर ढँक लिया और पीठ सीधी कर जैसे कूबड़ छिपाने का प्रयास करने लगी। मेवा पास ही बैठ गया। कुबड़ी ने पहले इधर-उधर देखा, फिर फुस-फुसाकर मेवा से कहा, "क्यों रे! जीजाजी कैसे लगे तुझे?" मेवा ने असमंजस में या संकोच में पड़कर कोई जवाब नहीं दिया तो जैसे अपने को समझाते हुए गुलकी बोली, "कुछ भी होय। है तो अपना आदमी! हारे-गाढ़े कोई और काम आवेगा? औरत को दबाय के रखना ही चाहिए।" फिर थोड़ी देर चुप रहकर बोली, "मेवा भइया, सत्ती हमसे नाराज है। अपनी सगी बहन क्या करेगी जो सत्ती ने किया हमारे लिए। ये चाची और बुआ तो सब मतलब के साथी हैं, हम क्या जानते नहीं? पर भइया, अब जो कहो कि हम सत्ती के कहने से अपने मरद को छोड़ दें, सो नहीं हो सकता।" इतने में किसी का छोटा-सा बच्चा घुटनों के बल चलते-चलते मेवा के पास आकर बैठ गया। गुलकी क्षण-भर उसे देखती रही। फिर बोली, "पति से हमने अपराध किया तो भगवान ने बच्चा छीन लिया, अब भगवान हमें क्षमा कर देंगे।" फिर कुछ क्षण के लिए चुप हो गयी, "क्षमा करेंगे तो दूसरी सन्तान देंगे। क्यों नहीं देंगे? तुम्हारे जीजाजी को भगवान बनाये रखे। खोट तो हमीं में है फिर सन्तान होगी तब तो सौत का राज नहीं चलेगा।"

इतने में गुलकी ने देखा कि दरवाजे पर उसका आदमी खड़ा बुआ से कुछ बातें कर रहा है। गुलकी ने तुरन्त पल्ले से सर ढँका और लजाकर उधर पीठ कर ली। बोली, "राम! राम! कितने दुबरा गये हैं। हमारे बिना खाने-पीने का कौन ध्यान रखता? अरे, सौत तो अपने मतलब की होगी। ले भइया मेवा, जा दो बीड़ा पान दे आ जीजा को!" फिर उसके मुँह पर वही लज्जा की वीभत्स मुद्रा आयी, "तुझे कसम है, बताना मत किसने दिया है।"

मेवा पान लेकर गया, पर वहाँ किसी ने उस पर ध्यान ही नहीं दिया। वह आदमी बुआ से कह रहा था, "इसे ले तो जा रहे हैं, पर इतना कहे देते हैं। आप भी समझा दें उसे—कि रहना हो तो दासी बनकर रहे। न दूध की, न पूत की। हमारे कौन काम की, पर हाँ औरतिया की सेवा करे, उसका बच्चा खिलावे, झाड़ू-बुहारू करे तो दो रोटी खाय पड़ी रहे। पर कभी

उससे जबान लड़ायी तो खैर नहीं। हमारा हाथ बड़ा जालिम है। एक बार कूबड़ निकला, अगली बार परान ही निकलेगा।''

''क्यों नहीं बेटा! क्यों नहीं!'' बुआ बोली और उन्होंने मेवा के हाथ से पान लेकर अपने मुँह में दबा लिये!

करीब 3 बजे इक्का लाने के लिए निरमल की माँ ने मेवा को भेजा। कथा की भीड़-भाड़ से उनका 'मूड़ पिराने' लगा था, अत: अकेली गुलकी सारी तैयारी कर रही थी। मटकी कोने में खड़ी थी। मिरवा और झबरी बाहर गुमसुम बैठे थे। निरमल की माँ ने बुआ को बुलवाकर पूछा कि बिदा-बिदाई में क्या करना होगा, तो बुआ मुँह बिगाड़कर बोलीं ''अरे, कोई जात-बिरादरी की है का? एक लोटा में पानी भरके इकन्नी-दुअन्नी उतारके परजा-पजारू को दै दियो बस!'' और फिर बुआ शाम की बियारी में लग गयीं।

इक्का आते ही जैसे झबरी पागल-सी इधर-उधर दौड़ने लगी। उसे जाने कैसे, आभास हो गया कि गुलकी जा रही है, सदा के लिए। मेवा ने अपने छोटे-छोटे हाथों से बड़ी-बड़ी गठरियाँ रखीं, मटकी और मिरवा चुपचाप आकर इक्के के पास खड़े हो गये। सिर झुकाये पत्थर-सी चुप गुलकी निकली। आगे-आगे हाथ में पानी का भरा लोटा लिये निरमल थी। वह आदमी जाकर इक्के पर बैठ गया। ''अब जल्दी करो।'' उसने भारी गले से कहा। गुलकी आगे बढ़ी, फिर रुकी और उसने टेंट से दो अधन्ने निकाले, ''ले मिरवा, ले मटकी!'' मटकी जो हमेशा हाथ फैलाये रहती थी, इस समय जाने कैसा संकोच उसे आ गया कि वह हाथ नीचे कर दीवार से सटकर खड़ी हो गयी और सर हिलाकर बोली, ''नहीं!'' ''नहीं बेटा! ले लो!'' गुलकी ने पुचकारकर कहा। मिरवा मटकी ने पैसे ले लिये और मिरवा बोला, ''छलाम गुलकी! ए आदमी छलाम!''

''अब क्या गाड़ी छोड़नी है!'' वह फिर भारी गले से बोला।

''ठहरो बेटा, कहीं ऐसे दामाद की बिदाई होती है!'' सहसा एक बिल्कुल अजनबी, किन्तु अत्यन्त मोटा स्वर सुनायी पड़ा। बच्चों ने अचरज से देखा, मुन्ना की माँ चली आ रही हैं। ''हम तो मुन्ना का आसरा देख रहे थे कि स्कूल से आ जाय, उसे नाश्ता करा लें तो आयें, पर इक्का आ गया तो हमने समझा अब तू चली। अरे! निरमल की माँ, कहीं ऐसे बेटी की बिदाई होती है! लाओ जरा रोली घोलो जल्दी से, चावल लाओ और सेन्दुर भी ले आना निरमल बेटा! तुम बेटा, उतर आओ इक्के से!''

निरमल की माँ का चेहरा स्याह पड़ गया था। बोली, "जितना हमसे बन पड़ा, किया। किसी को दौलत का घमण्ड थोड़े ही दिखाना था।" "नहीं बहन! तुमने तो किया, पर मुहल्ले की बिटिया तो सारे मुहल्ले की बिटिया होती है। हमारा भी तो फर्ज था। अरे माँ-बाप नहीं हैं तो मुहल्ला तो है। आओ बेटा।" और उन्होंने टीका करके आँचल के नीचे छिपाये हुए कुछ कपड़े और एक नारियल उसकी गोद में डालकर उसे चिपका लिया। गुलकी जो अभी तक पत्थर-सी चुप थी, सहसा फूट पड़ी। उसे पहली बार लगा, जैसे वह मायके से जा रही है। मायके से. . . . अपनी माँ को छोड़कर. . . . छोटे-छोटे भाई-बहनों को छोड़कर. . .और वह अपने कर्कश फटे हुए गले से विचित्र स्वर से रो पड़ी।

"ले! अब चुप हो जा! तेरा भाई भी आ गया।" वे बोलीं। मुन्ना बस्ता लटकाये स्कूल से चला आ रहा था। कुबड़ी को अपनी माँ के कन्धे पर सर रखकर रोते देखकर वह बिल्कुल हतप्रभ-सा खड़ा हो गया। "आओ बेटा! गुलकी जा रही है न आज! दीदी है न! बड़ी बहन है। चल पाँव छू ले! आ इधर!" माँ ने फिर कहा। मुन्ना. . .और कुबड़ी के पाँव छुये? क्यों? क्यों? पर माँ की बात! एक क्षण में उसके मन में जैसे एक पूरा पहिया घूम गया और वह गुलकी की ओर बढ़ा। गुलकी ने दौड़कर उसे चिपका लिया और फूट पड़ी, "हाय मेरे भइया! अब हम जा रहे हैं! अब किससे लड़ोगे मुन्ना भइया! अरे मेरे वीरन, अब किससे लड़ोगे?" मुन्ना को लगा जैसे उसकी छोटी-छोटी पसलियों में एक बहुत बड़ा-सा आँसू जमा हो गया जो अब छलकने ही वाला है। इतने में उस आदमी ने फिर आवाज दी और गुलकी कराहकर मुन्ना की माँ का सहारा लेकर इक्के पर बैठ गयी। इक्का खड़-खड़कर चल पड़ा। मुन्ना की माँ मुड़ी कि बुआ ने व्यंग्य किया, "एक-आध गाना भी बिदाई का गाये जाओ बहन! गुलकी बन्नो ससुराल जा रही है!" मुन्ना की माँ ने कुछ जवाब नहीं दिया, मुन्ना से बोली, "जल्दी घर आना बेटा। नाश्ता रखा है।"

पर पागल मिरवा ने, जो बम्बे पर पाँव लटकाये बैठा था, जाने क्या सोचा कि वह सचमुच गला फाड़कर गाने लगा, "बन्नो डाले दुपट्टे का पल्ला, मुहल्ले से चली गयी राम!" यह उस मुहल्ले में हर लड़की की विदा पर गाया जाता था। बुआ ने घुड़का तब भी वह चुप नहीं हुआ, उल्टे मटकी बोली, "काहे न गावें, गुलकी ने पैसा दिया है!" और उसने भी सुर मिलाया, "बन्नो तली गयी लाम! बन्नो तली गयी लाम! बन्नो तली गयी लाम!"

मुन्ना चुपचाप खड़ा रहा। मटकी डरते-डरते आयी, "मुन्ना बाबू! कुबड़ी ने अधन्ना दिया है, ले लें?"

"ले ले!" बड़ी मुश्किल से मुन्ना ने कहा और उसकी आँखों में दो बड़े-बड़े आँसू डबडबा आये। उन्हीं आँसुओं की झिलमिली में कोशिश करके मुन्ना ने जाते हुए इक्के की ओर देखा। गुलकी आँसू पोंछते हुए पर्दा उठाकर सबको मुड़-मुड़कर देख रही थी। मोड़ पर एक धचक्के से इनका इक्का मुड़ा और फिर अदृश्य हो गया।

सिर्फ झबरी सड़क तक इक्के के साथ गयी और फिर लौट आयी।



मार्कंडेय

(जन्म 1930 ई०)

नई कहानी के अग्रणी कथाकार मार्कंडेय का जन्म जौनपुर जिले में हुआ। आपकी शिक्षा प्रतापगढ़ कॉलेज में हुई, जहाँ आपका राजनीति तथा साहित्य से सम्पर्क हुआ। आपने एम० ए० के पश्चात कबीर के साहित्य पर शोध कार्य किया है। फिर आपने कहानियाँ लिखना शुरू किया। आपकी कहानियों में भूमिहीन किसानों और मजदूरों के संघर्षों का व्यापक चित्रण हुआ है।

मार्कंडेय की पहली कहानी प्रकाशित हुई 'गुलरा के बाबा'। इस कहानी की हिन्दी संसार में बड़ी चर्चा हुई। तब से आप निरंतर कहानियाँ, उपन्यास और कथा आलोचना लिखते रहे हैं। आपकी प्रकाशित रचनाओं में सात संग्रह, दो उपन्यास, एक एकांकियों का संकलन, एक काव्य संकलन के अतिरिक्त कहानी आलोचना पर महत्वपूर्ण पुस्तक 'कहानी की बात' भी प्रकाशित हुई है। आपकी कहानियों में गुलरा के बाबा' सात बच्चों की माँ, जूते, हंसा जाई अकेला, महुए का पेड़ और बीच के लोग विशेष उल्लेखनीय हैं।

दाना-भूसा

प्रस्तुत कहानी में मार्कंडेय ने सूखाग्रस्त गाँव के एक घर की गरीबी और भुखमरी की स्थिति में घोर अमानवीयता का कथा चित्र उपस्थित किया है।

13. दाना-भूसा

''कितनी देर हुई!'' राजी ने अनमने भाव से कहा और गोद से चिपके बच्चे को अलग करते हुए उठने को हुई, पर फिर दीवार से पीठ सटा कर अधलेटी हो गयी। दूसरा दिन होता तो वह मोहन को अपनी छातियों से अलग करते-करते दो-चार मोटी-मोटी बातें सुनाती, मसलन, ''कहाँ का अमृत भरा है, जो हाड़ चूस रहा है या खा क्यों नहीं जाता मुझी को जो जान के पड़ा है।'' पर वह कुछ न बोली और बाँकी ने भी बाप की पूछ-ताछ करके गालियाँ सुनने का काम आज एक बार भी नहीं किया, बेचारी चुपचाप पूरब के घर की दुवार में बैठी अपने लसिआये झोंटे को दोनों हाथों से खुजलाती और बीच-बीच में बालों से जूँ निकाल, एक अंगूठे के नख पर रख, दूसरे से चट् से मार कर कुछ अपने नाखूनों को देखती और फिर सिर खुजलाने लगती।

घर चारों ओर ऐसा चिकना, साफ-सूफ कि लगता है, कई दिन पहले लीप-पोत कर छोड़ दिया गया हो या चौका-बासन करके घर के प्राणी हफ्तों पहले कहीं चले गये हों। चारों ओर सघन शांति, सिर्फ एक बूढ़ी बिल्ली, जिसके पेट-पीठ सट कर एक हो रहे हैं; पूँछ नीचे किये इधर-उधर रोती हुई घूम रही थी। पहले जो गौंरियों का झुण्ड उतर कर बार-बार राजी का सुखवन खाया करता था और उड़ाने पर फुर् से उड़ कर बखरी की खपरैल पर गुथ जाया करता था, जाने किस देश चला गया। दो दिन से एक नन्हीं-सी गौंरैया का बच्चा आँगन में उतर कर चूँ-चूँ करता और उड़ जाता था, पर आज वह भी कहीं दिखाई नहीं पड़ता। नाबदान के बगल की ऊँची डेहरी, जो उबसन और राख से सनी रहती थी, एकदम धुली और साफ पड़ी थी। कहीं-कहीं एकाध मक्खियाँ दिखाई पड़ती थीं, फिर उड़कर ऐसा लोप हो जाती थीं, जैसे उनके बैठने लायक यहाँ कुछ है ही नहीं और बखरी के कोने में बँधी बकरी आम की कई दिनों की बासी कउचियों को कूचने का प्रयास करके थम जाने पर में ऽऽ करके एक अजीब स्वर में मिमियाती और फिर चुप होकर टहनियों के टुनगों के मुरझाये छिलके को कूँचने लगती।''

राजी दीवार के सहारे अधलेटी हो गयी। उसकी सूखी छातियाँ आँचल से बाहर लटक आयीं। मोहन ने धीरे-धीरे सिर झुकाकर उन्हें एकाएक होंठों से पकड़ लिया। मशीन की तरह राजी का उल्टा हाथ उसके मुँह पर भरपूर बैठ गया। वह धड़ाक से दूर जा गिरा। बच्चे की चीख इतनी जोर से उठी कि कराह का आधा तनाव निःशब्द हो उठा। बाँकी पल भर को अपना एक हाथ सिर पर रखे, गरदन मोड़कर मोहन की ओर देखने लगी। फिर गुम-सुम-सी मुँह फेर कर अपने काम में लग गयी।

धूप खिसक कर पूरब की दीवार से सट गयी और धीरे-धीरे ऊपर को चढ़ने लगी। बाँकी ने एक बार उधर देखा और जाने क्या सोचकर उठी। तेजी से चक्कर लगाकर मिट्टी के चबूतरे पर टेढ़ी पड़ी गगरी से टिन के कटोरे में पानी उड़ेला और गट-गट पीकर उठने को हुई, पर माथा थाम कर वहीं बैठ गयी। पल भर बाद वह फिर उठी, भागी हुई गयी और उसी घर की दुवार में किवाड़ के सहारे अधलेटी उठँग गयी।

राजी सुगबुगा कर ठीक से बैठ गयी और बगल में देखने लगी। मोहन ओसारे की कच्ची दीवार से सटा लेटा था और जीभ से दीवार की मिट्टी चाट रहा था। उसने अपना एक हाथ बढ़ाकर उसे पास घसीट लिया और गोद से उसका सिर टिका कर दो-चार बार अनमने भाव से उसे थपथपाया, तभी बंसन ने चोर की तरह दहलीज का एक किवाड़ हटाकर घर में पैर रखा और जैसे ही किवाड़ के पल्ले को छोड़ा, वह भड़ से बन्द हो गया। तीन जोड़ी आँखें एक साथ उस ओर उठ गयीं। अनबोला, समवेत स्वर 'बापू' उसके सीने में चुभा पर वह डग बढ़ाता हुआ सीधा ओसारे में जाकर राजी के आगे खड़ा हो गया। "लो इसे बाँकी की माँ, देखो इतना गुड़ मिल गया है। परमेसर बाबू बड़े भलेमानुस हैं। . . .उठो, जल्दी घोरो रस!" उसने घूमकर अपराधी की तरह गगरी की ओर देखा, जो औंधी पड़ी थी, "अरे पानी भी नहीं है। अच्छा अभी लाते हैं, तुम लोटा-कटोरा जुटाओ!"

बंसन कंधे पर गमछा रानी के आगे डाल कर लौट पड़ा। दुवार में बैठी बाँकी ताकने लगी और एक कोने में बँधी बकरी बंसन को देखकर मिमियाती हुई पगहे से तुड़ाने लगी। बंसन ने बकरी का पिचका पेट देखा और चुपचाप दहलीज का किवाड़ हटा कर बाहर निकल गया।

राजी ने बाँकी को बुलाया और झुककर गमछे के खूँट से गुड़ छोड़ने लगी। गमछे के खूँट में कई गाँठें लगी थीं। उसने एक खोला, दो खोला और उसका सिर चकराने लगा,

मिचली छूटने लगी और वह गमछे को छोड़कर दीवार से सिर उठँग गयी। बाँकी ने गाँठें खोलीं और कपड़ा हटाया तो गुड़ की जगह मरे हुए चींटों का ढोका देखकर वह हक्की-बक्की रह गयी। बंसन पानी लेकर आ गया और राजी को देख कर हड़बड़ाया सा पूछने लगा, "तुम्हारी माई को का हुआ बाँकी, कइसा जी है।" बाँकी रुआसी-सी गुड़ की ओर देखती रही और बंसन जैसे सब कुछ समझ कर जल्दी से गुड़ में पानी मिला कर बटुली में शरबत बनाने लगा। बाँकी चुपचाप बैठी रही और मोहन टुकुर-टुकुर ताकता रहा।

शरबत दो कटोरों में भर कर बंसन ने एक बाँकी और दूसरा मोहन के आगे टाल दिया और बड़ा गिलास भर कर राजी के मुँह से लगाया तो वह दोनों हाथों से गिलास थाम कर गट-गट पीने लगी। बंसन की आँखें भरीं, कंठ रुँधे पर वह अपने को कड़ा करके बोलने लगा, "धीरे-धीरे पीलो, नहीं तो करेजे में लग जायेगा।"

राजी कुछ नहीं बोली और रस पीती रही। बंसन ने बटुली में देखा, शरबत अभी आधे से ज्यादा था और बच्चों की खाली कटोरियाँ सामने सरक आयी थीं। उसने फिर दोनों को भर दिया और राजी का गिलास थाम कर उसे भरी तो गिलास अभी दो अंगुल खाली ही था और बटुली औंधी हो गयी। बंसन के हाथ भारी हो गये, वह गिलास के शरबत को पल भर देखता रह गया, फिर राजी की आँखों में जिन्दगी की लहर देख कर उसने गिलास उठाया और उसके मुँह से लगाने ही जा रहा था कि राजी ने फिर गिलास थाम कर गटगट शरबत पी लिया और खाली गिलास बगल रख लिया।

"पियास लड़क गयी थी!" वह कहती हुई सँभल कर बैठ गयी। बाँकी उठकर आँगन में डोलने लगी और मोहन पैरों के सहारे उठने-फिरने की कोशिश करने लगा पर बंसन कुछ देर तक खाली बटुली की चमकती पेंदी देखता रहा। उसे चिढ़ हुई। राजी के चेहरे पर रुकी अपनी आँख उसने हटा ली और उठ खड़ा हुआ। फिर भी राजी कुछ बोल न पायी। अभी उसका सिर घूम रहा था और बंसन सोच रहा था,—समझती होगी, मैं दिन भर खाता-पीता घूमता रहता हूँ। मेहरारू की जात है न!—वह गुस्से से तिलमिलाकर बोला, "दिन भर पैर में मेंहदी लगी रहती है जौ बाँकी छेंर भी नहीं छोड़ सकती।"

"कहाँ लेकर जाये! अगवार-पिछवार तो परायी धरती है। बाग-बगइचा में रखवार बइठे हैं। आम की पत्ती भी नोहर है, इस ठाले में।"

राजी उठती हुई बोली, ''कल गनेस बाबू के डिहवा से एक कउची तोड़ लिया तो उनके लड़के ने बेचारी को मारा ही नहीं, हाथ उमेठ कर कउची भी छीन ली।''

''गनेस बाबू के लड़के ने?'' बंसन का ध्यान बँट गया, वह अपने से ऊपर उठा। यद्यपि उसकी देह अब भी सनसना रही थी और माथा अपरम्पार फट रहा था।

''अच्छा तो अब उसकी यह मजाल कि मेरी लड़की के हाथ से '' बंसन का चेहरा तमतमा आया, ''मैं देख लूँगा, एक-एक को।

''समय ही ऐसा है, क्या करोगे, इसमें तो अपने भी पराये हो जाते हैं। वे तो बेगाने हैं।'' राजी शान्त मन से बोली, लेकिन बंसन को लगा, वह उसका मुँह चिढ़ा रही है। वह क्रोध में कुछ कहने ही जा रहा था कि गौरैया का नन्हा बच्चा चूँ-चूँ करता आँगन में उतर कर दाने की खोज में इधर-उधर फुदकने लगा। बंसन का ध्यान उधर चला गया। तपे हुए, लाल लोहे पर ठंडा पानी पड़ गया। पल ही भर में उसका रंग लुट गया। वह धीरे-धीरे चल कर बकरी के पास पहुँचा और आम की एक पतली डाल उठाकर, एक कउची को तोड़ा तो चट की आवाज निकली—यह सूखी है। उसने दूसरी कउची उठायी, उसे तोड़ा और मुँह में लेकर कूचने लगी।

''साँझ को दतुअन बापू!'' बाँकी बकरी छोड़ने के लिए खड़ी थी, और राजी घबराई हुई बोलती चली आ रही थी, ''दिन भर वैसे ही रह गये, अभी तक खर भी नहीं मारा। कुछ बोले भी नहीं और मुझे गट-गट रस पिला दिया। भला किस रौ-रौ नरक में मैं गिरूँगी राम!''

''नहीं जी, यह तो वैसे ही देख रहा था कि हरी है या सूखी। मैंने तो सबेरे ही मुखिया के यहाँ रस-दाना कर लिया था।''

''सच कहते हो?''

''नहीं तो क्या झूठ बोलूँगा तुमसे!'' बंसन का कलेजा ठंडा हो गया। सिर्फ मुँह में फीकापन, मिचली, और वह भी दूर हो जाये, अगर एक बीड़ा खइनी कहीं मिल जाये। धीरे-धीरे आगे बढ़कर उसने दहलीज का किवाड़ खोला और बाहर चला गया पर वह भड़ से नहीं बोला। उसने पीछे देखा, राजी ने किवाड़ थाम लिया था। बंसन को अजीब-सा

लगा। जैसे कोई चीज उसके मन में धँस कर रह गयी हो। खामोशी एक गहरी, पाताल बेधी खाईं की तरह उसके अंधेरे मन की तहों में घुसती चली गयी। आखिर किवाड़ बोला क्यों नहीं! ठीक उसी तरह, जैसे कुछ देर पहले बच्चों का उसे देखते ही पुकार न उठना, सहस्त्रों मिले-जुले तीक्ष्ण स्वरों की तरह उनके कानों में गूँज उठा था।

बंसन धू-धू कर जलते हुए सिवान को एक नजर देखकर अपनी नन्हीं चौपाल की ओर मुड़ गया, जिसमें एक ओर उसका एक बूढ़ा बैल और दूसरी ओर दान में पायी हुई बछिया बँधी हाँफ रही थी। जाने कितने दिन से आम-महुए की पत्तियों पर गुजारा करने वाले इन पशुओं को अब पत्तियाँ भी नहीं होतीं और इस समय तो जैसे पानी का भी उन्हें अकाल पड़ गया है। बंसन सब कुछ समझ कर भी अपनी टूटी चारपाई में बैठ, पल भर को आँखें मूँद कर पड़ गया। उसका शरीर धीरे-धीरे सिकुड़ कर छोटा और हल्का हुआ जा रहा था—एक सूखे पत्ते की तरह हल्का और सब कुछ, यहाँ तक कि वह, उसकी चारपाई और बैठक आसमान में उड़ रहे थे। वह उड़ता रहा, उड़ता रहा और धीरे-धीरे ऐसी जगह पहुँच गया, जहाँ रोटियों का एक बहुत बड़ा ढेर लगा हुआ था, इतना बड़ा कि कई बाँस की सीढ़ियाँ लगाकर भी उसके ऊपरी हिस्से को छूना मुश्किल था और लोगों की एक बहुत बड़ी भीड़ उसे मनमाना लूट रही थी। बंसन झटके से लपका, पर खाट बहुत गहरी थी और पाटियों पर उसके हाथ अड़ कर रह गये।

उसने इधर-उधर देखा, बूढ़ा बरधा अब भी उसी तरह आँख झपकाये, सिर डाले, बेदम पड़ा था। बछिया खूँटे से बँधी तड़फड़ा रही थी। वह उठकर खाट में बैठ गया। धूप उतर चुकी थी। लोग इधर-उधर जाने लगे थे और हवा के झोंके में छिपी हुई लोगों की बोलचार उभर आयी थी। उसके काम की भी जून थी। अगर बैल को पानी भी नहीं देगा तो लोग क्या कहेंगे? उसकी बात कौन जानता है।

बंसन उठ खड़ा हुआ, तभी राजी घर से गगरा लिए निकली और कहने लगी, "सो गये क्या, कुछ पशु-परानी का भी ध्यान नहीं है! भिनसारे के गये अब तो लौटे हो!"

बंसन पाटी का सहारा लेकर उठ खड़ा हुआ, बछिया के गले का फंदा निबुका दिया। वह तेजी से चरनी की ओर भागी। वह बैल की ओर मुड़ गया। खूँटे से पगहा छोड़ दिया और पैर से ठोकर देकर बैल को उठाने के लिए टिकोरी मारने लगा पर बैल टस-से-मस

नहां हुआ। यहाँ तक कि उसने सिर भी ऊपर नहीं किया। उनने वहीं उठगी लाठी लेकर बैल को दो-एक खोभा मारा, पर उसका एक भी रोआँ नहीं हिला।

राजी गगरे का पानी चरही में उड़ेल कर दौड़ी हुई आयी और बंसन की ओर देखकर बिगड़ने लगी ''पाप सवार है क्या तुम्हारी खोपड़ी पर, कितने दिन से एक तिरुन भी तो नहीं गया बेचारे के मुँह में और ऊपर से तुम खोभा मार रहे हो? कहीं मर गया तो अषाढ़ में किसके गले में जुआ डालोगे!''

बंसन चुप रहा।

राजी ने उस चुप्पी को समझा और चिढ़कर बोली, ''तुम्हारी किस्मत में अब अन्न लिखा ही नहीं तो क्या वह बेचारा अन्न बन जाये। गाँव में किसके घर पेट भर भोजन हो रहा है इस ठाले में। भगवान का कोप ही तो है साल-साल भर मरने-जरने पर भी एक महीने का दाना-भूसा घर में नहीं आता।''

बंसन का कंठ सूख रहा था। उसका तवे की तरह जलता हुआ शरीर राजी की बात से और भी लाल हो गया और तपे हुए राँगे की तरह थरथराने लगा।

उसे लगा, वह जोर से नहीं बोल पायेगा, चीखने से वह गिर पड़ेगा, क्योंकि आँखों के आगे अँधेरा छा गया था, जिसमें जाने कितनी काली-पीली परछाइयाँ तेजी से चक्कर काटने लगी थीं। वह जमीन में पैर गड़ाकर खड़ा था और जोर-जोर से साँस लेकर संभलने की कोशिश करते हुए बोल रहा था, ''पी लिया है न दो गिलास रस, बड़ी बात सूझेगी!''

''क्या कहा . . . . !'' राजी हक्की-बक्की आँख फाड़कर उसे देखती रही और बंसन के हाथों की पकड़ लाठी की मूठ पर और भी सख्त हो गयी।



मन्नू भंडारी

(जन्म 1937 ई०)

कहानी विधा को नई दिशा देने वाली कहानीकार मन्नू भंडारी का जन्म मानपुरा मध्यप्रदेश में हुआ। आज की हिन्दी कहानी में आपका विशिष्ट नाम है। आप कहानी को नई दिशा देने वाली पहली पंक्ति की लेखिका हैं, जिन्होंने सस्ती, भावुकता भरी जनानी कहानियाँ नहीं बल्कि जीवन को सीधे समझने और जाँचने वाली कहानियाँ लिखी हैं। आपने आधुनिकता को फैशन के रूप में नहीं बल्कि हमारी बदलती हुई परिस्थिति के सन्दर्भ में स्वीकार किया है।

मन्नू भण्डारी मुख्यत: कहानीकार के रूप में प्रसिद्ध हैं। आपके कई कहानी संग्रह प्रसिद्ध हैं। आपकी कहानियों में यही सच है, तीसरा आदमी, रानी माँ का चबूतरा, अकेली, आते-जाते यायावर, शायद, एखाने आकाश नाईं, त्रिशंकु आदि विशेष प्रसिद्ध हैं। आपकी कुछ कहानियों पर फिल्में भी बनाई गयी हैं। आपके द्वारा लिखा गया उपन्यास 'आपका बंटी' भी विशेष प्रसिद्ध है।

बंद दराजों का साथ

प्रस्तुत कहानी में मन्नू भंडारी ने मध्यवर्गीय परिवार का चित्रण किया है। जो परिवार टूटा हुआ है। पति और पत्नी अलग-अलग रहते हैं। परंतु स्त्री हमेशा किसी पुरुष का महारा चाहती है। और फिर वही पुराना किस्सा उभरकर सामने आता है।

14. बन्द दराजों का साथ

उसकी मेज बहुत बड़ी थी। और तीन दराजों में बँटी हुयी थी। बायीं ओर वाली दराज व्यक्तिगत थी, बीच वाली पारिवारिक और दाहिनी को चाहें तो सामाजिक कह लें। यह विभाजन मंजरी का ही किया हुआ था, जो उसने काफी दिनों बाद किया था, उन दिनों जबकि उन दोनों के बीच भी एक विभाजन-रेखा खिंच गयी थी। आरम्भ के दिनों में तो उसका ध्यान दराजों की ओर क्या जाता, मेज की ओर भी नहीं गया था। तब सारे घर में पलंग ही सबसे अधिक आकर्षक लगता था और मन करता था कि दिन के चौबीस घण्टे किसी तरह रात के आठ घण्टों में ही सिमट आयें। विपिन का शरीर उसके सम्पूर्ण व्यक्तित्व का पर्याय बना हुआ था और यह बात कभी दिमाग में भी नहीं आती थी कि शरीर से परे भी उसका कोई व्यक्तित्व और अस्तित्व हो सकता है, सम्बन्ध और सम्पर्क हो सकते हैं, कोई अपना जीवन हो सकता है।

पर यह सब बहुत शुरू की बातें थीं। उन दिनों की, जब मनों में कोई भेद नहीं था। और इसीलिए जैसे सब तरफ के भेद्र मिट गये थे। सारी ऋतुएँ वसन्त के समान सुहानी लगती थीं। आराम के समय काम की चुस्ती का अहसास होता रहता था और काम करने में भी अजीब तरह का आराम मिलता था।

वह बसंत की सुहावनी सुबह थी। गीले बालों की ढीली-सी चोटी बाँधकर बड़े मन से मंजरी ने मटर-चिउड़ा बनाया था। हर काम व्रह बड़े मन से करती थी और उसके गीत सारे घर में गूँजा करते थे। वह ट्रे में सारा सामान सजाकर ले गयी, तभी उसने विपिन को कुछ कागजों में डूबे हुए पाया।

"इतना मगन होकर क्या पढ़ रहे हो?" उसने हँसते हुए पूछा था तो विपिन हल्के से सकपका गया और सारी बात को टालते हुए उसने ढेर-सा चिउड़ा अपनी प्लेट में डाला था। मंजरी को लगा कि उस दिन वह कुछ जरूरत से ज्यादा तारीफ करने के मूड में आया हुआ है। वह लगातार प्रसंगहीन बातें किये चला जा रहा था, पर सब कुछ मंज़री के मन को छुए विना ही निकल गया।

रोज की तरह दोनों साथ ही घर से निकले थे, पर वह एक पीरियड के बाद ही सिरदर्द का बहाना करके घर लौट आयी। सारे रास्ते उसका सिर चकराता रहा था। घर में घुसते समय जाने क्यों लगा, जैसे वह किसी और के घर घुस रही है।

वह सीधी टेबल के पास गयी। टेबल पर पड़ी पुस्तकें, फाइलें, कागज पत्तर सब उसने पलटे, पर वे कागज नहीं थे। उसे खुद आश्चर्य हो रहा था, एक झलक भर में उसने कैसे उन कागजों की ऐसी गहरी पहचान कर ली। उसने झटके से पहली दराज खोली। उसमें कुछ मित्रों और रिस्तेदारों के पत्र थे। एक-दो विवाह के निमंत्रण पत्र थे, अपाइण्टमेण्ट की डायरी थी, अखबारों की कुछ कतरनें थी। उसने बीच की दराज खोली। उसमें पासबुक और चैक-बुक थीं, मकान और बिजली के बिल की रसीदें थीं। एक ओर तहाये कुछ रूमाल पड़े थे। उसने तीसरी दराज खींची तो वह न खुली। उसमें ताला लगा हुआ था। दराज में ताला होना न कोई ऐसी अनहोनी बात है, न ही ऐसी भयंकर, फिर भी वह भीतर तक काँप उठी थी। उसने सारा घर छान मारा पर उसे चाभियाँ नहीं मिलीं। और तब सचमुच ही उसका सिर बुरी तरह दर्द करने लगा और वह मुँह पर साड़ी का पल्ला डालकर सारे दिन लेटी रही।

उस रात जब वह सोयी तो भीतर-ही भीतर उसके कुछ घुमड़ता रहा था। रुलाई का वेग जैसे फूट पड़ना चाहता था, फिर भी उसने सोच लिया था कि वह जब तक सारी बात का पता नहीं लगा लेगी, तब तक एक शब्द भी नहीं कहेगी। रोज की तरह विपिन ने उसे बाँहों में लिया था पर न जाने क्यों, उसने भीतर-ही-भीतर महसूस किया कि उसके साथ सोने वाला, उसे प्यार करने वाला विपिन सम्पूर्ण नहीं है, केवल खण्ड है, एक टुकड़ा। सम्पूर्ण विपिन उसे हमेशा फूल की तरह हल्का लगता था, पर खण्डित विपिन का बोझ उसके लिए जैसे असह्य हो उठा। बार-बार उसका मन करता रहा कि वह उसी से साफ-साफ पूछ ले, लड़ ले, पर दराज का ताला जैसे उसकी जबान पर आकर लग गया था। वह सारी रात कसमसाती रही पर बोला उससे कुछ नहीं गया था।

औरत की नजर यों ही बड़ी पैनी होती है, फिर उस पर यदि सन्देह की सान चढ़ जाये तो आकाश-पाताल चीरने में भी उसे देर नहीं लगती। दूसरे दिन ही वह बन्द दराज उसके सामने खुली पड़ी थी, जो विपिन की निहायत निजी और व्यक्तिगत थी। कुछ डायरियाँ, एक महिला और बच्ची की तस्वीरें, पत्र, काँच के ट्यूब में गोलियाँ और क्रोध, घृणा,

दु:ख की मिली-जुली भावनाओं का तूफान उसके मन में उठ रहा था। सिर थामकर वह घण्टों वहीं बैठी रही थी। फूट-फूटकर रोती रही थी। उसे बराबर लग रहा था कि जिसे धरती समझकर उसने पैर रखा था, वहाँ शून्य था, कि जैसे वह एकाएक बेसहारा हो गयी है। उसे अपने घर की छत और दीवारें सब हिलती नजर आने लगी थीं।

क्योंकि दराज में केवल विपिन का अतीत ही नहीं था, वर्तमान भी था और उसमें भविष्य की योजनायें भी। वह जैसे-जैसे विपिन के व्यक्तिगत जीवन के निकट होती जा रही थी, अनजाने और अनचाहे ही विपिन से दूर होती जा रही थी। धीरे-धीरे मनों की यह दूरी शरीर में भी फैलती चली गयी थी। और वे अनायास ही एक दूसरे के लिए निहायत अपरिचित-से हो गये। फिर उनके हिसाब अलग रहने लगे, सम्पर्क और सम्बन्ध अलग हुए।

दोनों के पास अपने-अपने तर्क थे और दोनों ही इस बात को अच्छी तरह जानते थे कि ये तर्क उन्हें कहीं नहीं ले जायेंगे। फिर भी हर तीसरे दिन घंटों बहसें होती थीं और उसकी समाप्ति मंजरी के आँसू ही करते थे। अब स्नेह का स्थान संदेह ने ले लिया था और तर्कों ने सद्भावना के रेशे-रेशे उधेड़ दिये थे।

तब मंजरी अपने ही घर में बहुत अकेली हो उठती थी और सब कुछ बड़ा बीरान लगने लगा था। हर काम बोझ लगने लगा था, खाली समय और भी बोझिल। वह घंटों किताब खोले बैठी थी, पर पंक्तियाँ केवल आँखों के नीचे से गुजरती थीं, मन उसमें अछूता रहता था। कॉपियाँ देखने बैठती तो उसकी साथिनें मजाक करती थीं कि इम्तिहान की कॉपियाँ देख रही है या प्रूफ। विपिन से सम्बन्ध क्या गड़बड़ाया था उसकी समस्त इन्द्रियों के आपसी सम्बन्ध गड़बड़ा गये थे।

वह घर के सारे खिड़की-दरवाजे खुले रखती थी फिर भी लगता रहता था कि साफ हवा के अभाव में घर की हवा धीरे-धीरे जहरीली होती जा रही है, और कोई है, जो उसके देखते-देखते मरता जा रहा है। न वह उसे बचा सकती है और न ही निर्दयतापूर्वक मार सकती है। यों भीतर-ही-भीतर वह तरह-तरह के संकल्प करती थी, पर उसने उन्हें कभी विचारों से आगे नहीं बढ़ने दिया, क्योंकि घर में बहुत जल्दी ही एक तीसरा प्राणी आने वाला था। उसने उसके और अपने दुर्भाग्य को साथ-साथ ही कोसा था, पर उसके बावजूद

मन में कहीं एक हल्की-सी आशा झाँकने लगी थी, शायद यह अनागत ही उसके बीच में कहीं सेतु बन जाये।

पर पलभर के भीतर-ही-भीतर उसने अच्छी तरह जान लिया कि इस युग में आशा करना ही मूर्खता है, क्योंकि आज जिन्दगी का हर पहलू, हर स्थिति और हर सम्बन्ध एक समाधानहीन समस्या हो कर ही आता है, जिसे सुलझाया नहीं जा सकता, केवल भोगा जा सकता है। जिसमें आदमी निरन्तर बिखरता और टूटता चलता है और वह भी दो साल तक और बिखरी और टूटी थी। विपिन मन में कहीं हलका-सा आश्वस्त महसूस करने लगा था कि मंजरी ने शायद उस सबको स्वीकार कर लिया है, कि शायद अब वह कटेगी नहीं।

पर ऐसा नहीं। शादी की पाँचवीं सालगिरह थी। वह दिन सारे अर्थ खो चुकने पर भी दिन तो बना ही हुआ था। यों इस दिन न चाहने पर भी वह अपने को बहुत दुर्बल महसूस करती थी। उसकी यातना कई गुना बढ़ जाती थी। पर इस बार उसने वैसा कुछ भी अनुभव नहीं किया और बड़े आग्रह से विपिन से कहा था कि वह उसे संध्या के पाँच बजे ला-बोहीम में मिले।

ला-बोहीम का अंधेरा कोना। आस-पास की मेजें खाली थीं और अपनी मेज पर लटकती बत्ती को उसने बुझा दिया था। अँधेरा होने के साथ ही मंजरी के मन में एक क्षण को यह बात आयी थी कि आज के इस अँधेरे से ही वे चाहें तो अपनी जिन्दगी में कितनी रोशनी ला सकते हैं। उस समय भीतर-ही-भीतर कुछ कसका भी था, पर दूसरे ही क्षण उसने अपने को सहज बना लिया, यह सोचकर कि यह निरी भावुकता है और भावुकता को लेकर आदमी केवल कष्ट पा सकता है, जी नहीं सकता। मंजरी जीना चाहती थी—अपने लिए और बच्चे के लिए।

और तीन घण्टे के बाद जब वे वहाँ से निकले तो उसे स्वयं आश्चर्य हो रहा था कि कैसे वह इतने सहज और तटस्थ ढंग से सारी बात कर सकी, मानों ये सारे निर्णय उसने अपने लिए नहीं, किसी और के लिए किये हों। वह खुद जानती है कि औरतें कभी पूरी तरह तटस्थ नहीं रह सकतीं, खास कर ऐसे सांघातिक क्षणों में तो वे बात भी नहीं कर सकतीं, केवल रो सकती हैं, भार-भार रो सकती हैं।

उससे भी आश्चर्य उसे तब हुआ था, जब अपने निर्णय को व्यावहारिक रूप देने के लिए वह अपना सारा सामान बटोर कर, दो महीने की छुट्टी ले दिल्ली से विदा हुई थी।

विपिन ने बच्चे को बहुत प्यार किया था और एक बार उसे भी फिर बहुत ठण्डे स्वर में कहा था—"मैं दिल्ली छोड़ दूँगा। इस सबके बाद मुझसे यहाँ रहा भी नहीं जायेगा। तुम शायद यहीं लौटकर आना पसंद करोगी। इस घर को अपने नाम ही रहने दो।"

मंजरी तब तक यह तय नहीं कर पायी थी कि उसे कहाँ रहना है, क्या करना है। केवल एक विश्वास था कि जिस सहज ढंग से वह सारी स्थिति में उबरी है, उसी तरह नई जिन्दगी का रास्ता भी खोज लेगी। फिर भी उसने घर अपने ही नाम रहने दिया। मानसिक तनाव के ऐसे विकट क्षणों में भी उसकी व्यावहारिक बुद्धि कुण्ठित नहीं हुई, तभी उसे लगा कि विपिन से ब्याह करके आने वाली मंजरी पूरी तरह मर चुकी है। यह तो उसकी लाश से पैदा हुई दूसरी मंजरी है।

ऐन समय पर बहुत बड़ा नाटक होने की सम्भावना थी। बच्चे को लेकर कुछ हो सकता, पर कुछ नहीं हुआ। ऊपर से बड़े सहज ढंग के कुछ औपचारिक से वाक्यों का आदान-प्रदान हो रहा था और भीतर से मन मरे हुए थे। ट्रेन, प्लेटफार्म और प्लेटफार्म पर खड़े विपिन को पीछे छोड़कर आगे बढ़ गयी थी और सब कुछ मंजरी ने सूखी आँखों से देखा ही था।

जब सब पीछे छूट गया तो भीतर से एक गहरी निःश्वास निकली थी, शायद मुक्ति की। अपने ही शरीर का फोड़ा जब सूख जाता है तो मरी हुई खाल को शरीर से खींचकर अलग करते समय जैसी भावना आती है, कुछ-कुछ वैसी ही।

दो महीने बाद वह उसी घर में लौटी थी। उसने उसे देखकर पूछा था कि वह बीमार रह कर आयी है, वह बहुत दुबली हो गयी है, उसका चेहरा सूखा और काला हो गया है। उसे स्वयं महसूस होता था, पर उस सबसे कुछ भी अन्तर नहीं पड़ता था। उसने वहाँ आकर सबसे पहले चश्मा लिया, क्योंकि उसकी आँखें एकाएक ही बहुत कमजोर हो गयी थीं।

घर ज्यों-का-त्यों था, केवल वे सब चीजें वहाँ से हटा दी गयी थीं जिनके साथ विपिन की स्मृति लिपटी थी, वह मेज भी। मेज वाला कोना खाली रहने पर भी उसके मन में भय और वितृष्णा की मिली-जुली भावना पैदा किया करता था। विपिन से मुक्त होकर भी जैसे उस मेज से पूरी तरह मुक्त नहीं हो पा रही थी।

घर के बचे हुए सामान पर धूल की परतें जमी हुई थी। एक दिन तो वह उस घर में कुछ नहीं कर पायी पर दूसरे दिन ही वह सफाई में जुट गयी। विपिन का कोई भी चिह्न वहाँ नहीं था, सिवाय एक-दो भरे हुए एस ट्रे के। एक बार उन्हें खाली करते समय जरूर उसका हाथ काँपा था। घर साफ हो गया फिर भी उसे बराबर लगता रहा था कि एक बड़ी ही परिचित गन्ध है जो उसमें बराबर बनी हुई है। वह किधर भी जाये, कहीं भी रहे उस गन्ध के अहसास से मुक्त नहीं हो पाती थी।

तब उसने घर के सारे खिड़की दरवाजे खुले रखने शुरू कर दिये थे। बाहर की साफ हवा, धूप आने के लिए। धीरे-धीरे खुले दरवाजों से हवा और धूप के साथ-साथ अनेक तरह की गन्ध, अनेक चेहरे और अनेक नजरें भी झाँकने लगी थीं। कुछ तरस लिए और कुछ आत्मीयता लिए। उसके साहस की प्रशंसा भी की जाती थी। और कभी-कभी दबी जबान से यह समाचार भी दिया जाता था कि विपिन को किसी बच्ची और किसी महिला के साथ देखा है। विपिन के लिए स्वर में भर्त्सना रहती थी, पर उसे न अपनी प्रशंसा छूती थी, न विपिन की भर्त्सना।

पहले साल परिचित और नए चेहरों की संख्या काफी बढ़ी थी, फिर धीरे-धीरे घटने लगी थी। हमदर्दी के लिए बात पुरानी हो चुकी थी और उन्हें लगता था कि वे अपना फर्ज अदा कर चुके हैं। सिर्फ एक चेहरा था जो निरन्तर बना रहा और घर में बहुत भीतर तक प्रवेश कर गया। पर मंजरी किसी प्रकार की हड़बड़ी में नहीं थी। हाँ, इतना जरूर हुआ कि एकाएक उसे बहुत अकेलापन लगने लगा, नौकरी बोझ लगने लगी और जीवन नीरस।

कभी-कभी यह अकेले क्षणों में सोचती, कि नहीं, वह अब जिन्दगी की राहों को बदलेगी नहीं। जिस तटस्थता से उसने सब कुछ झेला और अपने को टूटने नहीं दिया, उससे उसे लगने लगा था जैसे वह बहुत बड़ी हो गयी है, मेच्योर हो गया है। इस उम्र में यह सब शायद उसके लिए सम्भव नहीं होगा। पर जब भी वह चेहरा करीब आता, अनायास ही उसकी उम्र के दस साल कहीं चले जाते और तब वह सोचती कि नहीं, कहीं कुछ नहीं बिगड़ा है। दिनों ने गुजर कर उसकी उम्र की संख्या में जरूर वृद्धि कर दी है पर भावनाएँ तो आज भी अछूती ही हैं। जिन्दगी के वह सुनहरे दिन, जब उसे अपनी भावनाओं को खर्च करना था, मरे हुए सम्बन्धों की लाश ढोने में ही बीत गये।

फिर भी उसने तीन साल तक कोई निर्णय नहीं लिया। उसने सोचा था, केवल सोचा ही नहीं, चाहा था, बहुत सच्चाई और ईमानदारी से चाहा था कि जैसे वह विपिन के सम्बन्ध से उबर गयी थी, इस अकेलेपन से भी उबर जाये। पर उसने पाया कि वह अपने बेटे के सहारे अपने अकेलेपन से लड़ने की कोशिश कर रही है। उसे खुद महसूस हुआ कि असित के प्रति उसका व्यवहार कहीं असन्तुलित होता चला जा रहा है। लोगों ने उसे दबी दबी जबान से सलाह दी थी कि उसे असित को होस्टल में भेज देना चाहिए। पहले वह बराबर विरोध करती रही थी—कुछ आर्थिक कारणों से और कुछ इसलिए कि उसे भेजकर वह स्वयं कितनी अकेली हो जायेगी। पर फिर उसे खुद लगा था कि वह अपना अकेलापन खत्म करने के लिए बच्चे का सारा भविष्य खत्म किए दे रही है।

तब उसने दो निर्णय एक साथ लिए थे। वह असित को होस्टल भेज देगी। वह अपना अकेलापन समाप्त करने के लिये सही और स्वाभाविक मार्ग ही अपनायेगी।

उसे इस बात पर खुशी भी हुई थी और हल्का-सा गर्व भी कि स्थिति बहुत अधिक बिगड़ने से पहले ही वह एकाएक तटस्थ होकर चीजों को उनके सही रूप में देख लेती है और फिर उन्हीं के अनुरूप निर्णय ले पाती है।

दिलीप अब साथ आ गया था और इसीलिए जिन्दगी के दस वर्ष एकदम चले गये थे। घर बदल गया था और बिल्कुल नये ढंग से सजाया गया था। नये घर की साज-सज्जा में हमेशा कुछ-न-कुछ गुनगुनाते हुए वह काम किया करती थी। नौकरी उसने छोड़ दी थी, क्योंकि साथियों की नजरों से झाँकती हिकारत उससे बरदाश्त नहीं होती थी। वैसे भी इस काम से वह बहुत ऊब चुकी थी। अब दिसम्बर की सर्दी में सारी रात किसी बाँहों में गरमाये रहने के बाद जब उसकी अलस आँखें खुलतीं तो सामने की ड्रेसिंग टेबिल पर उसे अपने प्रसाधन की अनेक चीजें सजी हुई दिखाई देती थीं, छमाही इम्तिहान की कापियों का गट्ठर नहीं। तब मन बहुत हल्का और आश्वस्त हो जाता था।

छुट्टियों में असित घर आया था। दिलीप को वह बराबर घर में देखता रहता था,सो मंजरी को दोनों को पराजित करने वाला संकट नहीं झेलना पड़ा। असित के आने से मंजरी बहुत प्रसन्न थी और उसे समझ नहीं आता था कि उसे क्या खिलाये, कहाँ घुमाये। दिलीप के जाते ही वह उसे लेकर निकल जाती। दिसम्बर की सुहानी धूप सारी दिल्ली को बेहद

सुहाना और उत्फुल्ल बनाकर सड़कों-मैदानों पर फैली रहती थी। शाम को वे लौटते, तो दोनों के हाथों में असित के फरमाइशी पैकेट होते थे।

छुट्टियाँ समाप्त होने पर असित लौटने लगा। उसके स्कूल के बच्चों का पूरा ग्रुप था। स्कूल से छः महीने का बिल भी आया था। दिलीप ने यों ही कह दिया—यह स्कूल काफी मँहगा है, इस महीने यों भी काफी खर्च हो गया तो मंजरी के चेहरे पर एक हल्की-सी छाया तैर गयी। बात साधारण थी और सच्ची भी। असित दिलीप का बच्चा होता तब भी वह यह बात कह सकता था। पर असित दिलीप का बच्चा नहीं था और क्योंकि सन्दर्भ दूसरा था इसलिए बात का अर्थ भी दूसरा हो गया। दिलीप ने शायद स्थिति को भाँप लिया और सारी बात को सहज बनाने के लिए कहा, "क्या जमाना आ गया है, हम इतना पढ़ लिए हैं, पर ऐसी लम्बी-चौड़ी फीस नहीं दी।" पर बात फिर भी शायद सहज नहीं हो पाई थी। तब मंजरी को पहली बार अपनी नौकरी छोड़ने पर अफ़सोस हुआ।

और उसके बाद धीरे-धीरे फिर उस घर में एक अदृश्य मेज उभर आयी थी, पर वह मेज दिलीप के कमरे में नहीं, मंजरी के कमरे में आई थी और वह दो दराजों में बँटी हुई थी— एक व्यक्तिगत, एक पारिवारिक। व्यक्तिगत दराज में असित के फरमाइशी-पत्र, उसके चित्र, उसके स्कूल की रिपोर्ट और विपिन के कुछ औपचारिक पत्र थे, जिसमें यह आश्वासन दिया गया था कि असित का आधा खर्चा दिया करेगा।

और मेज का विभाजन फिर पहले की तरह मन और शरीरों में होता हुआ सारे घर में फैल गया था। बाहर से कुछ नहीं था—न बात-चीत में, न व्यवहार में। पर अनजाने और अनचाहे ही भीतर से जैसे मन बँट गये थे, जिन्दगी बँट गयी। इस बार हालाँकि प्रसंग और स्थितियाँ दूसरी थीं, पर बँटने की पीड़ा नहीं थी, वैसी ही थी।

रात में, दिन में, लेटे-लेटे मंजरी न जाने क्या-क्या सोचा करती! जब तब विपिन भी याद आने लगा और आश्चर्य यह है कि उसका याद आना अब उतना बुरा भी नहीं लगता। फिर भी अहसास से मुक्त नहीं हो पाती कि विपिन ने केवल अपनी जिन्दगी को ही टुकड़ों में नहीं काटा, कितने कौशल से वह उसकी जिन्दगी को टुकड़ों में काट गया है कि आगे उसे सारी जिन्दगी ही उन टुकड़ों की अभिशप्त छाया में काटनी होगी कि वह अब भी अपनी सम्पूर्ण जिन्दगी नहीं जी पायेगी।



कमलेश्वर

(जन्म 1932 ई०)

नई कहानी परम्परा के प्रसिद्ध लेखक कमलेश्वर का जन्म मैनपुरी में हुआ। आपने इलाहाबाद विश्वविद्यालय से शिक्षा प्राप्त की है। एम० ए० के पश्चात आपने कुछ दिन शोध कार्य किया है। फिर आकाशवाणी पर भी कार्यरत रहे हैं। आप 'नई कहानियाँ' और 'सारिका' जैसी पत्रिका के सम्पादक रह चुके हैं।

कमलेश्वर ने अपने विद्यार्थी जीवन में ही 'राजा निरबंसिया' जैसी कहानियाँ लिखकर ख्याति अर्जित की थी। आपके कई उपन्यास तथा कहानी संग्रह प्रसिद्ध हैं। आपकी कस्बे का आदमी, गर्मियों के दिन, जार्ज पंचम की नाक, दिल्ली में एक मौत जैसी कहानियाँ विशेष प्रसिद्ध हैं।

दिल्ली में एक मौत

प्रस्तुत कहानी में कहानीकार ने महानगरीय जीवन का परिचय दिया है। जो ऊपर से सुन्दर, सभ्य तो नजर आता है, परंतु उसकी यह सुन्दरता एवं सभ्यता कागज के फूलों जैसी बनावटी है। उसमें न दूसरों के प्रति कोई संवेदना है और न ही कोई भावना। वह तो बस औपचारिकता, जिसे हम कोरी औपचारिकता कह सकते हैं, उससे ही अन्य लोगों के साथ पेश आता है और अपने ही व्यक्तिगत जीवन में उलझा हुआ है।

15. दिल्ली में एक मौत

चारों तरफ कुहरा छाया हुआ है। सुबह के नौ बज चुके हैं, लेकिन पूरी दिल्ली धुन्ध में लिपटी हुई है। सड़कें नम हैं। पेड़ भीगे हुए हैं। कुछ भी साफ नहीं दिखायी देता। ज़िन्दगी की हलचल का पता आवाज़ों से लग रहा है। ये आवाजें कानों में बस गयी हैं। घर के हर हिस्से से आवाज़ें आ रही हैं। वासवानी के नौकर ने रोज़ की तरह स्टोव जला लिया है, उसकी सनसनाहट दीवार के उस पार से आ रही है। बगल वाले कमरे में अतुल मवानी जूते पर पालिश कर रहा है—ऊपर सरदारजी मूँछों पर फिक्सो लगा रहे हैं—उनकी खिड़की के परदे के पार जलता हुआ बल्ब बड़े मोती की तरह चमक रहा है। सब दरवाज़े बन्द हैं, सब खिड़कियों पर परदे हैं, लेकिन हर हिस्से में ज़िन्दगी की खनक है। तिमंजिले पर वासवानी ने बाथरूम का दरवाज़ा बन्द किया है और पाइप खोल दिया है।

कुहरे में बसें दौड़ रही हैं। जूँ-जूँ करते भारी टायरों की आवाज़ें दूर से नजदीक आती हैं और फिर दूर हो जाती है। मोटर-रिक्शे बेतहाशा भागे चले जा रहे हैं। टैक्सी का मीटर अभी किसी ने डाउन किया है। पड़ोस के डाक्टर के यहाँ फोन की घण्टी बज रही है और पिछवाड़े गली से गुज़रती हुई कुछ लड़कियाँ सुबह की शिफ्ट पर जा रही हैं।

सख्त सर्दी है। सड़कें ठिठुरी हुई हैं और कोहरे के बादलों को चीरती हुई कारें और बसें हार्न बजाती हुई भाग रही हैं। सड़कों और पटरियों पर भीड़ है, पर कुहरे में लिपटा हुआ हर आदमी भटकती हुई रूह की तरह लग रहा है।

वे रूहें चुपचाप धुन्ध के समुद्र में बढ़ती जा रही हैं—बसों में भीड़ है। लोग ठण्डी सीटों पर सिकुड़े बैठे हैं और कुछ लोग बीच में ही ईसा की तरह सलीब पर लटके हुए हैं— बाँहें पसारे, उनकी हथेलियों में कीलें नहीं, बस की बर्फीली, चमकदार छड़ें हैं।

और ऐसे में दूर से एक अरथी सड़क पर चली आ रही है।

इस अरथी की खबर अखबार में है। मैंने अभी-अभी पढ़ी है। इसी मौत की खबर होगी। अखबार में छपा है—आज रात करोलबाग के मशहूर और लोकप्रिय बिज़नेस मैगनेट सेठ दीवानचन्द की मौत इरविन अस्पताल में हो गयी। उनका शव कोठी पर ले आया गया है। कल सुबह नौ बजे उनकी अरथी आर्यसमाज रोड से होती हुई पँचकुइयाँ श्मशान भूमि में दाह-संस्कार के लिए जायेगी।—

और इस वक्त सड़क पर आती हुई यह अरथी उन्हीं की होगी। कुछ लोग टोपियाँ लगाये और मफलर बाँधे खामोशी से पीछे-पीछे आ रहे हैं। उनकी चाल बहुत धीमी है।

कुछ दिखायी पड़ रहा है, कुछ नहीं दिखायी पड़ रहा है, पर मुझे ऐसा लगता है कि अरथी के पीछे कुछ आदमी हैं।

मेरे दरवाज़े पर दस्तक होती है। मैं अखबार एक तरफ रखकर दरवाज़ा खोलता हूँ। अतुल मवानी सामने खड़ा है।

"यार, क्या मुसीबत है, आज कोई आयरन करने वाला भी नहीं आया, ज़रा अपना आयरन देना।" अतुल कहता है तो मुझे तसल्ली होती है। नहीं तो उसका चेहरा देखते ही मुझे खटका हुआ था कि कहीं शवयात्रा में जाने का बवाल न खड़ा कर दे। मैं उसे फौरन आयरन दे देता हूँ और निश्चिन्त हो जाता हूँ कि अतुल अब अपनी पैण्ट पर लोहा करेगा और दूतावासों के चक्कर काटने के लिए निकल जायेगा।

जब से मैंने अखबार में सेठ दीवानचन्द की मौत की खबर पढ़ी थी, मुझे हर क्षण यही खटका लगा था कि कहीं कोई आकर इस सर्दी में शव के साथ जाने की बात न कह दे। बिल्डिंग के सभी लोग उनसे परिचित थे और सभी शरीफ, दुनियादार आदमी थे।

तभी सरदारजी का नौकर ज़ीने से भड़भड़ाता हुआ आया और दरवाज़ा खोलकर बाहर जाने लगा। अपने मन को और सहारा देने के लिए मैंने उसे पुकारा, "धर्मा! कहाँ जा रहा है?"

"सरदारजी के लिए मक्खन लेने।" उसने वहीं से जवाब दिया तो लगे हाथ लपककर मैंने भी अपनी सिगरेट मँगवाने के लिए उसे पैसे थमा दिये।

सरदारजी नाश्ते के लिए मक्खन मँगवा रहे हैं, इसका मतलब है, वे भी शव-यात्रा में शामिल नहीं हो रहे हैं। मुझे कुछ राहत मिली। जब अतुल मवानी और सरदारजी का इरादा शव-यात्रा में जाने का नहीं है तो मेरा कोई सवाल ही नहीं उठता। इन दोनों का या वासवानी-परिवार का ही सेठ दीवानचन्द के यहाँ ज्यादा आना-जाना था। मेरी तो चार-पाँच बार की मुलाकात-भर थी। अगर ये लोग ही शामिल नहीं हो रहे हैं तो मेरा सवाल ही नहीं उठता।

सामने बारजे पर मुझे मिसेज़ वासवानी दिखायी पड़ती हैं। उनके खूबसूरत चेहरे पर अजीब-सी सफेदी है और होंठों पर पिछली शाम की लिपस्टिक की हल्की लाली अभी भी मौजूद है। गाउन पहने हुए ही वह निकली हैं और अपना जूड़ा बाँध रही हैं। उनकी आवाज सुनायी पड़ती है, "डार्लिंग, ज़रा मुझे पेस्ट देना, प्लीज . . . ."

मुझे और राहत मिलती है। इसका मतलब है कि मिस्टर वासवानी भी मैयत में शामिल नहीं हो रहे हैं।

दूर आर्यसमाज रोड पर वह अरथी बहुत आहिस्ता-आहिस्ता बढ़ती आ रही है—

अतुल मवानी मुझे आयरन लौटाने आता है। मैं आयरन लेकर दरवाजा बन्द कर लेना चाहता हूँ, पर वह भीतर आकर खड़ा हो जाता है और कहता है, "तुमने सुना, दीवानचन्द की कल मौत हो गयी?"

"मैंने अखबार में पढ़ा है, " मैं सीधा-सा जवाब देता हूँ, ताकि मौत की बात आगे न बढ़े। अतुल मवानी के चेहरे पर सफेदी झलक रही है, वह शेव कर चुका है। वह आगे कहता है, "बड़े भले आदमी थे दीवानचन्द।"

यह सुनकर मुझे लगता है कि अगर बात आगे बढ़ गयी तो अभी शव-यात्रा में शामिल होने की नैतिक ज़िम्मेदारी हो ज़ायेगी, इसलिए मैं कहता हूँ, "तुम्हारे उस काम का क्या हुआ?"

"बस, मशीन आने-भर की देर है। आते ही अपना कमीशन तो खड़ा हो जायेगा। यह कमीशन का काम भी बड़ा बेहूदा है। पर किया क्या जाये? आठ-दस मशीनें मेरे थ्रू निकल गयीं तो अपना बिज़नेस शुरू कर दूँगा।" अतुल मवानी कह रहा है, "भाई, शुरू-शुरू में जब मैं यहाँ आया था तो दीवानचन्द ज़ी ने बड़ी मदद की थी मेरी। उन्हीं की वजह से कुछ कामधाम मिल गया था। लोग बहुत मानते थे उन्हें।"

फिर दीवानचन्द का नाम सुनते ही मेरे कान खड़े हो जाते हैं। तभी खिड़की से सरदारजी सिर निकालकर पूछते हैं, "मिस्टर मवानी, कितने बजे चलना है?"

"वक्त तो नौ बजे का था। शायद सर्दी और कुहरे की वजह से कुछ देर हो जाये।" वह कह रहा है और मुझे लगता है कि यह बात शव-यात्रा के बारे में हीं है।

सरदारजी का नौकर धर्मा मुझे सिगरेट देकर जा चुका है और ऊपर मेज़ पर चाय लगा रहा है। तभी मिसेज वासवानी की आवाज़ सुनायी पड़ती है, "मेरे ख्याल से प्रमिला ज़रूर पहुँचेगी, क्यों डार्लिंग?"

"पहुँचना तो चाहिए—तुम ज़रा जल्दी से तैयार हो जाओ।" कहते हुए मिस्टर वासवानी बारजे से गुजर गये हैं।

अतुल मुझसे पूछ रहा है, "शाम को कॉफी-हाउस की तरफ आना होगा?"

"शायद चला आऊँ," कहते हुए मैं कम्बल लपेट लेता हूँ और वह वापस अपने कमरे में चला जाता है। आधी मिनट बाद ही उसकी आवाज़ फिर आती है,"भई, बिजली आ रही है?"

मैं जवाब दे देता हूँ, "हाँ, आ रही है।" मैं जानता हूँ कि वह इलेक्ट्रिक रॉड से पानी गरम कर रहा है, इसीलिए उसने यह पूछा है।

"पालिश।" बूट-पालिश वाला लड़का हर रोज़ की तरह अदब से आवाज़ लगाता है और सरदारजी उसे ऊपर से पुकार लेते हैं। लड़का बाहर बैठकर पालिश करने लगता है और वह अपने नौकर को हिदायतें दे रहे हैं, खाना ठीक एक बजे लेकर आना। पापड़ भूनकर लाना और सलाद भी बना लेना। . . . "

मैं जानता हूँ, सरदारजी का नौकर पाजी है। वही कभी वक्त से खाना नहीं पहुँचाता और न उनके मन की चीजें ही पकाता है।

बाहर सड़क पर कुहरा अब भी घना है। सूरज की किरणों का पता नहीं है। कुलचे-छोले वाले वैष्णव ने अपनी रेड़ी लाकर खड़ी कर ली है। रोज़ की तरह वह प्लेटें सजा रहा है, उनकी खनखनाहट की आवाज़ आ रही है।

सात नम्बर की बस छूट रही है। सूलियों पर लटके ईसा उसमें चले जा रहे हैं और क्यू में खड़े लोगों को काउक्टर पेशगी टिकिट बाँट रहा है। हर बार जब भी वह पैसे वापस करता है तो रेज़गारी की खनक यहाँ तक आती है। धुन्ध में लिपटी रूहों के बीच काली वरदीवाला कंडक्टर शैतान की तरह लग रहा है।

और अरथी अब कुछ और पास आ गयी है।

"नीली साड़ी पहन लूँ?" मिसेज़ वासवानी पूछ रही हैं।

वासवानी के जवाब देने की घुटी-घुटी आवाज़ से लग रहा है कि वह टाई की नॉट ठीक कर रहा है।

सरदारजी के नौकर ने उनका सूट ब्रश से साफ करके हैंगर पर लटका दिया है और सरदारजी शीशे के सामने खड़े पगड़ी बाँध रहे हैं।

अतुल मवानी फिर मेरे सामने से निकला है। पोर्ट फोलियो उसके हाथ में है। पिछले महीने बनवाया हुआ सूट उसने पहन रखा है। उसके चेहरे पर ताज़गी और जूतों पर चमक है। आते ही वह मुझसे पूछता है, "तुम नहीं चल रहे हो?" और मैं जब तक पूछूँ कि कहाँ चलने का वह पूछ रहा है कि वह सरदारजी को आवाज़ लगाता है, "आइए, सरदारजी! अब देर हो रही है। दस बज चुका है।"

दो मिनट बाद ही सरदारजी तैयार होकर नीचे आते हैं कि वासवानी ऊपर से ही मवानी का सूट देखकर पूछता है, "ये सूट किधर सिलवाया?"

"उधर खान मार्केट में।"

"बहुत अच्छा सिला है। टेलर का पता हमें भी देना।" फिर वह अपनी मिसेज़ को पुकारता है, "अब आ जाओ, डियर।—अच्छा, मैं नीचे खड़ा हूँ, तुम आओ।" कहता हुआ वह भी मवानी और सरदारजी के पास आ जाता है और सूट को हाथ लगाते हुए पूछता है, "लाइनिंग इंडियन है?"

"इंग्लिश।"

"बहुत अच्छा फिटिंग है।" कहते हुए वह टेलर का पता डायरी में नोट करता है। मिसेज़ वासवानी बारजे पर दिखायी पड़ती हैं—नम और सर्द सुबह में उनका रूप और निखर आया है। सरदारजी धीरे से मवानी को आँख का इशारा करके सीटी बजाने लगते हैं।

अरथी अब सड़क पर ठीक मेरे कमरे के नीचे है। उसके साथ कुछेक आदमी हैं, एक-दो कारें भी हैं, जो धीरे-धीरे रेंग रही हैं। लोग बातों में मशगूल हैं।

मिसेज़ वसवानी जूड़े में फूल लगाते हुए नीचे उतरती हैं तो सरदारजी अपनी जेब का रूमाल ठीक करने लगते हैं। और इससे पहले कि वे लोग बाहर जायें, वासवानी मेरे से पूछता है, "आप नहीं चल रहे?"

"आप चलिए, मैं आ रहा हूँ," पर दूसरे ही क्षण मुझे लगता है कि उसने मुझे कहाँ चलने को कहा है? मैं अभी खड़ा सोच ही रहा हूँ कि वे चारों घर के बाहर हो जाते हैं।

अरथी कुछ और आगे निकल गयी है। एक कार पीछे से आती है और अरथी के पास धीमी होती है। चलाने वाले साहब शव-यात्रा में पैदल चलने वाले एक आदमी से कुछ बातें करते हैं और कार सर्र से आगे बढ़ जाती है। अरथी के साथ पीछे जाने वाली दोनों कारें भी उसी कार के पीछे सरसराती हुई चली जाती हैं।

मिसेज़ वासवानी और वे तीनों लोग टैक्सी की ओर जा रहे हैं। मैं उन्हें देखता रहता हूँ। मिसेज वासवानी ने फर-कालर डाल रखा है और शायद सरदारजी अपने चमड़े के दस्ताने उन्हें दे रहे हैं या दिखा रहे हैं। टैक्सी इधर ही आ रही है और उसमें से खिलखिलाने की आवाज़ मुझे सुनायी पड़ रही है। वासवानी आगे सड़क पर जाती अरथी की ओर इशारा करते हुए ड्राइवर को कुछ बता रहा है।

मैं चुपचाप खड़ा देख रहा हूँ और अब न जाने क्यों मुझे मन में लग रहा है कि दीवानचन्द की शव-यात्रा में कम-से-कम मुझे तो शामिल हो ही जाना चाहिए था। उनके लड़के से मेरी खासी जान-पहचान है और ऐसे मौके पर दुश्मन का साथ भी दिया जाता है।

सर्दी की वजह से मेरी हिम्मत छूट रही है—पर मन में कहीं शव-यात्रा में शामिल होने की बात भीतर ही कोंच रही है।

उन चारों की टैक्सी अरथी के पास धीमी होती है। मवानी गरदन निकाल कर कुछ कहता है और दाहिने से रास्ता काटते हुए टैक्सी आगे बढ़ जाती है।

मुझे धक्का सा लगता है और मैं ओवरकोट पहनकर, चप्पलें डालकर नीचे उतर आता हूँ। मुझे मेरे कदम अपने-आप अरथी के पास पहुँचा देते हैं और मैं चुपचाप उसके पीछे-पीछे चलने लगता हूँ। चार आदमी कन्धा दिये हुए हैं और सात आदमी साथ चल रहे हैं—सातवाँ मैं ही हूँ। और मैं सोच रहा हूँ कि आदमी के मरते ही कितना फर्क पड़ जाता है। पिछले साल ही दीवानचन्द ने अपनी लड़की की शादी की थी तो हजारों की भीड़ थी। कोठी के बाहर कारों की लाइन लगी हुई थी . . . .

मैं अरथी के साथ-साथ लिंक रोड पर पहुँच चुका हूँ। अगले मोड़ पर पँचकुइयाँ श्मशान-भूमि है।

और जैसे ही अरथी मोड़ पर घूमती है, लोगों की भीड़ और कारों की कतार मुझे दिखायी देने लगती है। कुछ स्कूटर भी खड़े हैं। औरतों की भीड़ एक तरफ खड़ी है। उनकी बातों की ऊँची ध्वनियाँ सुनायी पड़ रही हैं। उनके खड़े होने में वही लचक है जो कनाटप्लेस में दिखायी पड़ती है। सभी के जूड़ों के स्टाइल अलग-अलग हैं। मरदों की भीड़ से सिगरेट का धुआँ उठ-उठकर कुहरे में घुला जा रहा है और बात करती हुई औरतों के लाल-लाल होंठ और सफेद दाँत चमक रहे हैं और उनकी आँखों में एक गरूर है....

अरथी को बाहर बने चबूतरे पर रख दिया गया है। अब खामोशी छा गयी है। इधर-उधर बिखरी हुई भीड़ शव के इर्द-गिर्द जमा हो गयी है और कारों के शोफर हाथों में फूलों के गुलदस्ते और मालाएँ लिये अपनी मालकिनों की नज़रों का इन्तज़ार कर रहे हैं।

मेरी नज़र वासवानी पर पड़ती है। वह अपनी मिसेज़ को आँख के इशारे से शव के पास जाने को कह रहा है और वह है कि एक औरत के साथ खड़ी बात कर रही हैं। सरदारजी और अतुल मवानी भी वहीं खड़े हुए हैं। शव का मुँह खोल दिया गया है और सब औरतें फूल और मालाएँ उसके इर्द-गिर्द रखती जा रही हैं। शोफर खाली होकर अब कारों के पास खड़े सिगरेट पी रहे हैं।

एक महिला माला रखकर कोट की जेब से रूमाल निकालती हैं और आँखों पर रखकर नाक सुरसुराने लगती है और पीछे हट जाती है।

और अब सभी औरतों ने रूमाल निकाल लिये हैं और उनकी नाकों से आवाजें आ रही हैं।

कुछ आदमियों ने अगरबत्तियाँ जलाकर शव के सिरहाने रख दी हैं। वे निश्चल खड़े हैं।

आवाज़ों से लग रहा है कि औरतों के दिल को ज्यादा सदमा पहुँचा है।

अतुल मवानी अपने पोर्टफोलियो से कोई कागज़ निकालकर वासवानी को दिखा रहे हैं। मेरे ख्याल से वह पासपोर्ट का फार्म है।

अब शव को भीतर श्मशान-भूमि में ले जाया जा रहा है। भीड़ फाटक के बाहर खड़ी देख रही है। शोफरों ने सिगरेटें या तो पी लीं या बुझा दी हैं और वे अपनी-अपनी कारों के पास तैनात हैं।

शव अब भीतर पहुँच चुका है।

मातमपुरसी के लिए आदमी और औरतें अब बाहर की तरफ लौट रहे हैं।

कारों के दरवाजे खुलने और बन्द होने की आवाजें आ रही हैं। स्कूटर स्टार्ट हो रहे हैं और कुछ लोग लिंक रोड बस-स्टाप की ओर बढ़ रहे हैं।

कुहरा अभी भी घना है। सड़क से बसें गुज़र रही हैं और मिसेज वासवानी कह रही हैं, "प्रमिला ने शाम को बुलाया है, चलोगे न डियर? कार आ जायेगी। ठीक है न?"

वासवानी स्वीकृति में सिर हिला रहा है।

कारों में जाती हुई औरतें मुस्कराते हुए एक-दूसरे से विदा ले रही हैं और बाई-बाई कीं कुछ-एक आवाज़ें आ रही है। कारें स्टार्ट होकर जा रही हैं।

अतुल मवानी और सरदारजी भी लिंक रोड बस-स्टाप की ओर बढ़ गये हैं और मैं खड़ा सोच रहा हूँ कि अगर मैं भी तैयार होकर आया होता तो यहाँ से सीधा काम पर निकल जाता। लेकिन अब तो साढ़े ग्यारह बज चुके हैं।

चिता में आग लगा दी गयी है और चार-पाँच आदमी पेड़ के नीचे रखी बेंच पर बैठे हुए हैं। मेरी तरह वे भी यूँ ही चले आये हैं। उन्होंने ज़रूर छुट्टी कर रखी होगी, नहीं तो वे भी तैयार होकर आते।

मेरी समझ में नहीं आ रहा है कि घर जाकर तैयार होकर दफ्तर जाऊँ या एक मौत का बहाना बनाकर आज छुट्टी ही ले लूँ—आखिर मौत तो मौत ही है और शव-यात्रा में शामिल भी हुआ हूँ।

● ● ●

मेहरुन्निसा परवेज़

समसामयिक महिला कहानीकारों में आप प्रसिद्ध हैं। आपकी कहानियों का मुख्य विषय आज की व्यवस्था में जीते यातनाओं से भरे व्यक्तित्व हैं। या तो वे पारिवारिक जीवन में पड़ी दरार के रूप में हैं या दलित वर्ग अथवा दरिद्र, रोजी-रोटी की समस्या से पीसते परिवारों की पीड़ा के चरित्र के रूप में है। आपकी कहानियों का निश्चित उद्देश्य है और आपका दृष्टिकोण सहानुभूतिपूर्ण है।

मेहरुन्निसा परवेज़ दीन-दुखियों की पीड़ा से द्रवीभूत होकर, अभिभूत होकर ही कहानियाँ लिखती हैं। आपकी कहानियाँ—मेरी प्रिय कहानियाँ, 'टहनियों पर धूप' तथा 'गलत पुरुष' आदि संग्रहों में संकलित हैं।

हत्या एक दोपहर की

प्रस्तुत कहानी में लेखिका ने एक अत्यंत समृद्ध जीवन और सुखी दाम्पत्य जीवन व्यतीत करने के बाद वैंधव्य के दिन काटती युवती की कथा का मार्मिक चित्रण किया है।

16. हत्या एक दोपहर की

दोपहर का ठहरा हुआ एकांत था, चुप . . . . खामोश-सा। ताड़ के पेड़ से दो कौवे आपस में लड़ते हुए एक-दूसरे को नोचते-चिमटते हुए लद से धरती पर आ गिरे। ताड़ के वृक्ष से झड़ी-सूखी नुकीले आकार की पत्तियाँ इधर-उधर सारे बगीचे में छिटकी पड़ी थीं। कल ही नौकरों ने सारा बगीचा साफ किया है और फिर आज देखो इतना कचरा जमा हो गया।

नूपुर लंबे बरामदे में रखी चार आराम कुर्सी में से एक पर चुप-सी बैठी एकटक एकांत सहमी हुई दोपहर को एक छोर से दूसरे छोर तक निहार रही थी। अक्सर ऐसा ही तो होता है उसके साथ। उस दिन मम्मी डैडी से कह रही थीं—"अपनी नूपुर बाला ऐसे चुपचाप आकर बरामदे में बिना हिले-डुले बैठी रहती है कि मुझे तो लगने लगता है जैसे वह भी बगीचे का कोई अंग हो। कोई संगमरमरी मूर्ति हो जो सिर्फ बगीचे की चुप्पी की साथिन हो।"

गेंदे की लंबी क्यारियों के पास आकर धूप ठहर-सी गईं थी। गेंदे के पीले, हल्दी रंग के चटक फूल धूप में और चटक गए थे। गेंदे के फूल हथेली भर-भर बड़े हो आए थे बिल्कुल सूरजमुखी के आकार के। मम्मी ने उन्हें बीज के लिए रख छोड़ा था, पर फूल के वजन से बीच में ही नाजुक शाख लचककर नीचे झुक जाती थी और धीरे-धीरे फूल सड़ने लगता था। फूलों का वजन शाखा सभाल नहीं पा रही थीं। उम्मी परेशान थीं, पर उमेश ने अपनी बढ़ईगिरी का कमाल दिखाया था, बाँस की खपच्चियों से उसने हर पौधे के पास गेट-सा बनाकर उन्हें सहारा दे दिया था। मम्मी खुश थीं—चलो उमेश ने अपना सारा दिन बरबाद कर उनके फूलों को बचा ही लिया था, वरना इस साल बीज के लिए भी फूल नहीं मिल पाते।

ताड़ के ऊँचे-ऊँचे पेड़ों से सारा कंपाउण्ड भरा है। इन ताड़ के पेड़ों के झुरमुट की वजह से ही आधा भाग बेकार पड़ा है, वहाँ कुछ भी बोया नहीं जा सकता और फिर सारा दिन तमाम चिड़ियाँ, कौवे अलग शोर मचाये रहते हैं। कभी-कभी तो ये पक्षी इतना शोर मचाने लगते हैं कि मम्मी कमरे से उन्हें धमकाने निकल आती हैं। मम्मी उस वक्त उसी

अंदाज में गुस्से से खीजी रहती हैं जैसे कोई ढेर सारे ऊधमी बच्चों को उनकी लगातार ऊधम और शोर करने पर धमकाने निकली हों, और उन्हें बाहर आया देखकर उनकी मुद्रा को देखते ही बच्चे नौ-दो ग्यारह हो जायेंगे। मम्मी बहुत विश्वास में भर कर बाहर आती, थोड़ी कोशिश भी करती, पर अंत में बड़बड़ाती—'उफ् इन परिंदों ने तो नाक में दम कर दिया है।' मम्मी लौट जाती और पक्षी बिलकुल किसी की नाराजगी-गुस्से से अनजान अपनी ऊधम जारी रखते थे।

तभी गेट के पास स्कूल की नीले रंग की मिनी बस आकर ठहरी। नूपुर उठ खड़ी हुई कलाई पर बँधी घड़ी देखी, डेढ़ बज गया था, पिंटू के आने का समय।

पिंटू का चेहरा एकदम उतरा हुआ, सूखा-सूखा था।

'क्या हुआ बेटे को?' उसने पुकारते हुए पिंटू के हाथ से बॉक्स ले लिया।

'मम्मी, मैडम ने मेरे मेस के मार्क्स काट लिये', पिंटू रुँआसा हो गया।

'अरे दिखाओ पेपर', उसने पिंटू को गोद में बैठा लिया। पेपर पर लाल स्याही से पहले चालीस बटा पचास लिखा था फिर उसे काटकर पच्चीस बटा पचास लिखा गया था, 'ऐसा क्यों हुआ बेटा?'

'मम्मी, मैडम ने मेरे नंबर काट लिये। वह राजू है न, कप्तान साहब का बाबा, वह फर्स्ट आया है क्योंकि उसकी मम्मी मैडम को हमेशा डिनर पर इनवाइट करती हैं, आप तो कभी नहीं बुलातीं उन्हें डिनर पर, हर समय राजू ही फर्स्ट आता है', पिंटू के स्वर में विद्रोह था, असफलता का रोष उसके एक-एक शब्द में बोल रहा था।

उसने आश्चर्य में भरकर पिंटू को देखा, कितनी सच्चाई से पिंटू बात की तह तक पहुँच गया था, तो स्कूलों में भी राजनीति चलती है। उसने पिंटू की पीठ थपथपा दी।

बंगला दो भागों में बाँट दिया गया था। नदी का छोर वाला हिस्सा पापा का आफिस था और इस तरफ वाले हिस्से में वे लोग रहते थे।

बरामदे के आखिरी छोर पर जहाँ से तुलसी के पौधों की कतारें थीं वहीं पर हरे रंग की जाली का पिंजरा रखा है जिसमें पहले ढेर सारी चिड़ियाँ कैद रहती थीं। धीरे-धीरे सब खत्म हो गईं। अब यह आखिरी चिड़िया बच गई है। हरी दुम और काले बालों वाली यह

चिड़िया सारा दिन ऊपर के हिस्से से नीचे, और नीचे के हिस्से से ऊपर चढ़ती रहती है। अकेलेपन से उदास बाहर निकलने को व्याकुल सी वह सारा दिन जाली के पास सटी बगीचे में उतर आई चिड़ियों की बोली बड़े ध्यान से सुना करती है।

चिड़ियों का यह शौक उमेश को है, उसी ने अपने हाथों से खूबसूरत जालीदार पिंजरा बनाया है।

चेन से बँधें डॉली और पप्पी जोर-जोर से उछल-उछलकर भौंक रहे थे। नूपुर ने गेट की ओर देखा, गेट खुला रह गया था और दो मेमने घुस आए थे।

जरूर आया ने गेट खुला छोड़ दिया होगा। हमेशा ऐसा ही करती है। कहो तो साफ मुकर जाती है—नहीं मेम साहब, मैंने गेट खुला नहीं छोड़ा। जरूर दीनदयाल ने छोड़ा होगा।

ऊबकर चुप रह जाना होता है। डॉली और पप्पी छोटे बच्चों को देखकर ज्यादा भौंकते हैं। दिन भर दोनों को बाँधकर रखा जाता है और दस बजे रात से इन्हें चेन से खोल दिया जाता है। सारे बँगले में हल्की-हल्की पदचाप की आवाज आती रहती है। हवा के साथ उनकी शरीर की गंध मिलती रहती है।

X X X

पापा दौरे से लौट आए थे और आरामकुर्सी पर बैठे थे। सामने स्टूल पर पैर थे। ट्रे में खाली की गई प्याली और केटली रखी थी। क्वाटर प्लेट में केक का चूरा पड़ा था। उनके आगे अखबारों का अंबार लगा था और पापा अखबार में डूबे थे। यही होता था, पापा आठ-दस दिन बाद लौटते और सारे अखबार इकट्ठे मँगवाकर एक-एक पढ़ते रहते थे। पता नहीं, बासी खबरों को ताजी चाय के साथ सिप करने में उन्हें क्या मजा मिलता था, पर यह उनकी खास आदत थी, इसलिए जब पापा दौरे पर रहते दीनदयाल इतनी हिफाजत से सहेज कर सारे अखबारों को रखता मानो नोट जमा कर रहा हो। मम्मी के कमरे से, उमेश के कमरे से, नूपुर के कमरे से वह अखबारों को बटोरता फिरता था। एक दिन का भी अखबार मिस हुआ तो दीनदयाल की शामत आ जाती थी।

उनकी इस खास आदत से सब परिचित थे, पर जैसे सारी जवाबदारी दीनदयाल पर छोड़कर निश्चिंत रहते थे, पता तो था ही।

डॉली और पप्पी उनके आस-पास दुम हिलाती मंडरा रही थीं। पापा स्नेह से भरे दोनों के सर पर हाथ फेरते अखबार पढ़ रहे थे। डॉली अपने दोनों पैर उठाकर पापा की बाँह को स्नेह से अपने पैरों में बाँध रही थी। कितना अजीब है, ईश्वर ने हरेक को प्यार करने का, प्यार दर्शाने का अलग-अलग ढंग दिया है। पप्पी एक मक्खी को पंजा मार-मार कर खेल रही थी, मक्खी पप्पी को चकमा देकर दूसरी जगह बैठ जाती है और पप्पी खिसिया जाती है। डॉली और पप्पी दोनों माँ-बेटी हैं पर देखने वाले दोनों को बहन ही समझते हैं।

स्मृतियाँ! जिन्हें वह बहुत पीछे छोड़ आई है, आज भी उसे परेशान करती है, तंग करती हैं। विपिन का चेहरा, उनकी हँसी, उनका स्पर्श, उनके साँसों की गंध आज भी ज्यूँ के त्यूँ उसके आस-पास मंडराती है।

स्मृतियाँ, जिनसे वह दूर भागना चाहती है पर वह उसको हमेशा-हमेशा घेरे रहती हैं, अपने में जकड़े रहती हैं। भाग्य ने दगा किया और दुर्भाग्य हमेशा साथ रहा। विपिन से दोस्ती, फिर शादी, फिर गृहस्थी की लंबी-चौड़ी परेशानियों की फेहरिस्त। शराब का नशा और एक दिन यही नशा विपिन को बहका कर ले गया।

दो भाइयों की जायदाद का आपसी झगड़ा। विपिन को धोखा देकर छोटे भाई ने ज्यादा जायदाद हड़प ली थी। विपिन नौकरी पर था, सारी जायदाद छोटा भाई देखता था और एक दिन विपिन की सारी जायदाद झगड़े में फँसा दी। इसी धोखे को, इसी तकलीफ को विपिन सह नहीं सका और वह शराब में डूबने लगा, जो उसे भी ले डूबी। उसने विपिन को हमेशा समझाया, दुलारा, डाँटा पर विपिन लाइन पर नहीं आया।

इस तरह अपने को शराब में डुबो देना आत्महत्या करना नहीं तो और क्या? इस आत्म-हत्या को रोकने की उसने भरसक कोशिश की पर कोई फायदा नहीं हुआ और वह विपिन को खो बैठी। इतनी कम उम्र में चला गया था विपिन। गुजरे हुए कुछ दिन स्वप्न-से याद रह गए थे और आज भी स्मृतियों में अटके हुए थे।

कैप्टेन विपिन। शराब पीना फौज की नौकरी से ही शुरू कर दिया था। लड़ाई के जमाने में मौत होती तो शहीद कहलाते पर घरेलू परेशानियों ने उसे मार डाला।

विपिन लाम पर चला जाता और वह पापा के पास रहती, शांत दिनों में हेडक्वार्टर में विपिन के साथ रहती।

थोड़े-से मुट्ठी-भर दिन आज भी हरे-भरे थे। भरा शरीर, लाल रंग और चेहरे पर बड़ी-बड़ी मूँछें और दबंग बनाती थी।

कितनी बातें करता था विपिन। रात दोनों अँगीठी के पास बैठे काट देते थे।

'पता है नूपुर, हमें वहाँ क्या खाने को मिलता है? कोई भी जानवर मारा, उसका गोश्त धोया, नमक, मिर्च जो भी पास हुआ छिड़का फिर उसे पत्तों से ढक दिया, पतली सींक से सिलकर बड़ा-सा बंडल बना दिया, फिर उस पर गीली मिट्टी छाप दी, बस तैयार है भोजन। जहाँ हम लोग जंगलों में आग जलाते हैं रात काटने, उस दहकती हुई आग में उस बंडल को खिसका दिया। आधे घंटे में वह बंडल लाल दहक जायेगा, उसको बड़ी-सी लकड़ी से खींचा, मिट्टी झड़ाई, पत्ते अलग किये और बस डिनर शुरू।'

'बाप रे, यह तो एकदम आदिम सभ्यता हो गई?'

'अरे डियर, उस वक्त वहीं नियामत लगता है, फिर यार, कहीं तो यह भी नसीब नहीं होता न।'

इसी तरह की कितनी बातें बताता था विपिन। सुनते-सुनते रात कट जाती थी आँखों में। अभी भी विपिन का वह जानदार ठहाका जो दीवारों को थर्रा देता था आज भी सुनाई पड़ता है, और वह चौंककर बाहर आ जाती है। क्या विपिन आ गया? ऐसे ही तो वह कभी भी आ धमकता था ।

गेट के पास से ही उसकी सीटी सुनाई देती थी। रात के दो बजे हों या तीन वह तुरंत उसे ले जाता था। मम्मी कितना रोकती पर वह कभी नहीं रुकता, 'तुरंत बस चलो, अभी इसी वक्त।'

जिन कपड़ों में वह होती उसी में ले जाता। उसका यह पौरुष हमको हमेशा प्रभावित करता था। घर से चलने में हड़बड़ी करता और ठीक जंगल में गाड़ी रोक देता—यार, रात यहीं काट देंगे। सुबह चल पड़ेंगे।'

'तो घर पर ठहर जाते न', वह खीज जाती।

'अरे डियर, फौजी जिंदगी ऐसे ही होती है। तुम एक फौजी की पत्नी हो न! इसे क्या कहते हैं पता है? फौजी प्यार।'

विपिन का ठहाका रात के सन्नाटे में जंगल में गूँज जाता। जीप के परदे बंद करता विपिन उसे ओवरकोट में समेट लेता।

'पता है फौजी ओवरकोट इतने ढीले, इतने वजनी, इतने बड़े क्यों होते हैं? लड़कियों को समेटने।'

'हूँ' वह आँखों से धमकाती 'कितनी लड़कियों को समेटा?'

'बहुत-सी, पर सबका नाम नूपुर है, हर बार तुम नई जो हो जाती हो न डार्लिंग।

इतना प्यार देने वाला। कितनी गरमाहट थी उस प्यार में कि तरसे हुए दिनों को वह अपने प्यार से गरमाये रहता। कभी भी नाराज नहीं होता, कभी वह रूठ जाती तो तुरंत उसे पुचकार कर कहता—जिनसे हम प्यार करते हैं न, उससे रूठते नहीं; आखिर रूठकर जाओगी भी कहाँ? लौटकर इन्हीं बाँहों में आना है न।'

और सच! उसकी दुनिया उन बाँहों के घेरे में सिमट गई थी। जो बाँहें सहारा देने हमेशा-हमेशा फैली रहें, फिर औरत के भटकने का सवाल ही कहाँ पैदा होता है।'

पर जो बाँहें सहारा देने फैली थीं, एक दिन शून्य में गुम हो गई। कितने सपने थे विपिन के, अक्सर वह कहता—'यार देखो, फौज से रिटायर्ड होकर मैं बढ़िया फार्म तैयार करूँगा, मकान को फर्स्ट क्लास कोठी में बदल देंगे। फौजी जिंदगी में यही तो आराम है। जल्दी रिटायर्डर होकर छुट्टी पाओ, बूढ़ा करके नहीं भेजती सरकार, बाद में सदा तुम्हारे साथ रहूँगा, सारी तुम्हारी शिकायतें दूर कर दूँगा। इतनी बातें, इतना प्यार करेंगे कि तुम बोर हो जाओगी, कहोगी जाओ, लड़ाई पर भागो न।'

जब भी बच्चों की बात निकलती वह झट कह देता—'अरे, अभी नहीं, बीच में चीं-पों को क्यों चाहती हो? मैं क्या तुम्हें बच्चा नहीं लगता?' और झट विपिन बच्चों की नकल कर उसे हँसा देता। पिंटू को विपिन देख भी नहीं पाया था।

यादें इतनी कड़वी तकलीफ देह होती हैं उसे पहले पता नहीं था, यादों का ताँता लग जाता और उसे पता भी नहीं चलता, कब आँसू बह-बहकर गालों पर सूख चुके हैं।

उस दिन पता नहीं कैसे पापा उन्हें अपना फॉरेस्ट का जंगल दिखाने तैयार हो गये थे सिर्फ विपिन की जिद पर। जगदलपुर से वह लोग जीप पर कुरंदी गाँव गए थे। यहाँ पापा की फॉरेस्ट नर्सरी थी।

लकड़ी का गेट, जिसे खोलते ही एक साथ कई-कई सूरजमुखी के फूलों ने सर हिला-हिला कर स्वागत किया था। इतने बड़े थाल भर-भर बड़े सूरजमुखी थें वहाँ। यहाँ नये सिरे से सागौन की खेती हो रही थी। बीच में ढेर सारे सागौन के बीज़ पड़े थे, काले-काले बेर की गुठलियों के आकार के। कई-कई एकड़ पर यह काम चालू था।

एक ओर शिशु सागौन के पौधे थे, दूसरी ओर थोड़े बड़े फिर और बड़े पेड़ थे। सागौन की यही कतारें जो कल विशाल जंगल में बदल जाएँगी। ऊँचे-ऊँचे पेड़, बड़े-बड़े हाथी के कान की तरह पत्ते, उनमें लगे सुंदर-से गोल-गोल फल। सागौन जो सत्तर के फारेस्ट की सबसे ऊँची जात वाला पौधा था। बीचोबीच फूस के छप्पर का एक मिट्टी का रेस्ट हाउस।

सूरजमुखी के पौधों की कतार जहाँ ढाल पर खत्म होती थीं, वहीं पर तालाब था, जिसमें ढेर-ढेर कमल के फूल खिले थे, कागज की तरह हवा में फरफराते उनके पत्ते। जंगल में इतनी सुंदर नर्सरी होगी, उसने सोचा न था।

'नूपुर, सूरजमुखी के इन फूलों से प्यार करना सीखो, इनमें कितनी भक्ति है अपने प्रिय के लिए, वह जिधर होता है यह भी अपना सुंदर मुख उधर कर लेते, हैं न।' विपिन ने धीरे से कहा।

'चलो, पहले तुम लोगों को चीड़ के जंगल में ले चलें' पापा ने कहा।

'चीड़, यहाँ बस्तर में?' विपिन ने आश्चर्य से कहा।

'हाँ, देखना हमने यहाँ बस्तर को भी कश्मीर बना दिया है।'

साल-भर के दो-दो फुट के पौधे थे, नुकीली सुई से चुभते पत्ते। दूर से अपनी ओर आकर्षित करते पर छूने से चुभते थे। शमादान की तरह उठी टहनियाँ, टहनियों पर छोटे-छोटे फूल जैसे डंठल। दस एकड़ पर फैला चीड़ का जंगल हर छोर से दृष्टि को बाँध लेता था। वास्तव में बहुत आश्चर्य की बात थी, सागौन जैसे लौह-वृक्ष की पहाड़ी, पथरीली धरती पर उग आये नाजुक चीड़ को देख हैरानी हो रही थी।

'है न आश्चर्य की बात?' पापा ने गर्व से सीना तानकर कहा, 'सोचो आज से दस साल बाद यह पूरा इलाका कितना सुंदर हो जायेगा?'

लौटकर वह लोग दोबारा फारेस्ट नर्सरी में दाखिल हुए। बाहर टेबल लगाकर कुर्सियाँ लगा दी गई थीं याने जंगल में पूरी तरह से स्वागत का इंतजाम किया गया था।

जहाँ कुर्सियाँ पड़ी थीं वहीं से सागौन के नन्हें-नन्हें पौधे हवा के साथ हुमक-हुमक कर किलकारियाँ मार रहे थे। सागौन की कतार के बाद छोटा-सा घेरा डालकर किचन गार्डन लगाया गया था।

'यहाँ जंगली जानवर नहीं आते?'

'आते हैं न, अक्सर। रोज रात पानी पीने तालाब पर आते हैं।' फारेस्टर ने बताया, 'आजकल आदमखोर चीता भी इस इलाके में घूम रहा है, कई लोगों ने मारने की कोशिश की पर सफलता नहीं मिली।'

'आदमखोर चीता, आदमखोर शेर से भी खतरनाक साबित होता है, एक बार उसके मुँह आदमी का खून लग जाये बस समझो साक्षात् मौत घूम रही है, क्योंकि यह शेर से ज्यादा चालाक भी होता है। इतनी आसानी से दबे पाँव पास सोये आदमी को उठाकर ले जायेगा कि कानों-कान खबर नहीं लगेगी', पापा ने बताया और तब एक बारगी सहम-से गये।

अँधेरा बढ़ गया था, साथ-साथ जंगली जानवरों की आवाज से जंगल गूँजने लगा था। थके हारे मजदूरों के सामूहिक गीतों के बोल उस भयानक वातावरण में अजीब-से लग रहे थे। इन आदिवासियों में अजीब बात है, यह खुश होते हैं तब भी गाते हैं, दुखी होते हैं तब भी गाते हैं और जब थके होते हैं तब भी गाते हैं। सूने जंगल में दूर से एक चिड़िया चिल्लाई। उसके जवाब में दूर जंगल से दूसरी चिड़िया चिल्लाई मानों एक-दूसरे को सतर्क कर रही हों।

'पता है यह कौन-सी चिड़िया है? फाख्ता है फाख्ता' विपिन बोला।

'अच्छा।'

शायद यही हँसी नूपुर की आखिरी थी। लौटकर विपिन बीमार पड़ गया और फिर हमेशा-हमेशा के लिए उसके होंठों पर शांति उतर आई थी।

स्मृतियाँ जो उसे पत्थर बना गई थीं, सख्त पत्थर। तूफान के तेज झोंकों ने उसको किनारे ला पटका था और किनारे का पत्थर अपनी जगह से कभी नहीं हिलता। श्राप में जिया जीवन, ढोया जीवन। पापा नहीं चाहते थे कि वह अपने अतीत से चिपकी रहे। वह

उसे दुनिया के तालाब में अकेले तैरना सिखाना चाहते थे। पापा की मर्जी देखकर ही उसने हाँ की थी। भोपाल से आर्डर आते ही उसे लगा था उसके बर्फ से जमे शरीर में चेतना की गरमी आ रही है।

चार्ज लेते वक्त उसे लगा था कि उसकी भी अहमियत है। कोई ऐसी जगह है जहाँ उसकी शख्सीयत की कदर है। और वह काम में लगन से जुट गई। जीप से देहातों का दौरा करना, आफिस का काम देखना, फिर घर लौटकर पिंटू की नन्हीं-नन्हीं बाँहों को घेरकर थककर सो जाना, बस।

आफिस यदि उसे आफिस, कहा जा सकता है तो निश्चित ही वह आफिस था, वरना हर काम में ढिलाई। लेखापाल उसे चुस्त व दुरुस्त देखकर परेशान था। सारे स्टाफ में खलबली थी, ऊँघते लोगों की नींद में खलल हो गई थी। सब उसे तीखी और चुभती आँखों से घूरते थे।

यह टेबल पर बैठती तो सारे कागजात तैयार चाहती और लेखापाल एक कागज के लिए दस-दस आलमारियाँ टटोलता और उसे लगता गुस्से से उसकी बत्तीसी जम रही है। रोजाना भोपाल से आई डाक में एक न एक डी०ओ० लेटर जरूर होता, कभी त्रैमासिक रिपोर्ट न पहुँचने पर, तो कभी छमाही बजट न भेजने पर। लेखापाल से जब सवाल होता वह मुख्य सेविका को देखता। मुख्य सेविका उसकी वकालत करती और वह गुस्से से खामोशी से जब्त कर लेती। इसका कारण भी था। जिस दिन वह चार्ज लेने गई थी, मुख्य सेविका ने ही उसका स्वागत किया था और पुरानी चेयरमैन की भरपूर बुराई कर यह भी जतला दिया था कि वह डायरेक्ट मिनिस्टर की केंडीडेट है। डायरेक्ट मिनिस्टर का लेटर लेकर आई है वह। उसी दिन उसने महसूस कर लिया था कि वह जरूर चेयरमैन है पर इस आफिस में मुख्य सेविका का सिक्का चलता है और वह यह बात बर्दाश्त नहीं कर सकती थी। वह मौके की तलाश में थी।

उसका बार-बार आफिस आना, उन लोगों को अखरने लगा था। दौरा कर उसने एक बात मान ली थी कि दौरा हुआ ही नहीं, पर हर महीने कर्मचारियों के टी०ए० बिल पर उसे साइन करना पड़ता था। पुरानी चेयरमैन को इन लोगों ने रबर स्टाम्प बना रखा था, केवल साइन तक ही, और उससे भी यही चाहते थे। उसने तुरंत उनके झूठे टी०ए० बिल रोक

दिये, जिससे मुख्य सेविका ने रोब से उसे सलाम करना छोड़ दिया। उसने अपने कागजात लेखापाल के जरिये भेजना शुरू किया। उसने तुरंत उन कागजात को फेंक दिया 'मुख्य सेविका के पेपर आप क्यों लाये हैं? आप उनके चपरासी हैं?'

थोड़ी देर में परदा उठाकर वह आई आते ही उसने टेबल पर कागज रख दिये। उसने सर उठाकर उसे देखा।

'तुम्हें विश करना नहीं आता? कहाँ तक पढ़ी हो?'

'आता है।'

'फिर . . . . वह गुस्से से काँप गई। उसने उसके सारे पेपर्स उठाये और उसके मुँह पर फेंक दिये। वह चीखती हुई बाहर चली गई और वह खुद चेयर छोड़ उठी और आफिस से बाहर हो गई।

जीप के पास महेश खड़ा था अपनी उसी चिरपरिचित मुस्कान लिये। अचानक उसे देख वह चौंक पड़ी। कालेज के जमाने का सहपाठी इस तरह, एकदम अचानक, इतने वर्षों बाद उसके सामने खड़ा था?''

'बहुत गुस्सा हो।'

'हाँ', वह झेंप गई, तुम कब आये, मैं यहाँ हूँ, तुम्हें किसने बताया?'

'तुम्हारे पापा ने . . . .मैं घर गया था, सबसे मिल आया, तुम्हारे पिंटू से भी। . . . . अब मैं यही ट्रांसफर पर आ गया हूँ।'

'अच्छा, पापा ने बताया मैं यहाँ हूँ', उसे आश्चर्य-सा हुआ।

'चलो लौट चलें', महेश ने कहा और उसे कंधे से छुआ, 'नूपुर, तुम गुस्से में नहीं, मुस्कुराती भली लगती हो, इस तरह अपने को पत्थर बनाने की कोशिश मत करो।'

'महेश, तुम नहीं जानते . . . .' वह कह भी नहीं पाई और आँखें डबडबा आईं, उसने आँखें मोड़ लीं। जीप भाग रही थी।

'तुम अपने लिये आईंदा इस तरह अंधेरे सीलन-भरे खोहों का निर्माण नहीं करोगी। तुम हँसती, बातें करती और रोशनी में नहाती ही अच्छी लगती हो।'

'नहीं . . . . नहीं मैं पत्थर बने रहना चाहती हूँ। मुस्कुराना तो हम भूल गए महेश। अकेले भागते-भागते थक गए हैं। पिंटू है, वरना पता है, हम कब के विपिन के पास चले गए होते।'

'कितनी बचकानी बातें करती हो तुम', महेश ने उसके हाथ को छुआ और उसके बर्फ से ठंडे हाथ काँप गए भय से।

पोर्च की छत से सफेद गुब्बारे-से फूले, नन्हें-नन्हें फूलों की टहनियाँ लटकती थीं। कितने अविश्वसनीय फूल! कभी अपना अस्तित्व कायम नहीं कर सके। हमेशा हर बार जब भी निगाहें उन पर पड़ती हैं, लगता वह जीते-जागते फूल नहीं हैं बल्कि कागज के बने हुए बनावटी फूल हैं। ऐसा क्यों लगता है या कि सिर्फ उसे ही ऐसा महसूस होता है? यह बात वह कई बार सोचती है, दूसरे की राय जानने की इच्छा होती है पर बरामदा पार करते ही यह विचार दिमाग से हट जाता है। पोर्च की दीवार पर आदिवासी छतौड़ी शो के लिए लटका दी गई थी।

मनी प्लांट की एक साथ कई शाखें ऊपर चढ़ने की फिराक में थीं। जिन्हें देखने से लगता भर-भराकर ढह जायेंगी पर उनकी कोशिश बरकरार थी।

लान में शाम की चाय ली जा रही थी। धूप अभी थी पर ठंड काफी बढ़ गई थी। उसने अपने सफेद शाल को कंधों पर डाल लिया। पिंटू बड़ी-सी गेंद खेल रहा था। महेश एकटक उसका खेल देख रहा था। बिनी मेहश की पत्नी अपने नाखूनों का निरीक्षण कर रही थी। नूपुर ने उसे गौर से देखा—बिनी इन दिनों ज्यादा मोटी हो रही थी, उसकी मक्खन सी सफेद और चिकनी तह में गोश्त बढ़ रहा था। स्लीवलेस ब्लाउज उसे अच्छे नहीं लगते थे, बाँहों का गोश्त लटकता-सा दिखता था। इस बार दिल्ली से लौटने में उसने अपने बाल एकदम छोटे करवा लिये थे, जिससे उसके चेहरे पर मासूम-सा बचपना उतर आया था। कंधे के नीचे तक कटे बालों में वह अच्छी-खासी गैर-जरूरी गंभीर महिला दिखती थी, जैसे मम्मियों वाली गंभीरता ओढ़े हुए हो।

दिल्ली रहकर वह इस बार फिर अपना इलाज करवा आई थी। महेश ने बिनी के वजन का पैसा खर्च कर दिया होगा पर वह बिनी माँ नहीं बन पाई थी।

बिनी अपना नीटिंग का सामान लेने अंदर गई। उसने चोरी से उसे नोट किया, उसकी कमर का हिस्सा ज्यादा फैल गया है, चौड़ी चकले-सी कमरवाली औरतें अक्सर माँ बनने से वंचित रहती हैं। उसने कहीं पढ़ा था।

'मम्मी बहुत परेशान हैं नूपुर, आखिर ममी का एक ही बेटा हूँ न', महेश ने परेशानी में भर कर चाय का कप वापस ट्रे में रख दिया।

और उसने चौंककर महेश को देखा। महेश, यह वही है जो कालेज के जमाने में एक बार उसे पतन की ओर ले गया था, और जब वह माँ बनने वाली थी तब भागता फिरा था, तब उसने इसी महेश को कितना श्राप दिया था और खुद डाक्टर के पास दौड़ी थी। आज वह महेश उसके सामने बैठा अपनी तकदीर को कोस रहा है। आह! तकदीर भी क्या बढ़िया चीज है। अगर यह उन दिनों उसे धोखा नहीं देता तो आज बिनी की जगह वह होती और पिंटू महेश का बेटा होता।

'एक बात बोलूँ नूपुर, बुरा तो नहीं मानोगी?'

'बोलो, बुरा मानने की क्या बात है?'

'तुम चाहो तो एक बेटा दे सकती हो मुझे ....।'

'महेश, होश की दवा करो', वह लगभग चीख पड़ी 'तुम क्या कह रहे हो जानते हो?'

'मैं तंग आ गया हूँ नूपुर, मैं तुमसे नहीं भागा था, अपने-आपसे भागा था, पर अब समझ में आया कि तुम तब से अब तक मेरी जिंदगी में रहीं।'

'नहीं, तुम आगे बढ़ गए हो, हम पीछे छूट गए हैं, अब ऐसी बातें दोबारा न निकालना, तुम मेरे नेचर को अच्छी तरह से जानते हो।'

बिनी आ गई और दोनों सहसा चुप हो गये।

'ममी, क्या हमारा घर नहीं है?' पिंटू ने अचानक पूछा, 'मामा कहते हैं कि वह नौकरी करने दूर चले जायेंगे तब तुम लोग क्या खाओगे? ममी, क्या सच यह घर हमारा नहीं है?

'बेटा अपना घर यही है', उसका मन पीड़ा से छिल गया। आज पिंटू ने कितनी बड़ी बात कह दी, 'बेटा, जब मैं आफिस में रहती हूँ तब कोई तुमसे कुछ कहता है?'

'न ममी', पिंटू एकदम बड़े लोगों के अंदाज में बात को छुपा गया।

उस दिन अचानक उसने बहुत इंतजार करने पर भी देखा कि पिंटू का दूध नहीं आया तो वह खुद उठकर रसोई में गई।

'दूध आजकल नहीं मिल रहा न, इसलिए बस चाय के लिए ही दूध आ रहा है', आया ने बताया।

उसकी हिम्मत चाह कर भी फिर आया से पूछने की नहीं हुई कि पिंटू का दूध किसने बंद किया। वह नीम बेहोशी की हालत में अपने कमरे में लौट आई। पिंटू को उसने डबल रोटी और चाय नाश्ते में दे दी। पिंटू हैरान था जो ममी दूध न पीने पर सारा घर सर पर उठा लेती थी आज खुद उसे चाय दे रही थीं। और वह निढाल सी कुर्सी पर बैठ गई।

खाने के टेबल पर अचानक उसने देखा कि पिंटू कनखियों से सहमा मामा को देख रहा था। उसे थोड़ी हैरानी हुई। पिंटू बहुत सलीके से खाना खा रहा था, उसने कभी इतने सलीके से, शऊर से पिंटू को खाते नहीं देखा था। उसे लगा नन्हा पिंटू अचानक बड़ा हो गया है। पिंटू की आँखों का अनुसरण करते हुए उसने भाई को देखा तो वह अपनी प्लेट पर निगाहें जमाये मुस्करा रहा था, वैसी ही मुस्कुराहट थी जैसे किसी को गैरजरूरी डाँटने या धमकाने के बाद अक्सर होती हैं। उसे लगा वह भीतर ही भीतर तिनकों में बिखरती जा रही है।

पीछे की जगह साफ करवाकर ममी किचन गार्डन लगा रही थी। साफ किये पेड़-पौधों के अंबार को आम के तने के पास डलवाकर उस पर मिट्टी डालकर चबूतरा तैयार करवा रही थी। दीनदयाल और आया के क्वार्टर के पीछे जेल बाड़ी है। रोजाना सुबह फावड़े-तसले लिये कैदी सिपाहियों के साथ आते और जेल बाड़ी में काम करते रहते।

कभी-कभी कोई कैदी कोई गीत गाता रहता तो वह अपने कमरे से सुनती रहती। दूर से आते उसके बोल मन के दर्द को नये सिरे से कुरेद जाते और उसे आश्चर्य होता, भाषा चाहे कोई भी हो पर सब शब्दों के दर्द एक-से हैं। एक ही टीसें है, एक ही चुभन है।

'काम करो, दस नंबर' सिपाही चीखता।

दोपहर दो बजे ये लोग खाना खाने लौटते थे। वह अपनी खिड़की से इन्हें लाइन से जाते देखती। सामने, एकदम आँखों के सामने गंदी विशाल जेल की दीवार थी। इसके पार इनकी दुनिया कैसी होगी?

उसे बड़ी ही उत्सुकता होती थी। दीवार के पार से कपड़े धोने की आवाज आती रहती। गीतों के बोल सुनती रहती। वह अक्सर चुपचाप इन गीतों को सुनती बगीचे में टहलती रहती। जिस दिन गीतों के बोल अधिक दर्द से भरे होते वह अनुमान लगा लेती, आज कोई त्योहार वाला दिन है।

रोज सुबह और रात को हाजिरी होती। सिपाही की कड़कदार आवाज दूर.....दूर तक गूँजती.....नम्बर एक, नम्बर ग्यारह, नम्बर बारह!

नम्बरों की दुनियां! यहाँ नाम का कोई महत्व नहीं, बस आदमी की पहचान नंबर ही थी, इससे हटकर उसका अपना अस्तित्व नहीं! और अचानक उसे लगता है कि इस नंबरों की दुनिया में रहते-रहते उसका भी अपना नंबर है, वह भी एक कैदी है।

बैंगनी डहलिया की क्यारी में ढेर सारी घास उग आई थी। डहलिया की क्यारी के पीछे से ही बरामदा शुरू होता था, जहाँ लाइन से कैक्टस के गमले रखे थे। कैक्टस के जहरीले पौधे! पर इसके फूल नन्हें और प्यारे! एकदम मूँगे की माला के आकार में।

ताड़ के वृक्षों के उस पार उड़द के खेत थे, बस वहीं से ढलान शुरू हो जाती थी। ढलान पर कुछ कच्चे घर बने थे और उन्हीं के पास से इंद्रावती बहती है। पापा के आफिस वाले बरामदे में खड़े होकर देखो तो इंद्रावती का दूर तक का हिस्सा दिखता है। बड़ा ही सुंदर दृश्य होता है।

बरसते पानी में इंद्रावती और उसके आस-पास का भीगता हुआ इलाका! भीगती नदी का छोर . . . . और बाढ़ के दिनों में? बाढ़ के दिनों ऊपर की मिट्टी के टीलों को छूता पानी। घुटने-घुटने डूबे लंबे-लंबे सागौन। छोटे वृक्ष तो पानी में अंदर गोता लगाते रहते। ढलान के ऊपर चढ़ता पानी फिर मकानों की दीवारों को धक्के देता। घर के लोग मकान छोड़कर दूसरे मोहल्ले चले जाते।

तब बरामदे से खड़े होकर देखो तो सब तरफ पानी ही पानी नजर आता था। पानी में घबराये पक्षियों का शोर और बढ़ जाता था। रात के सन्नाटे में विचित्र-सी आवाज आती, लगता बाढ़ का पानी गुस्से से बौखलाया बंगले की हद में घुस आया है।

'ममी, क्या पानी बंगले में घुस गया?' पिंटू घबराकर उससे लिपट जाता।

बाढ़ के पानी में बहुत बड़े-बड़े वृक्ष जानवरों की लाश, बड़ा ही भयानक सा लगता। इंद्रावती दिखने में कितनी शांत है पर बाढ़ के दिनों में कितनी राक्षसी लगने लगती हैं। गले तक डूबा आस-पास का वातावरण बड़ा ही दयनीय-सा लगता है।

ऐश ट्रे में राख हुई सिगरेट के टुकड़े थे। कमरा सिगरेट की महक से भरा हुआ था, यानी महेश की उपस्थिति अभी भी कमरे में थी। महेश जाते हुए कितना लंबा प्रश्न कमरे में उसके आगे छोड़ गया था और वह उस प्रश्न के छोर को छूने से भी डर रही थी।

'नूपुर, सोच लो, जिंदगी के बाकी बचे दिन हम इस समझौते से काट सकते हैं', महेश बोला था, 'दोनों अपनी-अपनी जिंदगी में बंधे रह सकते हैं। मुझे बिनी को छोड़ना नहीं पड़ेगा और न तुम्हें पिंटू को . . . . दोस्त की तरह रह लेंगे।

निर्णय लेना क्या उसके लिए इतना आसान था? एक भटकी हुई जिंदगी जीने से क्या फायदा?

आज शाम अचानक वह बरामदे में आई तो देखा, पिंटू गोद में गेंद लिये सीढ़ियों पर चुप बैठा है।

'बेटा, खेलते नहीं?'

'खेल तो रहा हूँ ममी', कहता पिंटू अचकचा-सा गया और वह खुद सहम सी गयी। ओह! पिंटू दिनों-दिन बड़ा क्यों होता जा रहा है? वह बड़ों के अंदाज में चौंकता क्यों है सहमता क्यों है? उसे कौन-सी चीज है जो दिनों दिन घोंट रही है?

सोचते हुए वह कमरे में आई तो देखा वह कापी पर झुका कुछ लिख रहा था कि उसकी आहट को जान नहीं पाया, वह खामोशी से खड़ी रही।

'लाओ बेटा, मैं तुम्हें पढ़ाऊँगी, क्या पढ़ रहे हो?' उसने पिंटू के पास बैठते हुए कहा।

'नहीं ममी', पिंटू ने कापी को उठा लिया, 'ममी मैं बड़ा हो गया हूँ, खुद पढ़ लूँगा..... ।'

'पिंटू' ऊपर सीढ़ियों से जैसे किसी ने उसे ढकेल दिया।

पिंटू के बड़े रूप को वह घूरती रही।

पर पिंटू क्या अचानक बड़ा हुआ है? क्या उसे इसकी खबर नहीं थी? झूठ, एकदम झूठ। उसे खबर थी वह खुद अनजान बनी केवल अपने को संभालती रही, वह भूल गई कि विपिन की मौत के दो लोग शिकार हुए हैं। एक वह खुद, दूसरा पिंटू। वह केवल यही समझती रही कि विपिन की मौत की शिकार वही हुई है . . . और जब अचानक विपिन की मौत की बात वाली एक-एक कड़ियों को छूता आज पिंटू बड़ा होकर सामने आया तो वह सहम क्यों गई है? जैसे चलते-चलते अचानक साँप पर पैर पड़ गया हो।

नहीं, वह केवल पिंटू के लिए जीयेगी। वह किसी के लिए नहीं जीयेगी। झूठे आश्वासनों के धोखे में भुलावे में, वह नहीं जीयेगी। उसका बेटा, जो अब बड़ा हो गया है उसे उँगली पकड़ाकर रास्ता पार करा लेगा।

सोचते-सोचते उसने अपने को निहारा। आँसू जाने कब के गालों पर सूखकर अपना अस्तित्व खो चुके थे। अब वह बड़े और समझदार बेटे की माँ है जो उसे अब उसकी बाँह थामें दुनिया की भीड़ से निकाल ले जायेगा।

वह उठी। पिंटू सो गया था। किताब, कापी सब सिरहाने बिखरे थे। उसने सबको समेटा और पिंटू की बगल से एक तकिया निकाला। अब वह पिंटू को लेकर कहीं चली जायेगी।

रोज वह पिंटू के पास सोती थी पर अब वह बड़ा हो गया था। उसने दूसरा तकिया कालीन पर रखा और एकदम बूढ़ों के अंदाज में शांत होकर सो गई।



Cover Design : Puneet, Ph.9415362003